पंचतन्त्र एवं हितोपदेश का तुलनात्मक अध्ययन

•

प्रयाग विश्वविद्यालय

की

डी० फिल्० उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

•

लेखिका

(कु०) ज्योत्स्ना वर्मा

एम० ए०, बी० एड्०

•

निर्देशक

डॉ० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल

डी० लिट्०

संस्कृत विभाग

प्रयाग विश्वविद्यालय

•

सन् १९८९

प्रा क्क थ न

प्राक्कथन

विश्व वाङ्मय में गीर्वाण वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण स्थान है । संस्कृत वाङ्मय भारोपीय परिवार का सर्वथा समर्थ साहित्य है । इस वाङ्मय की अपनी एक मौलिकता है । ऋषियों, महर्षियों, तपःपूत तपस्वियों, मनीषियों तथा महाकवियों का इसकी श्रीवृद्धि में अभूतपूर्व योगदान है । भाषा की दृष्टि से वाङ्मय द्विधा है - वैदिक वाङ्मय तथा लौकिक वाङ्मय । विशाल वैदिक वाङ्मय की परिधि में चारो वेद ऋक, यजु, साम अथर्वा इनके उपनिषद कठ केन मण्डूक आदि ब्राह्मण आरण्यक सूत्र आदि हैं । वैदिक वाङ्मय की सतत साधना में भारतीय ऋषियों, महर्षियों के अतिरिक्त वैदेशिक कीथ, मैक्समूलर, मैक्डॉनल, राल आदि का सूक्ष्म पर्यालोचन वैदिक साहित्य के अनुसंधित्सुओं को पर्याप्त साहाय्य प्रदान करता है । वैदुष्य की दृष्टि से यास्क, सायण का भाष्य अध्येय है ।

लौकिक वाङ्मय अपने में परिपूर्ण वाङ्मय है । गद्य, पद्य, नाटक, महाकाव्य, कथा, आख्यान, आख्यायिका तथा लक्षण ग्रन्थों से परिपूर्ण है । आदि कवि आदि गुरु वाल्मीकि का रामायण, विशालबुद्धि व्यास के 18 पुराण, पद्मशिवलिंगादि तथा अध्यात्म रामायण नाटककार भास, सौमिल्य, कालिदास, भवभूति, भट्टनारायण आदि के नाटक महाकवियों के महाकाव्य - रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषध, विक्रमांकदेवचरित, जानकी हरण आदि गद्य काव्य सुबन्धु, बाण, दण्डी की स्वप्न वासवदत्ता, कादम्बरी, हर्षचरितम्, दशकुमारचरितम् आदि गीतिकाव्य के क्षेत्र में कालिदास का मेघदूत तथा समस्त दूत-सन्देश साहित्य, जयदेव का गीत गोविन्द है ।

सप्तशतियों तथा शतकों की भी अपनी एक परम्परा है । गोवर्धनाचार्यकृत आर्यासप्त-शती तथा शतक साहित्य भी अपने में परिपूर्ण है ।

आइये, कथाक्षेत्र में चलें । कथा की कथा पुरानी है । इसका साहित्य बाल से लेकर वृद्धों तक की जिह्वा पर मौखिक रूप से नर्तन करता हुआ चला आ रहा है । उत्सुकता, जिज्ञासा, उपदेश तथा आश्चर्य ने इस साहित्य को जन्म दिया है । इस साहित्य में बृहत्कथा, कथासरित्सागर, बेतालपंचविंशतिका, द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, विष्णुशर्मा का पंचतन्त्रम् तथा नारायण पण्डित का हितोपदेश आदि हैं । इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, छन्दशास्त्र, संगीतशास्त्र आदि हैं । ये सब मिलाकर ही तो समग्र गीर्वाण-वाङ्मय है ।

इसी संस्कृत साहित्य से बालमति मैंने विष्णुशर्मा का पंचतन्त्र और नारायण पण्डित का हितोपदेश को तुलनात्मक अध्ययन का विषय बनाया । यद्यपि इस दुरूह कार्य के सम्पादन में पहले कुछ झिझक का अनुभव होता रहा, क्योंकि कहाँ ये दोनों नीतिशास्त्र के पारंगत आचार्य ? कहाँ अल्पबुद्धि मैं ? परन्तु गुरुओं के सतत आशीर्वाद से इस कार्य में मैंने कहाँ तक सफलता प्राप्त की ? कहाँ तक यह शोध-प्रबन्ध विद्वानों को रमा सकेगा - यह निर्णय करने की क्षमता भी मुझमें नहीं है । यथामति यथाश्रम मैंने इस शोध-प्रबन्ध को लिखा है ।

अभी तक दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो पाया था । न ही दोनों विद्वानों की विचारराशि से पाठकगण एक साथ परिचित हो पाए थे । पृथक-

पृथक ग्रन्थों पर जिन विद्वानों ने गहन अध्ययन किया है, वे श्रद्धा के भाजन हैं और जिन विद्वानों की कृतियों से मैंने लाभ उठाया है, उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ, क्योंकि विचारों की आदान प्रदान की परम्परा सनातन है ।

विषय सौविध्य की दृष्टि से इस शोध-प्रबन्ध को इस प्रकार विभक्त किया गया है -

सर्वप्रथम - भूमिका दी गई है, जिसके अन्तर्गत जन्तुकथाओं के आरम्भ और विकास का विवेचन किया गया है । वैदिक वाङ्मय से लेकर पौराणिक कथाओं तथा परवर्ती कथा-साहित्य का विवेचन किया गया है ।

पुनश्च समस्त शोध-प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है -

<u>प्रथम अध्याय</u> : <u>पंचतन्त्र का रचयिता एवं रचनाकाल</u>

इस अध्याय में संस्कृत साहित्य का अत्यन्त लोकप्रिय कथाग्रन्थ पंचतन्त्र के रचयिता विष्णुशर्मा की प्रामाणिकता उनका जीवन परिचय देकर उनके वैदुष्य और पाण्डित्य का विवेचन किया गया है । यह तो सत्य है ही कि मन्दमति राजपुत्रों को राजनीति में निपुण बनानें की क्षमता रखने वाले विष्णुशर्मा राजनीतिशास्त्र के धुरन्धर विद्वान थे, किन्तु विद्वानों के लिये ग्रन्थ न होकर यह ग्रन्थ मन्दमति बालकों के लिये था । बालकों को समझाने के लिय नयशास्त्र नैपुण्य प्रदान करने के लिये नूतन सुबोध शैली का आश्रय लेकर पंचतन्त्र जैसा लोकप्रिय ग्रन्थ बनाया ।

विष्णुशर्मा के व्यक्तित्व के अन्तर्गत उनका विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान मानव जीवन के प्रति तमाम दृष्टिकोणों का विवेचन आदि का वर्णन किया गया है । कृतित्व की दृष्टि से पंचतन्त्र कृति की समीक्षा की गई । रचनाकाल के अन्तर्गत पाश्चात्य विद्वानों का मत तथा भारतीय विद्वानों का मत दिया गया है । दोनों की समीक्षा की गई ।

द्वितीय अध्याय : पंचतन्त्र का मूल-स्रोत

पंचतन्त्र की कथाओं का स्रोत कौन से ग्रन्थ हैं ? विष्णुशर्मा को प्रेरणा कहाँ से मिली ? कौन से ग्रन्थ उपजीव्य हैं ? जिनके बलबूते पर पंचतन्त्र की कथाओं का निर्माण हो सके । महाभारत, जातक-कथाएं, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मनु, नारद, पराशर, बृहस्पति आदि स्मृतियों का प्रभाव, भर्तृहरि का प्रभाव, बराहमिहिर का प्रभाव तथा ग्रीक सम्बन्धी कथाओं का प्रभाव, पंचतन्त्र पर कहाँ कहाँ पड़ा ? अन्त में सबका निष्कर्ष दिया गया । द्वितीय अध्याय का यही विवेच्य विषय है ।

तृतीय अध्याय : पंचतन्त्र का मूलरूप और रूपान्तर

क्या पंचतन्त्र का मूलरूप आज उपलब्ध है अथवा उसमें परिवर्तन परिवर्द्धन तथा रूपान्तरण किया गया है ? पंचतन्त्र के नाम पर कितने तन्त्र उपलब्ध होते हैं और अब तक प्राप्त कितने पंचतन्त्र हैं, उत्तर और पश्चिम के पंचतन्त्र में क्या कोई परिवर्तन है ? और पंचतन्त्र का विश्व की कितनी भाषाओं में अनुवाद हुआ है आदि का इस तृतीय अध्याय में विवेचन कियागया है ।

चतुर्थ अध्याय : **हितोपदेश का रचयिता एवं रचनाकाल**

हितोपदेश का रचयिता कौन ? हितोपदेश जैसा ग्रन्थ किस समय में लिखा गया ? इसका रचनाकाल क्या है ? इसका प्रामाणिक विवेचन किया गया । नारायण पण्डित के वैदुष्य और पाण्डित्य पर यथासम्भव प्रकाश डाला गया और नारायण पण्डित की बहुज्ञता और बहुश्रुतता पर प्रकाश डाला गया ।

पंचम अध्याय : **हितोपदेश का मूल-स्रोत**

हितोपदेश जैसा सरल कथासाहित्य नारायण पण्डित की लेखनी से कैसे संपन्न हुआ तथा हितोपदेश का मूल-स्रोत क्या है । नारायण पण्डित की कृति पर किन-किन महान् रचनाकारों का प्रभाव तथा पंचतन्त्र का इस ग्रन्थ पर कितना प्रभाव पड़ा इसी का विवेचन इस अध्याय में किया गया है ।

षष्ठ अध्याय : **पंचतन्त्र तथा हितोपदेश की योजना में भेद एवं प्रयोजन**

पंचतन्त्र किस शैली में लिखा गया ? और हितोपदेश किस शैली में लिखा गया ? पंचतन्त्र के रचयिता ने अपने कथासाहित्य को पाँच तन्त्रों में विभक्त किया है, वहीं हितोपदेश रचयिता ने चार भागों में विभक्त किया है । इस प्रकार पंचतन्त्र में पाँच तन्त्र निम्नवत् हैं -

1. मित्र भेद
2. मित्र लाभ

3. काकोलूकीयम्
4. लब्धप्रणाशम्
5. अपरीक्षितकारकम्

हितोपदेश के चार भागों का विभाजन इस प्रकार हुआ है =

1. मित्रलाभ
2. सुहृद्‌भेद
3. विग्रह
4. सन्धि

मनुष्य कोई भी कार्य निष्प्रयोजन नहीं करता फिर विद्वान किसी भी ग्रन्थ की रचना किसी न किसी प्रयोजन को लेकर ही करता है । फिर कहा भी गया है - "प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते" - फिर विद्वान के विषय में क्या कहा जाए । पर दोनों ही कथा ग्रन्थ रचने का उद्देश्य सरल शैली द्वारा "सुखादल्प धियामपि" ॥साहित्य दर्पण॥ के आधार पर लिखा गया है । इसी का विवेचन इस अध्याय में किया गया है ।

सप्तम अध्याय : शिक्षा पद्धतियों में जन्तुकथा का स्थान एवम् महत्त्व

प्राचीन शिक्षण पद्धतियों में जन्तुकथाओं का प्रयोग किस प्रकार किया जाता था, वैसे भी छोटे बालकों के लिये कौआ, घोड़ा, गधा, अश्व, ऊँट, बिल्ली, नेवला, बन्दर, शेर, सियार, खरगोश, सर्प, बकरी, गाय, बैल, कबूतर, बाज, चूहा, खटमल, जूँ, चींटी आदि का उदाहरण देकर सरल पद्धति से पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन कथाओं का निर्माण किया गया । बालकों की जिज्ञासा के समाधान हेतु यही

उपयुक्त साधन है । एक था राजा, एक थी रानी की कहानी नानी द्वारा मौखिक रूप से चलती रही । लिपिबद्ध होकर जब पाठकों के समक्ष आई तो कथासाहित्य की अमूल्य धरोहर बन गई । इस प्रकार इन सबको पात्र बनाकर सिंह, शशक आदि कथाओं का निर्माण किया गया । इसका सूक्ष्म विवेचन इस सप्तम अध्याय में है ।

<u>अष्टम अध्याय :</u> <u>पुरुषार्थ चतुष्टय के उपदेश का लघुतम एवं सरलतम साधन</u>

मानव जीवन का चरम लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय है । सम्पूर्ण मानव-जीवन धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के लिये है । इसी को चतुर्वर्ग भी कहते हैं । इस चतुर्वर्ग फलप्राप्ति के अनेक साधन हैं । वेद-पुराण-धर्म-व्याकरण सबका मूल उद्देश्य यही है किन्तु कान्ता-सम्मित (वाङ्मय) सरल मार्ग चतुर्वर्ग प्राप्ति हेतु सरल साधन है । उस समस्त वाङ्मय की समस्त विधाओं (गद्य, पद्य, नाटक, खण्ड-काव्य, प्रबन्ध-काव्य आदि) में भी कथासाहित्य उससे भी सरल साधन है । पंचतन्त्र में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का चिंतन कैसा किया गया है । हितोपदेश में भी चतुर्वर्ग का विवेचन किस तरह किया गया इत्यादि ही इस अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है ।

अन्त में, ग्रन्थ की समाप्ति पर उपसंहार लिखा गया । उपसंहार में सम्पूर्ण प्रतिपाद्य विषय का विवेचन यथासम्भव किया गया । यही शोध-प्रबन्ध का संक्षिप्त प्रारूप है ।

इसके अतिरिक्त उन सभी कवियों, आचार्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनकी रचनाओं ने शोध प्रबन्ध की उद्देश्य-पूर्ति में पर्याप्त सहायता की । यह शोध

प्रबन्ध परम श्रद्धेय गुरुवर आचार्य डा० चण्डिका प्रसाद शुक्ल, डी० लिट्, भूतपूर्व अध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के कुशल निर्देशन में लिखा गया । जिन गुरुवर ने अपना बहुमूल्य समय तथा आशीर्वाद देकर इस शोध-प्रबन्ध को पूर्णता प्रदान की, तदर्थ उनके प्रति श्रद्धासुमन समर्पित करती हुई श्रीचरणों में नमन कर रही हूँ । मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय, बलदेवसहाय संस्कृत महाविद्यालय, कानपुर, गंगानाथ झा, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद, सम्पूर्णानन्द संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी, जुहारी देवी गर्ल्स पी० जी० कालेज, कानपुर के पुस्तकालय की सदैव ऋणी रहूँगी, जिन्होंने समय-समय पर अभीष्ट ग्रन्थ देकर मुझे उपकृत किया ।

अपने पूज्य गुरुवर डा० पी० के० शास्त्री की उदारतापूर्वक की गई सहायता एवं अमूल्य परामर्श से ही मेरा यह शोध कार्य पूर्ण हो सका । उनके प्रति भी मैं सदैव आभारी रहूँगी ।

इस शोध-प्रबन्ध में टंकण यन्त्रजात त्रुटियाँ तथा प्रसंगवश हुई पुनरावृत्तियों पर ध्यान न देकर विद्वद्जन क्षमा करेंगे ।

"शिशुंनविप्रा: मतिभि:रिहन्ति ।"

- कु० ज्योत्स्ना वर्मा
शोधकर्त्री

विषयानुक्रमणी

---0---

भू मि का   पृ०सं० 1-34

भूमिका

संस्कृत वाङ्मय विश्व वाङ्मय में अपनी विशेषता के कारण अपना पृथक् ही अस्तित्व रखता है। संस्कृतवाङ्मय की परम्परा इतनी प्राचीन तथा सबलहै कि उसके समक्ष विश्व का साहित्य टिक नहीं सकता। संस्कृत साहित्य भाषा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त है- वैदिक साहित्य तथा लौकिक साहित्य। वैदिक साहित्य में चारों वेद, उपनिषद ब्राह्मण-ग्रन्थ, सूत्र-ग्रन्थ श्रौत सूत्र, गृह्मसूत्र, धर्मसूत्र, तथा शुल्व सूत्र ग्रहण किये जाते हैं। वैदिक वाङ्मय इतना विपुल और इतना अध्यात्म परक है कि जीवन का बहुत बड़ा भाग इसके अध्ययन में लगाया जा सकता है। इसकी ज्ञान-राशि से पाश्चात्य विद्वान भी परिचित होकर प्रभावित हुए और उन्होंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त लौकिक वाङ्मय का शिलान्यास उस शुभ बेला में हुआ जिस समयमहर्षि वाल्मीकि ने व्याध द्वारा विद्ध क्रौंची के करुणाराव को सुनकर विगलित हृदय से सहसा तमसा नदी के तट पर-अश्रुपूरित नेत्रों से-हृदय के अंर्तभाव से-यह कहा -

" मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।"[1]

वाल्मीकि का यह शोक श्लोक बन गया। "क्रौंचद्वन्द्व-वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः" इसी दिन वैदिक आम्नाय वृहती गायत्री त्रिष्टुप् जैसे छन्दों से मुक्त हुआ और लौकिक वाङ्मय का आविर्भाव हुआ। लौकिक वाङ्मय भी इतना हीव्यापक, विपुल तथा विशाल है।

1- निषाद । तू अधिक समय तक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकेगा जो कि तूने क्रौंचयुगल में से काम से मोहित एक को मार डाला है।

इसकी प्रत्येक विधा--चाहे महाकाव्य हो, चाहे नाटक, चाहे धर्म, चाहे दर्शन, चाहे व्याकरण, चाहे ज्योतिष, चाहे आयुर्वेद , चाहे संगीत और चाहे ग्रन्थकाव्य। गधकाव्य में भी चाहे कथा काव्य। संस्कृत वाङ्मय की ये सभी विधाएं स्वयं में परिपूर्ण हैं। इनमें से प्रत्येक का अपना-अपना पृथक-पृथक महत्त्व है।

कथा साहित्य ,तना प्राचीन है जितना कि मानव । मानव के साथ ही कथा का जन्म हुआ। कथा मौखिक रूप से वयोवृद्धो [नानी, दादी, काकी, नाना, दादा काका] की कहानी के रूप में सनातन से चली आ रही है। मौखिक-साहित्य से मुक्त होकर कब लिपिबद्ध हुई, इसमेंमतभेद हो सकता है किन्तु कथा की प्राचीनता तथा आविर्भूति में प्रश्नवाचक चिह्न नहीं लगाया जा सकता। पंचतंत्र और हितोपदेश की कथाएं विश्वविदित कथाएं हैं। विश्व के साहित्य ने इनसे प्रेरणा ली है और इनका मूल्यांकन किया है।

कथा साहित्य के अंतर्गत पंचतंत्र तथा हितोपदेश की कहानियों से सभी परिचित हैं, किन्तु इन दोनों ग्रन्थों का अभी तक साहित्यिक मूल्यांकन नहीं हुआ और न ही दोनों का गहन तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अतएव इस दिशा में तुलनात्मक साहित्यिक मूल्यांकन के लिये मुझ जैसे अल्पज्ञ ने किसीतरह साहस बटोर कर तथा शुभ संकल्प लेकर इसे शोध का प्रतिपाद्य विषय बनाया।

कथा का स्वरूप-

पूर्व वैदिक साहित्य में सूक्त एवं गाथा शब्दों का प्रयोग कथा के रूप में किया जाता था। अथर्ववेद तथा ऋग्वेद संहिता में तथा वृहद्देवता में क्रमशः गाथा एवं सूक्त शब्दों का प्रयोग प्राप्त है। शौनक-सूक्त को सम्पूर्ण ऋषिवाक्य स्वीकार करते हैं-

" सम्पूर्ण ऋषिवाक्यं तु सूक्तमित्यभिधीयते। "[1]

1- वृहद्देवता - 1. 13

सूक्त का अर्थ वैदिक संहिता काल में कथा के रूप में सम्भवतः लिया जाता रहा होगा। असंख्य मंत्रों के बीच कुछ ऐसे भी स्थल प्राप्त होते हैं जहाँ कुछ पात्रों के मध्य कथोपकथन हो रहा होता है। इन्हीं सूक्तों को "संवाद सूक्त" की संज्ञा दी गई किन्तु संवाद सूक्तों को कथा न समझकर मात्र कथा-बीज समझनाअधिक समीचीन प्रतीत होता है।शनैःशनैः भाषा तथा अर्थगत परिवर्तनों के कारण सूक्त शब्द मात्र ऋग्वेद संहिता की ऋचा समूहों का द्योतक बन गया। सूक्त शब्द पहले किसी महापुरुषके सुभाषित से भी लिया जाता रहा होगा जिसका प्रयोग अब सूक्ति के रूप में किया जाता है। कथा के इस रूप को वास्तव में उपेक्षित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह कथा साहित्य के विकास क्रम कोप्रथम कड़ी प्रतीत होती है।

गाथा शब्द "गै" धातु से निष्पन्न है तथा गाने के अर्थ में लिया जाता है। यह एक गीत, छन्द अथवा धार्मिक श्लोक सा ज्ञात होता है।वेदों से सम्बन्ध न रखने वाले गाथा शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर प्राप्त है। ऋग्वेद में "नाराशंसी" गाथा का भी उल्लेख प्राप्त होताहै। भिन्न-भिन्न मत भी इसके लिये प्रस्तुत किये हैं। अथर्ववेद[1] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[2] में गाथा तथा नाराशंसी को भिन्न-भिन्न बताया है। आचार्य शौनक इसको यज्ञ में दान देने वाले के स्तुति में गाए जाने वाले छन्द स्वरूप स्वीकार करते हैं।[3] शनैः-शनैः इसका प्रयोग संहिता साहित्य, ब्राह्मण साहित्य[4] में और यहाँ तक कि गाथा शब्द महाभारत[5] से लेकर जातकों तक व्याप्त हो चला । ओल्डेन बर्ग महोदय ऋग्वेद में प्रयुक्त संवादात्मक आख्यानों से ही गाथा नाराशंसी काअर्थ लेते हैं उनके अनुसार -"इन संवादात्मक आख्यानों को ही पहले गाथा नाराशंसी कहा जाता था किन्तु अपनी ख्याति के कारण थोड़े ही समय बाद उन्हीं को हीइतिहास और पुराण की कथा कहा जाने लगा ।[6]

- -

1- अथर्ववेद-15-6-4

2- ऐतरेय ब्राह्मण- 2-3-6

3- वृहद्देवता- 3-154

4- ऐतरेय ब्राह्मण- 33, खण्ड 3-6

5- महाभारत- अनुवंशपर्व

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रतीत होता है कि गाथा वेदों में प्रयुक्त मात्र छन्द बद्ध गेय रचना थी इसी श्रेणी में आख्यायिका शब्द का प्रयोग भी प्राप्त होता है। आख्यायिका का शाब्दिक अर्थ आख्यायक+टाप् इत्वम् अर्थात् गद्यरचना का नमूना, सुसंगत कहानी है। इस शब्द का वैदिक प्रयोग "ख्या" धातु से देखने के अर्थ में है। तैत्तिरीय आरण्यक में भी इस शब्द का प्रयोग आया है।[1]

वस्तुतः आख्यायिका शब्द पर अनेक आचार्योंने अपने भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत किये हैं-

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने गद्यरचना को दो भागों (कथा एवं आख्यायिका) में विभक्त कर बाण रचित हर्षचरित को आख्यायिका एवं कादम्बरी को कथा की संज्ञा दी है।[2] उनके अनुसार "आख्यायिका में कथा के समान ही कविवंश कीर्तन रहा करता है। कथांश के भाग आश्वास कहलाते हैं। इसमें आर्यादि वृत्त रहते हैं। आश्वास के आरंभ में भाव्यर्थ सूचित रहता है।[3]

आचार्य दण्डी ने इस भेद को अस्वीकार कर दिया है। उनके अनुसार-

तत्कथाख्यायिकेत्या जातिः संज्ञाद्वयांकिता[4]

- -

1- तैत्तिरीय आरण्यक- 1-6-3

2- साहित्य दर्पण- 568

3- वही

"आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनांच वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित्।।
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति कथ्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसां येन केनचित्।।
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्।।" इति। सा0द0प0 -334-35

4- अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल।।23।।
नायके नैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिनः।।24।।
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदकारणम्।।25।।
वक्त्रं चापवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वंच भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसंगेन कथास्वपि।।26।।
आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः।।27।।

अर्थात् कादम्बरी, हर्षचरित, दशकुमारचरित, पंचतंत्र तथा हितोपदेश आदि सभी कथा और आख्यायिका दो विभिन्ननामों से पुकारी जाती हुई भी एक ही जाति के अंतर्गत आती हैं।

अग्निपुराण में आख्यायिका को किंचित् ऐतिहासिक स्वीकार किया गया है।[1]

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि आख्यायिका में ऐतिहासिक तत्त्व के साथ-साथ कवि कल्पना का भी वर्णन होता है क्योंकि हर्षचरित तथा कादम्बरी आदि गद्यरचनाओं में कविकल्पना तथा परम्परागत ऐतिहासिककथा का संगम है। सम्भवतः इसी कारण इसे आख्यायिका के अंतर्गत स्वीकार किया गया है।

कथा शब्द पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में कथा हेतु सूक्तादि शब्दों का ही प्रयोगहोता था किन्तु कालान्तर में ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ परिवर्तन हुआ। ऐतरेय ब्राह्मण में भी इसका प्रयोग किया गया है।[2]रामायण और महाभारत काल में कथा का अर्थ अत्यधिक विकसित हुआ। वृहत्कथा तथा बौद्ध, जैन साहित्य में भी अट्ठकथा तथा धर्मकथा आदि समुचित मात्रा में प्राप्त है। कथा का अर्थ कथा, कहानी, कल्पित कहानी अथवा क्या कहना है, कितना अधिक, कितना कम के रूप में भी प्रयुक्त है यथा - अभिज्ञानशाकुन्तलम के तृतीय सर्ग में-

" का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः)हुंकारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति।[3]

- -

1- कर्तृवंशप्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात्।
कन्याहरण-संग्राम-विप्रलम्भ-विपत्तयः ।। ।3 ।।
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिः प्रवृत्तयः।
उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र सा चूर्णकोत्तरा।। ।4 ।।
वक्त्रं चापरवक्त्रं वा यत्र साख्यायिकास्मृता।
श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति ।। ।5 ।। - अग्निपुराणे अध्याय- 337

2- ऐतरेय ब्राह्मण- 5-3-3

3- अभिज्ञान शाकुन्तलम् -3/1

इसी प्रकार म ाकवि कालिदास कृत रघुवंश तथा महान नाटककार भट्टनारायण कृत वेणी संहार में भी कथा शब्द कहने के अर्थ में प्रयुक्त है।

" अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु"[1]

" आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा"[2]

महाकवि माघ कृत शिशुपालवधम् में कथा का प्रयोग वृत्तान्त, सन्दर्भ तथा उल्लेख के रूप में हुआ है-

" कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यत:।"[3]

महाभारतकार कृष्णद्वैपायनव्यास ने आख्यान, कथा, आख्यायिका, पुराण और इतिहास इन सभी शब्दों कोप्राय: समान अर्थ में ही प्राचीन कहानी के रूप में प्रयुक्त किया है।[4]

इन समस्त ग्रन्थों में प्रयुक्त कथा शब्द से पूर्णतया भिन्न एवं सारगर्भित नवीन अर्थ का हितोपदेश में वर्णन है तथा कथा का यही अर्थ वस्तुत: यहाँ समीचीन भीप्रतीत होता है-

" कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।"[5]

उपर्युक्त वर्णित विवेचनसे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि-

1 विभिन्न प्रकार की कथाएं चिर प्राचीन युग से ही लिखी जाती रही हैं। ये सभी कथाएं सोद्देश्य ही प्रणीत की गईथीं। इसमें उनका उद्देश्य मनोरंजक एवं उपदेशात्मक दोनों ही हो सकता था।

1- रघुवंश - 8/43

2- वेणी संहार -2/25

3- शिशुपालवधम्- 2/40

4- हॉपकिन्स-दि ग्रेट एपिक ऑफ इण्डिया

5- हितोपदेश-1/8

2- प्रस्तुत ग्रन्थ में उपदेशात्मक कथाओं का वर्णन किया जा रहा है अतः हितोपदेश में दी गई "कथा के छल से बालकों को नीति प्रदान करना "अर्थ अधिक समीचीन ज्ञात होता है। क्योंकि पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक, रामायण, महाभारत, उपनिषद चारो वेदादि में वर्णित समस्त कथाएं उपदेशात्मक ही हैं।

कथा-साहित्य का उद्भव एवं विकास-

आदिकाल से ही मानव अपने आसपास जो कुछ भी देखता-सुनता आया है उसको अपनी कल्पना का सहारा देकर उसकी अभिव्यक्ति के लिये वाणी, आकृति तथा विभिन्न भावप्रदर्शन का आश्रय लिया करता रहा है। आबाल वृद्ध सभी में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। बच्चे अपनी नानी-दादी के पास बैठकर अनेक कथाओं को सुनते हैं तथा उनके द्वारा प्राप्त विभिन्न शिक्षाओं को अनायास ही ग्रहण कर लेते हैं। बड़े से बड़े उपदेश को कथा के माध्यम से उनका कोमल मस्तिष्क अत्यन्त सुगमता से ग्रहण कर लेता है।

दिन भर के परिश्रम से श्रान्त जन आपस में अपने अनुभवों को अपने साथियों से सुनाते समय जिस कल्पना की उड़ान से अपने जिन संवेगात्मक भावों को व्यक्त करते होंगे सम्भवतः वह भी कथा- साहित्य के विकास काप्रथम सोपान रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कथाओं में मानव अपने अनुभवों को जब अपने साथियों के समक्ष रखता होगा तो उसके विभिन्न अच्छे-बुरे अनुभवों को सुनकर उसके साथी यह शिक्षा ग्रहण कर लेते होंगे कि जिस कार्य से इस व्यक्ति ने कठिनाइयों का सामना किया है उस कार्य को उन्हें भी नहीं करना चाहिये। इस प्रकार से कथा प्राचीन युग से ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्य दोनों ही रूपमें में उपदेश प्रदान करने का साधन बनी रही । प्रभुसम्मित, सुहृत्सम्मित तथा कान्तासम्मित त्रिविधात्मक उपदेशों में वेद प्रभुवाक्य होने के कारण अनिवार्यता तथा के साथ पालन के कारण इसी तरह सुहृतसम्मित पुराणादि मित्रादि की बात मानना न स्वैच्छिक होने के कारण हार्दिक अनुमोदनाभाव में अरुचिकर और अग्राह्य हैं। सरस, रुचिकर सहज ग्राह्य हावभाव विलासादि के साथ मधुरवाणी प्रयुक्त कान्तासम्मित की तरह समस्त वाङ्मय है। वाङ्मय की कोई भी विधा हो वह कान्तासम्मित के अन्तर्गत आती है।का

का जन्म ही सितकशर्करा प्रवृत्ति की तरह तथा 'सुखादल्पधियामपि' के लिये हुआ है। पंचतंत्र तथा हितोपदेश दोनों ही कथाग्रन्थ मनोरंजन के साथ काव्य के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। "कथाच्छलेन बालानाम्" में प्रयुक्त बाल शब्द अल्पधी बालक के लिये आया है।

प्राचीनकाल में कथा का रूप मौखिक था। कथा कहने वाला व्यक्ति कथा को इस ढंग से श्रोता के समक्ष प्रस्तुत करता था कि वे उसमें वर्णित मानव अथवा मानवेतर नायक नायिकाओं के साथ साधारणीकरण कर लेते थे और उस कथा के माध्यम से प्राप्तशिक्षा को ग्रहण कर लेना उनके लिये स्वाभाविक था। इस प्रकार कथा के इस क्रमशः विकसित स्वरूप को शनैः-शनैः धर्मादि चारों पुरुषार्थों का उपदेश देने के लिये लघुतम एवं सरलतम साधन भी मान लिया गया। आज भी ये कथाएं मनुष्य को लोक व्यवहार की नीतियों का ज्ञान कराने में सर्वथा सक्षम हैं। संस्कृत साहित्य में नीति कथाओं का अपना एक विशिष्ट स्थान है। ऐसा प्रतीत होता है कि कथा का प्रारंभिक मौखिक रूप प्रत्यक्ष रूप से उपदेशात्मक न होकर मनोरंजनात्मक होते हुए भी अंत तक में कुछ न कुछ उपदेश अवश्य देता था। किन्तु प्रश्न है उद्देश्य का। उद्देश्य की दृष्टि से तो सम्भवतः कथाएं उपदेशात्मक एवं मनोरंजनात्मक दोनों ही प्रकार की रही होंगी। इन कथाओं में प्रारंभिक अवस्था में लोककथा, परीकथा, अद्भुत कथा अथवा प्राणिकथा जैसा भेद न होकर ये सभी कहानियाँ साधारण कथाएं रही होंगी। जैसा कि अलेक्जैण्डर क्राप महोदय के दि साइंस आफ फोकलोर[1] नामक ग्रन्थ में वर्णित लोकसाहित्य के अनेक अंगों के वर्णन से प्रतीत होता है। इनके नाम इस प्रकार हैं-

1- परीकथा अथवा अद्भुतकथा

2- नर्मकथा

3- प्राणिकथा

4- स्थानीयकथा

5- परिभ्रमणकथा

6- गधसागा

7- कहावतें या सूक्तियाँ

8- लोकगीत

1- अलेक्जेन्डर कार्पी- दि साइंस आफ फोकेलोर-पृ0- 130

9- वीरगाथाएं

10- मन्त्र, जारणमारण, पहेली आदि

11- लोकभ्रम

12- खनिज विधा, नक्षणविधा, उत्पत्ति विधा

13- वनस्पति विधा

14- प्राणिविधा

15- प्रथा एवं विधि

16- जादूगरी

17- लोकनृत्य एवं नाट्यकला

इन उपर्युक्त वर्णित समस्त भेदों में कहीं भी विशेष रूप से उपदेशात्मक अथवा मनोरंजनात्मक कथाओं का वर्णन नहीं किया गया है। इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि कथा के दो भेद प्रमुख हैं किन्तु उपर्युक्त वर्णित समस्त कथाओं के उपदेशात्मक अंगों को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि ये समस्त कथाएं किसी न किसी प्रकार का उपदेश अथवा शिक्षा तो देती ही हैं। अतः कथा का मुख्य उद्देश्य उपदेशात्मक स्वीकार करना अनुचित न होगा।

कथाकी उत्पत्ति-

इसी संदर्भ मेंकथा की उत्पत्ति एवं विकास परविचार करना भी आवश्यक है। कथासरित्सागर के रचियिता कश्मीरी कवि सोमदेव कथोत्पत्ति की विवेचना एक पौराणिक दृष्टि से करते हैं उनके अनुसार -"एक बार शिव ने पार्वती से सात विद्याधर-चक्रवर्तियों की आश्चर्यमयी कथाओं का वर्णन किया। यद्यपि शिव की वार्ता-एकान्त में हुई थी किन्तु उनके अनुचर पुष्पदन्त ने वे कहानियां सुन लीं और अपनी पत्नी जया को उन्हें सुना दिया। जया ने उन कहानियों को अपनी सहेलियों से कहा। जब यह बात पार्वती जी के कान तक पहुँची तब उन्होंने रुष्ट होकर पुष्पदन्त को मर्त्यलोक में जन्म लेने का शाप दिया। पुष्पदन्त के

भाई माल्यवान् ने उसकीओर से क्षमायाचना की, तो उसे भी वैसा ही दण्ड मिला। पुष्पदन्त की पत्नी जया पार्वती जी की परिचारिका थी। जब पार्वती जी ने अपनी सखी को शोकाकुलदेखा, तब उन्हें करुणा आ गई और उन्होंने अपने शाप का परिहार करते हुए कहा कि, "पुष्पदन्त का विन्ध्यपर्वत पर काणभूमि नामक एक पिशाच से मिलन होगा। उसे अपने पूर्व जन्मों की स्मृति बनी रहेगी और जब वह काणभूमि को ये कथाएं सुनाएगा ,तबउसकी शापमुक्ति होगी। माल्यवान् भी जब काणभूति से इन वृहत्कथाओं को सुनकर लोक में इसका प्रचार कर चुकेगा,तब वह पुनः स्वर्ग लौट आएगा।इस विधान के अनुसार पुष्पदन्त ने कौशाम्बी में वररुचि कात्यायन के रूप में जन्म लिया और वह महान् वैयाकरण व नन्दवंश के अंतिम राजा योगानन्द का मंत्री हुआ अंत में,वह वनवासी हो गया और विन्ध्याचल की विन्ध्यवासिनी देवी की यात्रा में उसकीभेंट काणभूति से हुई। तब उसे अपने पूर्व जन्म की स्मृति हुई और उसने काणभूति को सात वृहत्कथाएं सुनाईं। इतना करने के बाद वह शापमुक्त होकर स्वर्ग चला गया। उसके भाई माल्यवान् ने भी मृत्युलोक में प्रतिष्ठानपुरी में गुणाढ्य के रूप में जन्म लिया और वह वहां के राजा सात वाहन का मंत्री बना। गुणदेव व नन्दिदेव उसके दो शिष्य थे। उन्हें लेकर वह काणभूति के पास आया। वहाँ काणभूति से उसे पिशाच भाषा में सात वृहत्कथाएं प्राप्त हुईं और उसने प्रत्येक को एक-एक लाख श्लोकों में अपने रक्त सेलिखा। अपने शिष्यों की सलाह से उसने उसे राजा सातवाहन के पास इस विचार से भेजा कि राजा उनकी रक्षाकरेगा। पर पिशाचों की भाषा में लिखी हुई कहानियों को राजा को अरुचिकर लगी।इस समाचार से गुणाढ्य को बहुत दुख हुआ और उसने अपनी छः कहानियाँ जला डालीं। अपने शिष्यों का अनुरोध मान कर केवल सातवीं कहानी बची रहने दी।उस कथा को सुनकर जंगल केजीव भी मोहित हो गये।जबराजा सातवाहन को यह ज्ञात हुआ तब उसे पश्चाताप हुआ और उसने गुणाढ्य के स्थान पर जाकर बचे हुए कथा भाग को उससे लेलिया। उसने गुणदेव और नन्दिदेव की सहायता से उसका अध्ययन किया और कथा की उत्पत्ति करने वाला अंश स्वयं उसने जोड़ा[1] इसी कथा का ही थोड़ा भिन्न रूप नैमाल महात्म्य में भी प्राप्त होता है।[2]

1- कृष्णमाचार्य-संस्कृत साहित्य का इतिहास- पृ0- 414-415

2- नेपाल महात्म्य।अध्याय -27-28।

इस कथोत्पत्ति नामक प्रकरण में एक बात ध्यान देने की है कि इस प्रकरण को मात्र वृहत्कथा की ही उत्पत्ति का प्रकरण समझना चाहिये न कि समस्त कथाओं की उत्पत्ति का। कारण यह है किपार्वती जी ने शिव जी से नवीन कथा सुनाने का अनुरोध किया[1] था। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पूर्व भी कथा विद्यमान रही होगी और वह मौखिक परम्परा से लोगों में मनोरंजन तथा उपदेश देने का माध्यम बनी रही होगी।

वैदिक साहित्य-

भारतीय कथा साहित्य की प्राचीनता का अनुमान वैदिक साहित्य से ही लगता है। ऋग्वेद संहिता में अनेक ऐसे आख्यान हैं जो कथा साहित्य की बीज गुप्त हैं। ऋग्वेद के ही अनेक आख्यानों का उपबृंहण पुराणों में भी प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में प्राप्त होने वाले आख्यानों में दृष्यन्त का प्रमुख स्थान था किन्तु यही आख्यान अनेक लौकिक व्यवहार धर्मादि की शिक्षा के प्रथमचरण थे। वैदिक साहित्य में कथाएवं आख्यायिका दोनों ही विद्यमान हैं। वहीं से ये दोनोंरूप परवर्ती साहित्य में भी गृहीत हो गए, परन्तु अन्तर मात्र इतना ही है किवेद में इन कथाओं का रूप दैवी है पार्थिव व्यक्तियों की कथाएं उसमें नहीं हैं। शौनक के वृहद्देवता में ऐसी कई कथाएं वर्णित हैं। शौनक इन कथाओं में दैवी ज्ञान को मानते हैं। मंत्रों में इन देवताओं में कर्मों का वर्णन है। इन कर्मों से सम्बद्ध संस्कारों को जिसने समझलिया उन्हें ही वैदिक तथा लौकिक संस्कारों का फल प्राप्त होता है। इन कथाओं में कहीं स्तुति है तो कहीं आशीष। पुरुषार्थ चतुष्टय इन्हीं स्तुति एवं आशीष के सहयोग से निर्मित हुआ है। सभी कर्मों की प्रधानता है। यह कर्म ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के जनक हैं।

ऋग्वेद में मानवेतर जीवों का भी वर्णन है यद्यपि ये मानव का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके द्वारा यह स्पष्ट होता है कि उसी काल से ही जीवों तथा मानव के मध्य एक वैयक्तिक सम्बन्ध रहा होगा। वर्षाकालीन मेढ़कों की तुलना ब्राह्मणों के वेद पाठ से ही नहीं की है वरन् उन्हें संपूर्ण वर्ष भर तपस्या करने वाले व्रती ब्राह्मण भीकहा है।[2] देवशुनि

1- तत प्रोवाच गिरिजा प्रसन्नोऽसि यदि प्रभो।
रम्यां कांचित्कथां ब्रूहि देवाधममनूतनाम् ।। 23।।-कथासरित्सागर-प्रथम लम्बक

2- ऋग्वेद- 7-103

सरमा की कथा का भी वर्णन है।[1]

सरमा पणि संम्वाद -

पणियों द्वारा इन्द्र की गाओं को चुराकर एक गुप्त अन्धेरे स्थलमें छुपा दिया गया। इन्द्र ने सरमा को दूती बनाकर रसा नदी के पार पणियों के पास भेजा। सरमा के वहाँ पहुँचने पर पणियों ने उसके आने का कारण पूछा। सरमा ने अपनापरिचय देते हुए कहा कि "मैं इन्द्र की दूती हूँ। तुम लोग इन्द्र की गायों को लौटा दें। इन्द्र से संघर्षमत करो। इन्द्र को कोई पराजित नहीं कर सकता है।" इस पर पणियों ने सरमा को भाई-बहन का नाता जोड़कर कुछ गाएं उसे देने का प्रलोभन देने लगे किन्तु सरमा चूँकि इन्द्र की दूती बन गई थीइसी कारण वह सच्चे दूत का धर्म निभा रही थी अतः पणियों द्वारा दिये गये प्रलोभन को उसने अस्वीकार कर दिया।

इस प्रकार इस कथा में जहाँ सच्चे स्वामिभक्त दूतिका उपदेश है वहीं कथा का एक अन्य भावार्थ भी प्रतीत होता है-लोभावरण आत्मा की दिव्य प्रवृत्ति को छुपा लेता हैं एवं शुद्ध निर्मल अन्तराल की प्रवृत्ति उसको खोजती है लोभ-मोह आवरणों से बचाकर दिव्य-वृत्तियों का उद्धार करती है।

अतः यह कथा लोभ-मोह जैसे बन्धनों से छुटकारा दिलाकर मोक्ष की ओर भी प्रेरित करती है।

ऋग्वेद संहिता की शुनःशेप कथा[2] मुख्य रूप से प्रार्थना प्रधान है। इस कथा की लोकप्रियता का आभास ऐतरेय ब्राह्मण में भीवर्णित इसी कथा से लगता है। इतना ही नहीं

अपितु यास्क ने भी इस कथा का वर्णन किया है।

वैदिक कथाओं में पुरूरवा एवं उर्वशी[1] तथा यम-यमी संवाद[2] भी अत्यन्तमहत्वपूर्ण हैं। सौपणख्यान का भी विशेष स्थान है। मण्डूक सूक्त में मंडूकों के टर्र-टर्र की ध्वनि की उपमा वर्ष भर बोलने वाले व्रती ब्राह्मणों से की है।[3] द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया:[4] में प्रकृति को वृक्ष तथा जीवात्मा और परमात्मा को उसी प्रकृति स्वरूप वृक्ष पर स्थित दो पक्षियों के रूप में वर्णित किया है। ये सभी आख्यान अपने विस्तृतरूप में ब्राह्मण ग्रन्थों तथा पुराण आदि में प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में वर्णित मुख्य कथाएं इस प्रकार हैं-

1- सरमा पणि सम्वाद ॥ 10-108॥
2- श्यावाश्व सूक्त ॥ 5-61॥
3- मण्डूक सूक्त ॥ 7-103॥
4- असंग एवं शश्वती ॥8-1॥
5- मीन, धीवर तथा आदित्य ॥6-65-66॥

उपर्युक्तवर्णित समस्त कथाएं संवादात्मक आधार पर लिखी गई हैं। कतिपय कथाएं संवादात्मक तथा वर्णनात्मक के मध्य हैं। यथा-

1- कक्षीवत् तथा स्वनय ॥ 1-125॥
2- दीर्घतमस् ॥ 1-147॥
3- गृत्समद ॥2-12॥
4- सोमावतरण ॥3-43॥
5- श्यावाश्व आत्रेय ॥ 5-22॥
6- अग्नि जन्य ॥5-11॥
7- सप्तवधि और वद्रिवती ॥5-79॥

1- ऋग्वेद संहिता- 10-15
2- वही, 10-10
3- ऋग्वेद-7-103-1
4- वही, 1-164-20

8- वशिष्ठ विश्वामित्र ॥53-7-33॥

9- ऋणीश्वन् औरअग्नियाज ॥6-53॥

10-बृहस्पति जन्य ॥16-71॥

11-सुदास ॥ 7-18-33,83॥

12-नहुष ॥ 7-95॥

13-जुआरी ॥ 7-34॥

14-असमाति और पुरोहित ॥10-57-60॥

15-प्रजापति उषस् ॥10-61,5-7॥

16-सूर्या विवाह ॥10-85॥

17-पुरूषोत्पत्ति ॥10-90॥

18-देवापि और शान्तनु ॥10-98॥

19-हिरण्यगर्भोत्पत्ति ॥10-121॥

20-सृष्ट्युत्पत्ति ॥10-129॥

21-नचिकेतस् ॥1-135॥

यजुर्वेद-

यजुर्वेद में कथाएं गद्य के रूप में प्राप्त होती हैं। यह गद्य साहित्य के विकास का प्रथम चरण था। इसके पूर्व समस्त रचनाएं पद्य रूप में ही थीं। यजुर्वेद की कथाओं में मुख्य रूप से दैवत कथाओं की झलक प्राप्त होती है। तैत्तिरीय संहिता की एक देवासुर संग्राम कथा में नीति विषयक तत्वों का विकास परिलक्षितहोता है। कथा इस प्रकार है-

देवासुर संग्राम में देव, मनुष्य एक पक्ष में थे तथा राक्षस, दैत्य व पिशाच दूसरे में। मनुष्यों की मृत्यु अधिक होने लगी। कारण यह था कि राक्षस मानव के शरीर का रक्त निकाल कर उसमें विष भर कर उसे विषैला कर देते थे। कुछ ही काल के पश्चात् उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती थी। देवताओं ने इस चतुराई को भांपकर राक्षसों को अपने में मिलाने का प्रस्ताव रखा। किन्तु राक्षसों ने इस बात पर कि असुरों को जीतने से प्राप्त धन के वे भी

भागीदार होंगे, देवताओं का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।उधर असुर राक्षसों की यह लोभप्रवृत्ति देखकर मन ही मन बहुत दुखी हुए। आपस में दोनों में फूट पड़ गई और असुर पराजित हो गए किन्तु इसके पश्चात् देवताओं नेराक्षसों के प्रति भी कोई सहानुभूति न रखी अपितु उन्हें निकाल दिया। यह बात राक्षसों को अच्छी न लगी किन्तु देवताओं ने यु. करके राक्षसों को पराजित कर दिया।[1] यह कथा नीति कथा का पूर्वरूप कही जा सकती है क्योंकि छल, बल के द्वारा इसमें देवताओं ने शत्रुओं को परास्त कर दिया।एक तथ्य और भी सामने आता है कि उस काल में अर्थ का भी महत्त्व था। राक्षसगण मात्र धन की लालच में ही देवताओं से मिल बैठे। इस आख्यान में राजनैतिक तथा लौकिकपक्ष दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं।

रात्रि की उत्पत्ति का एक आख्यान मैत्रायणी संहिता में है।[2] यम की मृत्यु के उपरान्त उसकी बहन यमी को देवताओं ने बहुत समझाया। वह यम कोनहीं भूल पा रही थी और देवताओं से यही कहती थी कि यम की मृत्यु आज ही हुई है। देवताओं ने आपस में सलाह करके रात्रि की उत्पत्ति की। रात्रि के पश्चात् जब दूसरा दिन आया तभी यमी अपने दुख को भूल पायी। इसी संहिता में इन्द्र द्वारा पर्वतों के पंखों को काटने की भी सुन्दर कथा है।[3]

<u>अथर्ववेद</u>-

यद्यपि अथर्ववेद का संहितीकरण बहुत बाद में हुआ तथापि इसमें कतिपय ऐसे मन्त्र भी है जो कथा के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। इसमें सरमा की कथा का उल्लेख तो हुआ है किन्तु कथा का वर्णन नहीं है अथर्ववेद में लौकिक विधाओं की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। ऋग्वेद में एक स्थान पर जन्तुओं का दृष्टान्त[4] प्रतीक के रूप में दिखाई देता

- -

1- तैत्तिरीय संहिता- 2-4-1
2- मैत्रायणी संहिता- 1-5-12
3- वही, 1-10-13
4- ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृंगा अयास:
अत्राहि तदुरुगायस्य वृष्ण:परमं पदमव भाति भूरि।"
—ऋग्वेद संहिता- 1-154-6

है। इसी का कुछ विकसित रूप अथर्ववेद में भी है।

" सहस्रश्रृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येंदुना वयं निजनान्त्स्वापयोमसि।।"[1]

इसी वेद में एक मंत्र में कहा गया है कि बन्दर जैसे कुत्ते को तुच्छ मानता है वैसे बन्धन करने वाले रोग या दुख का प्रतिबन्ध करते हैं।[2]

अथर्ववेद में इसी प्रकार के जन्तु विषयक अनेक दृष्टान्त स्थान-स्थान पर मिलते हैं। इस काल में लौकिक विधाओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा था। इसमें जन्तु कथाएं भले ही न हों किन्तु दृष्टान्त के रूप में जन्तुओं का वर्णन किया गया है। यजुर्वेद में जो गद्यशैली दिखाईदेती है उसी का विकास अथर्ववेद में स्पष्ट परिलक्षित होता है। ऐहिक जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा नैतिक तत्व इसमें प्रकट हो चले थे। विभिन्न ज्ञान-विज्ञान का संग्रह इस संहिता में हुआ है। पुरुषार्थ चतुष्टय का भी ऋषियों ने स्थान स्थान पर वर्णन किया है। इसी का पूर्ण विकसित रूप पंचतंत्र तथा हितोपदेश में हैं। ऋग्वेद में वर्णित "द्वासुपर्णा"[3]मन्त्र अथर्ववेद में बिना किसी परिवर्तन के रख दिया गया है। थोड़ा सा परिवर्तन अगलेमंत्र में हैं ऋग्वेद में दूसरा पक्षी एक है और अथर्ववे में अनेक।[4] इसी प्रकार एकअन्य मन्त्र में शरीर को रथ की उपमा दी है और उसे सात घोड़े होते हुए भी सप्त नामक एक ही घोड़ा चलाता है। अर्थात् आंख, कान, नाक, रसना, त्वचा, मन ये छः ज्ञानेन्द्रियाँ हैं किन्तु आत्मा की चित् शक्ति कही शरीर को चलाती है।[5]अथर्ववेद में जन्तुविषयक उपमाओं द्वारा लौकिक व्यवहार परिलक्षित होता है। इस प्रकार शनैःशनैः कथा का विकास होने लगा तथा कथा का प्रभाव ब्राह्मण साहित्य में भी बहुत पड़ा। ब्राह्मण साहित्य के आख्यानों में रोचकता भी आ गई। इस काल में कथाओं ने परिष्कृत रूप धारण कर लिया। शतपथ ब्राह्मण का मनु तथामत्स्य आख्यान कथात्मक दृष्टि से पूर्ण तथा रोचक हैं-

---

1- हजारों सींग वाला बैल अर्थात् हजारों किरण वाला चन्द्र जिसका समुद्र से उदय हुआ है, उस बलवान की सहायता से हम लोगों को सुलादेताहै।- अथर्ववेद-4-5-1
2- ट्अथर्ववेद- काण्ड 3, सूक्त 9, मन्त्र -4
3- ऋग्वेद- 1-164
4- अथर्ववेद- काण्ड 9 सूक्त 9, 20, मंत्र- 20
5- वही, मंत्र- 2

एक बार मनु के पूजन हेतु आचमन करते समय समुद्र से एक छोटे मत्स्य ने निकल कर कहा कि, "मनु, इस समय आप मुझको छोड़ दीजिये। इसके बदले भविष्य में मैं आपकी कोई सहायता करूँगी। मनु ने पूछा कि तुम विपत्ति में मेरी किसीप्रकार सहायता करोगी? वह बोली, "मत्स्यवंश में बड़ी मछलियों द्वारा छोटी मछलियों का भक्षण करलिया जाताहै अतः आप अभी मुझे जल से भरे घट में रख दीजिये। जल में रहकर मैं बड़ी हो जाऊँगी। मेरे बड़े होने पर आप मुझे किसी जलाशय में डालियेगा और इसके पश्चात् मुझे समुद्र में डाल दीजियेगा तो मैं सुरक्षित रहूँगी। मनु ने उसके आदेशानुसार वैसा ही किया। मछली जब बड़ी हो गई तो उसने भविष्य में होने वाले एक जलप्लावन की घोषणा मनु के समक्ष कर दी तथा एक पोत बनाकर जल प्लावन के समय उसी में मनु को बैठने का आदेश दिया। मत्स्य के कथनानुसार मनु ने वैसा ही किया। जलप्लावन के समय मत्स्य ने मनु को उस पोत में बैठाकर उत्तराचल के सुरक्षित स्थान पर छोड़ दिया और कहा कि आप इस पोत को किसी वृक्ष से बाँध दें इतनाकहने के बाद मत्स्य ने कहा कि मेरा वचन पूर्ण हो चुका है। मनुने उसके आदेशानुसार सभी कार्य उसी प्रकार किये तथा इस प्रकार अपनी सुरक्षा की। इस कथा से परोपकार की शिक्षा मिलती है और जन्तुकथा काविकसित रूप भी दिखाई देता है। जीवों में परोपकार के बदले परोपकार की भावना का भी उल्लेख इस कथा में हैं। शतपथ ब्राह्मण में अनेक कथाएं हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं-

1- नमुचि और इन्द्र की कथा

2- अग्नि, इन्द्र और आप्त्य की कथा

3- पुरुरवा और उर्वशी की कथा

4- मन और वाक् के कलह की कथा

5- ऋतुओं, असुरों औरदेवताओं का आख्यान

6- त्वष्ट, इन्द्र और वृत्त का आख्यान

7- गायत्री, सोम और धर्नुधारी का आख्यान

8- विष्णु के तीन पगों से सम्बन्धित आख्यान

9- देवताओं में कलह से सम्बन्धित आख्यान

10- यव का आख्यान

11- बारहवें यूप का कथा

12- वैश्वानर और अश्वपति कैकेय का आख्यान

13- नाम और राप की कथा

14- श्री और प्रजापति की आख्यान

15- भृगु और वरुण का आख्यान

16- सिंह द्वारा साम्राज्य गाय का हनन

17- वर्ष में दिनों की संख्या

ऐतरेय ब्राह्मण-

ऐतरेय ब्राह्मण में भी अनेक आख्यान हैं। शतपथ ब्राह्मण के समान इसमें भी कथा कुछ विकसित रूप में सामने आती है। ऋग्वेद की अनेक कथाओं को इसमें भीनवीन रूप दे दिया गया है। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि ऐतरेय ब्राह्मण की कथाओं में राजनीति का विकास अधिक परिलक्षित होता है। देवताओं द्वारा अपनाए गए छल का तथा असुरों, मनुष्यों एवं ऋषियों के द्वारा उस छल में फँस जाने का भी वर्णन है किन्तु उसमें कतिपयय स्थल ऐसे भी हैं जहाँ पर मनुष्यादि ने भी देवताओं की चतुरता को समझ लिया तथा अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया। इसी का ही एक उदाहरण इस प्रकार है-

"देवताओं ने तो ज्योतिष्टोम यज्ञ करके स्वर्गप्राप्त कर लिया किन्तु स्वर्गजाते समय उन्होंने इस भय से कि कहीं मनुष्य भी न स्वर्ग प्राप्त कर लें उन्होंने यूप को उल्टा गाड़ दिया जिससे मानवजन भ्रमित हो जाएं किन्तु मनुष्यों एवं ऋषियों ने ज्यों ही यूप को उत्थ देखा तो वे देवताओं की चाल भली भाँति समझ गए और उन्होंने यूप ठीक से रख दिया यज्ञ सम्पन्न हुआ एवं स्वर्ग की ओर उन्होंने प्रस्थान किया।"[1]

इसी प्रकार के अन्य आख्यानों का भी उल्लेख किया गया है। इन आख्यानों में देवताओं के साथ-साथ मनुष्य भी धर्मादि कार्यों में पूर्ण रूपेण सजग प्रतीत होते हैं किन्तु

1- ऐतरेय ब्राह्मण- 2.6.1

धर्म प्राप्त करने में एक दूसरे को धोखा देने की बात से उस काल की राजनीति की स्थिति भी दृष्टिगोचर होती है।कथा में प्रस्तुत करने का तथा पुरुषार्थ चतुष्टय को महत्व देने की यही विधि पंचतंत्र एवं हितोपदेश तक व्याप्त हो गयी।

ऐतरेय ब्राह्मण को सौपर्णाख्यान तथा शुनःशेप आख्यान अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों का वर्णन ऋग्वेद में हो चुका है किन्तु ऐतरेय तक आते-आते इनका रूप किंचित् भिन्न हो गया। कहानी में किंचित् विकास भी कर दिया गया ब्राह्मणों में वर्णित आख्यान पुरुषार्थ चतुष्टय का ज्ञान देने वाले दिखाई देते हैं।अर्थ की महिमा तो इतनी अधिक थी कि पिता अपने पुत्र को मात्र धन के कारण मार डालने तक को तत्पर हो जाता है। इस कथा को पढ़ने के पश्चात् पाठकगण उस अधर्मी पिता के समान कभी नहीं बनना चाहेंगे। ऐतरेय ब्राह्मण के कतिपय मुख्य आख्यान इस प्रकार हैं-

1- ऐतरेय ब्राह्मण 1-4-1
2- " " 6-3-8
3- " " 2-8-1
4- " " 3-13, 1-2
5- " " 2-6-3
6- " " 2-6-6
7- " " 2-9-1
8- " " 6-29-8
9- " " 77-33, 1-6
10- " " 3-14
11- " " 3-37
12- " " 3-49-50
13- " " 4-17, 5-1
14- " " 3-33
15- " " 5-22-3-20-22
16- " " 6-33
17- " " 5-14

तैत्तिरीय ब्राह्मण-

तैत्तिरीय ब्राह्मण की अनेक कथाओं को ऋग्वेद तथा तैत्तिरीय संहिता आदि से ग्रहण किया गया है। इन कथाओं में भी वैसी ही चतुरता छल, राजनीतिक दाँव-पेंच आदि हैं। देवतागण किसी भी प्रकार से असुरों को पराजित करने में जुटे हुए हैं।

इस ब्राह्मण की मुख्य कथाएं इस प्रकार हैं-

1- तैत्तिरीय ब्राह्मण 1-1-2
2- " " 1-1-4, 1-5-9
3- " " 1-1-9
4- " " 2-1-1
5- " " 2-2-9
6- " " 2-3-11
7- " " 3-9-21
8- " " 3-10-9-11
9- " " 3-11-8
10-" " 1-1-3

आरण्यक-

ब्राह्मण काल में दृष्टान्तों के माध्यम से अपने विचारों को पुष्ट करने का जो प्रयास था, उसे ही आरण्यक में भी स्थान प्राप्त हुआ। तैत्तिरीय आरण्यक में अजापुत्र अदिति की कथा का वर्णन आया है।[1] एक अन्य कथा में शासन एवं ब्रह्मचर्य का पालनकर देवताओं ने यज्ञ किया, तब उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई किन्तु असुरों ने वैसा नहीं किया अतः उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति न हो सकी, का वर्णन है।[2] एक संघर्ष कथा के द्वारा तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक गतिविधियों का संकेत प्राप्त होता है।[3]

1- तैत्तिरीय आरण्यक- 1-13
2- वही, 2-1
3- वही, 5-1

ब्राह्मणों की कथाओं के ही समान आरण्यकों की कथाओं में भी कहानी की कला नहीं थी। मात्रविचार सिद्धान्त एवं कथन की पुष्टि हेतु ही जाने वाली कथाएं वर्तमान विकसित कहानी का पूर्वरूप ही थीं। इन कथाओं में भी ऐहिक जीवन के प्रत्येक पक्षों को स्पष्ट किया गया है। धर्म की प्रधानता भी दिखाई देती है।

उपनिषत् साहित्य-

यद्यपि उपनिषदों का मुख्य विषय ब्रह्मचर्चा है तथापि इसमें कतिपय आख्यान प्राप्त होते हैं। कठोपनिषद में नचिकेता की कथा का वर्णन है। बृहदारण्यकोपनिषद् में देवासुर संग्राम की कथा है।[1] छान्दोग्योपनिषद् में सत्यकाम और जाबालि की कथा मिलती है।[2] राजा जानश्रुति की कथा में भी दो हंसों के संवाद की कथाओं का वर्णन है।[3] इसी उपनिषद् की श्वान कथा वास्तव में बहुत सुन्दर है।[4]

राजनीतिशास्त्र का भी वर्णन इस उपनिषद् में है किन्तु इसे एकायन कहा गया है।[5] शंकराचार्य एकायन का अर्थ नीतिशास्त्र बतलाते हैं।[6] उपनिषत् साहित्य का निर्माण ही आध्यात्मिक तत्वों की दृष्टि से किया गया था। इनसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की शिक्षा प्राप्त होती है। ब्रह्मविद्या के साथ ही साथ उपनिषत् साहित्य में जन्तु कथाओं का भी वर्णन है।

छान्दोग्योपनिषद् में सत्यकाम जाबालि की कथा में पशुओं द्वारा उपदेश दिया गया है। कथा इस प्रकार है-

- -

1- बृहदारण्यकोपनिषद्- 1-13
2- छान्दोग्योपनिषद्-अध्याय-4
3- वही, 4-1-5-8
4-वही, 1खण्ड-12
5-वही, 7-1-2
6- एकायनं नीतिशास्त्रम्

"एक बार सत्यकाम जाबालि ने अपनी मा से पढ़ने की इच्छा व्यक्त करके अपना गोत्रनाम पूछा । माँ ने उससे कहा, "मैं तो तुम्हारा वंश नहीं जानती हूँ कारण यह है कि मैंने तो तुम्हें इतस्ततः भ्रमण करते हुए ही प्राप्त किया है। मेरा नाम जाबाला तथा तुम्हारा नाम सत्यकाम । यही तुम गुरु को बता देना ।" सत्यकाम ने गुरु के समीप जाकर माँ की कही सभी बातें बता दी। गुरु गौतम ने उसे प्रसन्न होकर अपना शिष्य स्वीकार कर लिया और कहा, "ब्राह्मण के अतिरिक्त इस प्रकार सत्य कौन बोलेगा?गुरु ने उसे चार सौ निर्बल गाएं देकर कहा कि इस गायों के पीछे-पीछे जाओ जब ये एकसहस्र हो जाएं तो लौट आना।

जब एक हजार गाएं हो गईं तब सत्यकाम से बैल ने कहा, "वत्स,अब हम लोग एक सहस्र हो गए हैं अब हमें गुरु के पास ले चलो मैंतुमको ब्रह्मविधा का किंचित् अंश सुनाता हूँ। इस प्रकार बैल के द्वारा प्राप्त ज्ञान को सीखता हुआ वह गुरु के समीप चल पड़ा।मार्ग में उसका अग्नि,हंस एवं जलमुर्ग ने भी उपदेश दिये तत्पश्चात् जब वह गुरुकुल में गया तो वहाँ गुरु ने कहा कि तुम ब्रह्मवेत्ता प्रतीत होते हो।यह ज्ञान तुमको किससे प्राप्त हुआ? तो सत्यकाम ने उनको समस्त घटना सुना दी।फिर गुरुमुख द्वारा भी सम्पूर्णउपदेश पुन. सुने ।

छान्दोग्य में वर्णित इस कथा द्वारा यह स्पष्ट है कि पशुपक्षियों का स्थान और बढ़ गया मात्र दृष्टान्त ही नहीं अपितु ये जीवधारी उपदेश तक देते थे यही उल्लेख ऋग्वेद के सरमापणिआख्यान में भी प्राप्त हजहाँ सरमा ने पणियों को उपदेश दिया था। छान्दोग्य में भी जीवों द्वारा ब्रह्म विधा का उपदेश दिया गया है। यही विधा पंचतंत्र एवं हितोपदेश में भी परिलक्षित होती है। छान्दोग्य की इन कथाओं के अधोलिखित तथ्य सामने आते हैं कि-

1- पिता के न रहने पर माता के नामसे भी कार्य-सम्पादित किया जाता था।उस समय समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी प्रतीत होती है।[1]

1- छान्दोग्य अध्याय- 4-42

2- राजा जानश्रुति पौत्रायण की कथा में हुए हंसों के सम्वाद से पता चलता है कि उस काल में अर्थ का महत्व अधिक था। शूद्र व्यक्ति प्रचुर मात्रा में धन देकर ही ब्रह्म विद्या ग्रहण कर सकता था।[1]

3- इसकी श्वानकथा मात्र एक व्यंग्य कथा है तथापि इसे जन्तुकथा का पूर्वरूप कहा जा सकता है। यद्यपि यह पंचतंत्र एवं हितोपदेश के समान विकसित कथा नहीं है किन्तु इसमें कथा के समस्त गुण हैं।

कठोपनिषद में नचिकेता की कथा में मोक्षतत्व की प्राप्ति का उपदेश दिया गया है। जिस प्रकार से बालक नचिकेता ने ऐश्वर्य तथा धन के प्रलोभन को अस्वीकार करके अपने संकल्प पर श्रद्धापूर्वक अटल रहकर आत्मतत्व तथा मुक्तितत्व को सीख लिया तथा मोक्ष की प्राप्ति की ठीक उसीप्रकार जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक अपने संकल्प पर दृढ़ रहता है और आध्यात्म विद्या को धारण कर लेता है उसे निश्चितरूप से परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् उस व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार से इस कथा में नचिकेता को समस्त उपदेश देने के पश्चात अन्त में अन्य समस्त जीवों को भी यह उपदेश दिया है। श्रद्धापूर्वक अडिग विश्वास से आत्मतत्व का ज्ञान करने वाले विशुद्ध जीव को मोक्ष प्राप्त होता है।[2] इसमें कथा के माध्यम से मोक्षप्राप्ति तथा आत्मतत्व जैसे विषय का उपदेश दिया गया है।

पुराण साहित्य-

पुराण साहित्य में कथा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। बाल्मीकि रामायण में कथाओं का समुचित समावेश है। इसमें मानवों तथा जन्तुओं पर भी आधारित कथाएं हैं।

1- छान्दोग्य अध्याय- 4-1-5-8

2- मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथलब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।
ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव।।

जब विभीषण राम की शरण में आया तब सुग्रीव ने रामको सचेष्ट किया कि उसे शरण में लेना उचित नहीं है। इस पर श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव को एक कपोत-कपोती आख्यान[1] सुनाकर शरणागत को शरण में लेने का औचित्य बताया-

"सुना जाता है कि एक कबूतर ने अपनी शरण में आए हुए अपने ही शत्रु एक व्याध का यथोचित सत्कार ही नहीं किया अपितु अपने शरीर का मांस तक खिलाया। उस व्याध ने कबूतर की भार्या को पकड़ लिया था तब भी अपने घर पर कबूतर ने उसका आदर किया था फिर मेरे जैसा मनुष्य शरणागत पर अनुग्रह करे। इसके लिये तो कहना ही क्या है।"

इस आख्यान से स्पष्ट है कि शरणागत को शरण प्रदान करना ही सत्पुरुष का कर्तव्य है तथा यह राजधर्म के साथ ही साथ प्रत्येक व्यक्ति के अनुकूल है। इस कथा में राजधर्म का ही नहीं अपितु एक साधारण व्यक्ति हेतु भी इसी धर्म का उपदेश प्रदान किया गया है। धर्म के द्वारा मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति संभव है। जिस प्रकार वैदिक युग में इन्द्र ने सरमा को पणियों के पास दूत बना कर भेजा था।[2] ठीक उसी प्रकार जन्तुओं को दूत बनाने की कथा एवं प्रथा रामायण काल में भी परिलक्षित होती है। युद्धकाण्ड में शार्दूल के कहने से रावण द्वारा शुक को दूत बना कर सुग्रीव के पास संदेश भेजना इस का सबल प्रमाण है। रामायण में इसी प्रकार की अनेक कथाएं हैं जिनमें जीव जन्तुओं को माध्यम बनाकर विभिन्न उपदेश दिये हैं और ये उपदेश हैं पुरुषार्थ चतुष्टय के। कथाओं का विकसित रूप भी दिखाई देता है। समस्त कथाएं अपने सही अर्थ को प्रकट करती है। रामायण में वर्णित विभिन्न कथाएं इस प्रकार हैं-

- -

1- श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः।
अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः।।
स हि तं प्रति जग्राह भार्याहर्तारमागतम्।
कपोतो वानर श्रेष्ठ किं पुनर्मद्विधो जनः।।

श्रीमद्वाल्मीकियरामायण- प्रथमसर्ग-गीता प्रेस-युद्धकाण्ड
18, सर्ग, श्लोक-24-25

2- ऋग्वेद-10-108

1- बाघ एवं व्याध की कथा [1]

2- श्वानकथा [2]

3- वामन अवतार[3]

4- गंगावतरण [4]

5- समुद्र मन्थन [5]

6- ययति नहुष[6]

7- उर्वशी पुरूरवा[7]

बालकाण्ड की कुछ कथाएं मूलकथा से सम्बद्ध न होने के कारण स्पष्ट ही परवर्ती एवं प्रक्षिप्त प्रतीत होती हैं। ऐसी कथाएं अन्य काण्डों में प्राप्त नहीं हैं। विद्वानों का अनुमान है कि सम्भवत: महाभारत की प्रतिस्पर्धा में परवर्ती विद्वानों ने प्रक्षिप्त अंश वाल्मीकि रामायण में समाविष्ट कर दिये हैं। महाभारत में कथाएं हैं, अत: रामायण में भी अनेक कथाएं बाद में जोड़ दी गई हैं। रामायण की कथाओं में विषय की उदात्तता, चरित्र का उदात्त चित्र, घटनाओं का वैचित्र्यपूर्ण एवं मनोहारी विन्यास, रस की अन्विति भाषा सौष्ठव तथा मानव मनोवृत्तियों का विशद रूप मिलता है। इनमें धार्मिकएवं नैतिक आदर्शों का भण्डार होने के साथ-साथ पुरातन युग की जीवित परम्पराओं, धारणाओं, आकांक्षाओं तथा भावनाओं का चित्रण है, जिसके कारण ये प्राचीन भारतीय सभ्यताऔर संस्कृति की द्योतक हैं।

महाभारत-

विश्वसाहित्य के इतिहास में महाभारत सबसे बड़ा महाकाव्य है। महाभारत के विषय में महाभारत में ही कहा गया है-

---

1- रामायण भूषण टीका से वाल्मीकीय रामायण से-युद्धकाण्ड-113सर्ग-श्लोक5 42-44

2- वाल्मीकियरामायण- प्रक्षिप्त सर्ग-2, श्लोक 4 से 10 तक

3- वही, 1-29

4- वही, 2-38, 44

5- वही, 1-45

6- वही, 7-58

7- वही, 7-89

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।"

महाभारत भारतीय कथाओं के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें वैदिक कथाओं, दैवत एवं पुरातन कथाओं का विकसित रूप है। यों तो इसका मुख्य कथानक कुरुवंश के महान युद्ध से संबंधित है किन्तु इसमें बीच-बीच में अनेक अवान्तर कथाएं हैं, जो पौराणिक गाथाओं के रूप में हिन्दुओं के समाजिक जीवन में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। इसकी पशु पक्षियों की कथाओं में भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण मूल्यों को अत्यंत कलात्मक ढंग से वर्णित किया गयाहै। महाभारत के सभी पर्वों में विशेष रूप से शांतिपर्व विभिन्न प्रकार की नीतिकथाओं से भरा पड़ा है।आदि पर्व की तीनों मत्स्यों की कथा[1] पंचतंत्र तथा हितोपदेश में भी है जिसमें तीन मत्स्यों में से एक दूरदर्शी होने के कारण मुसीबत आने से पहले ही बच निकला, दूसरा मुसीबत आने पर बुद्धिमत्ता से बच निकला किन्तु तीसरा अपनी बुद्धिहीनता तथा आलस्यके कारण नष्ट हो गया। इसी प्रकार तपस्वी ऊँट के आलस्य के कुपरिणाम के उपाख्यान[2] में राजा के कर्तव्य का उल्लेख है। राजा को आलस्य त्याग कर कर्तव्य पालन करना चाहिये। शांति पर्व मेंअनेक नैतिक आख्यान हैं तथा लगभग 12 नीतिकथाएं हैं-

1- व्याघ्र गोमायु सम्वाद

2- उष्ट्रग्रीवोपाख्यान

3- नदियों और समुद्र का सम्वाद

4- श्वान-दृष्टान्त

5- मत्स्योपाख्यान

6-मार्जार-मूषक-सम्वाद

7- ब्रह्मदत्त-पूजनी-सम्वाद

8- कपोत-व्याध संवाद

9- गृध्र-गोमायु संवाद

10-शाल्मलि-वृक्ष कथा

11-ऊँट और दो बैलों की कथा

12-काश्यप-श्रृगाल संवाद

1- महाभारत- आ० पर्व-अध्याय-37

2- वही, राजधर्मपर्व- अध्याय-112

इनमें से कुछ आख्यानों ने अपने परवर्ती साहित्य में भी स्थान प्राप्त किया। कणिक नीति की जम्बुक-कथा राजनीति की शिक्षा देने में अत्यन्त उपयोगी है।कथा इस प्रकार है- एक चतुर सियार का व्याघ्र, चूहा, भेड़िया तथा नेवला मित्र थे। अनेक प्रयास के पश्चात् भी एक बार वे एक मृग को न मार सके तो सियार को परामर्श पर चूहे ने सोए हुए मृग के पैरों को काटा और व्याघ्र ने उसे जल्दी से पकड़ कर मार डाला। सियार के यह कहने पर कि सभी नहाकर आओ मैं इसकी रक्षा करूँगा सब नहाने चले गए। सियार वहीं चिन्तित खड़ारहा। शेर ने आकर उसकी चिन्ता का कारण पूछा। सियार ने कहा "चूहा कहता कि मैंने ही मृग को मारा है।" यह सुनकर व्याघ्र यह कहकर चलागया कि हम दूसरों के शिकारको हाथ नहीं लगाते हैं। चूहे के आने पर सियार ने उससे कहा, "नेवला इस मृग के माँस को दूषित होने के कारण पसंदनहीं करता। वह तुम्हें ही मारने को सोच रहा है।" यह सुनकर चूहा डरकर भागगया।तत्पश्चात् जब भेड़िया आया तो सियार ने उससे कहा कि, "व्याघ्र बहुतनाराज है। वहसपत्नीक यहाँ आ रहा है।" अपना भविष्य खतरे में जानकर भेड़िया भी डरकर चला गया। अंत में नेवले के आने पर सियार ने उसे ललकारा "मैंने सभी जीवों को भगा दिया अब बाहुयुद्ध के द्वारा ही तुम इस मृग माँस को प्राप्त कर सकते हो। नेवले ने कहा, "जब तुम व्याघ्र और भेड़िये जैसे जीवों को जीत चुके हो तो तुम वास्तव में वीर हो। तुम्हारे साथ कौन युद्ध करे।" यह कहकर वहभी चलागया।

इस कथा का नीतिसार मनुष्य को बड़े के साथ आदर से, डरपोक को डराकर, बराबरी के साथ शक्तिहीन शक्ति के साथ बाहुबल द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहिये। पंचतंत्र में भी यही कथा आई है।[1] किन्तु कतिपय परिवर्तन के साथ है।उसमें सियार सिंह, व्याघ्र और चीते की कथा है। इसमें सियार अपने बुद्धिबल द्वारा अपने मित्रों को भगाकर स्वयं भोजन कर लेता है।

इतना ही नहीं अनुशासन पर्व की भी कुछ कथाएं नैतिकता का उपदेश देने में पीछे नहीं हैं। ये हैं- गौतमी लुब्धक सर्प मृत्यु तथा काल का संवाद, सियार और बन्दर का संवाद, श्येनकपोताख्यान तथा कीटोपख्यान। आश्वमेधिक पर्व का नकुलाख्यान[2] भी देखने योग्य है।

1- पंचतंत्र- 4/10

2- महाभारत- 14/90

महाभारत तक में भारतीय नीतिकथाएं अपने स्पष्ट रूप में प्रकट हो चली थीं। नीतिशास्त्र के आचार्यों ने जब से जन्तुकथाओं को अपने सिद्धान्तों को पुष्ट करने के लिये अपनाना प्रारंभ कर दिया, तभी से उनका स्तर ऊँचा उठ गया। समाज में इस प्रकार की नीतिक कथाएं पहले ही अपनाई जा चुकी थी। उनका यह प्रभाव देखकर ही महाभारत में संस्कृत नीतिकथा को साहित्यिक रूप मिल गया। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी की शिक्षा है। राजधर्म के उपदेशों पर विशेष बल दिया गया है। कुछ कथाएं हास्य विनोद, आत्म-समर्पण, नीति-निपुणता, प्रत्युत्पन्नमति, अतिथि सत्कार, लौकिक व्यवहार जैसी अनेक शिक्षाओं से ओतप्रोत हैं। महाभारत में नीतिकथाओं के अतिरिक्त अनेक दृष्टान्त कथाएं भी हैं।

जातक कथाएं-

भारत के आख्यान साहित्य में जातक कथाओं का विशेष स्थान है। ये कथाएं पालि भाषा में लिखि गई हैं। भगवान् बुद्ध जो कि बौद्ध धर्म के प्रतिष्ठापक थे, ने प्राचीन युग से चली आ रही दैवत कथा को छोड़कर लोककथाओं में ही जनसाधारण को उपदेश देने आरंभ कर दिये। पालिभाषा में रचित त्रिपिटक नामक ग्रन्थ बुद्ध वचनों का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।[1] यह त्रिपिटक ग्रन्थ तृतीय बौद्ध धर्म सम्मेलन पर वैशाली में ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में संकलित हुआ।[2] भगवान बुद्ध के निर्वाणके पश्चात् लौटने के कुछ सप्ताह के बाद ही बौद्ध परम्परा के अनुसार यह सम्मेलन हुआ होगा।[3] भरहुत के अभिलेखों में "पंचनेकायिक" "सुत्ततिक" "पेटकी" (पिटकों के ज्ञाता) जैसे अनेकशब्द उल्लिखित हैं। भरहुत के लेख ईसा पूर्व तीसरी शती मे ही अंकित किये जा चुके होंगे। यह भी निश्चित है कि इस काल तक पिटक आदि नामों से जनसमुदाय काफी परिचित हो चुका होगा। पहली धर्म सभा में अथवा भगवान बुद्ध के लगभग 100 वर्ष बाद द्वितीय सभा में त्रिपिटक का संकलन प्रा... हुआहोगा। तभी ईसा पूर्व तीसरी शती में भरहुत के अभिलेखों में उन्हें स्थान मिल सका।

- -

1- भरत सिंह उपाध्याय-पालि साहित्य का इतिहास-2008-हि0सा0सं0-अध्याय 3 रापृ0-

2- Dr. Winternitz- History of Indian Literature Vol. II Page 45

3- विनयपिटक, चुल्लवग्ग-

त्रिपिटक कथाओं कीप्राचीनता का अनुमान इसके द्वारा भलीभाँति लग जाता है। डा० विण्टरनिट्ज ने इन गाथाओं को वैदिकयुग कामाना है।[1]

तीन पिटकों में निर्मित त्रिपिटक बुद्ध देव के उपदेशों एवं भाषणों से भरा पड़ा है। राजकथा, चोरकथा, ग्राम कथा, स्त्री भूतप्रेत, नगर जनपद जैसी अनेक कथाएं "सीलक्खन्ध-वग्ग" में मिलती हैं।

खुद्दक निकाय में 35 चरित्रों का उल्लेख है। जातक कथा में अकित्ति जातक से प्रारम्भ करके लोभ-हंस जातक तक 35 चरित्रों का पता चलता है। इस प्रकार जातक की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है।

रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत जैसे ग्रन्थों की अनेक कथाएं जातक कथाओं में मिलती हैं किन्तु अनेक कारणों से इन सबके रूप परिवर्तित हो गए हैं। दशरथ जातक की रामकथा रामायण से ली गई है। महाभारत का प्रसिद्ध यक्ष युधिष्ठिर आख्यान का भी विकृत रूप जातक में है।

जातकों की विशेषताएं-

जातकों की विशेषताएं अनन्त हैं और यह अधिकार पूर्वक कहा जा सकता है कि विश्वसाहित्य में उनका अपना स्थान है।

इन कथाओं के पात्र देवता, यक्ष, नाग, प्रेत के अतिरिक्त इसी धरती के साधारण जीव हैं। वे चाहे केकड़े हों या बन्दर, गीदड़, शेर, सुअर, बगुले, बिल्ली या कौए हों। इन सभी जीव-जन्तुओं का जीवन-प्रवाह सर्वाधिक सचेतन प्राणी मानव के जीवन प्रवाह के समान ही प्रवाहित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य का बहुत बड़ा परिवार है जिसमें प्रकार के जीव-जन्तु, कीट-पतंग, प्रेत-पिशाच, यक्ष-किन्नर भी हैं।

जातकों की कथाएं जीव-जन्तुओं और मानव को एक ही सूत्र में पिरोती हैं, सभीको कर्म करने की प्रेरणा देती हैं। "मनो धर्म" का अर्थ मात्र मानव का मानव से मित्रता

1- Dr Winternitz History of Indian Literature Vol. II Page 123

ही नहीं है। अपने स्वाभाविक शत्रु-शेर, साँप, घड़ियाल आदि के प्रति मनुष्य को सजग रहना चाहिये। इस प्रकार से इसमें मानव के कर्तव्य क्षेत्र को विशेष रूप से विस्तृत कर दिया है। पड़ोसी ही अपवासाधारण जीवजन्तु सभी को आपस में मैत्री भाव रखकर सुखी रहने की बात जातकों में बार-बार दुहराईगई है।

जातकों में हिन्दू कथाएं-

जातक कथाओं में हिन्दू-कथा-साहित्य(महाभारत, श्रीमद्भागवत, रामायण आदि) को स्थान दिया गया है। महाभारत की अनेक कथाओं का परिवर्तित रूप हम जातक कथाओं में पाते हैं। रामायण की कथाएं भी परिवर्तित कर दी गई हैं।

भाषा-

जातक कथाएं पालि भाषा में लिखी गई हैं। पालि भाषा उस समय सर्वसाधारण जनता में प्रचलित थी, किन्तु संस्कृत भाषा पर ब्राह्मण-वर्ग का पूर्ण आधिपत्य था। बुद्धदेव ने पालिभाषा का ही सहारा लिया। जातक -कथाओं में वैदर्भी रीति की कोमल-कान्त-पदावली है। गद्य सरल और लम्बे वाक्य वाले हैं।

परवर्त्ती साहित्य

1- बृहत्कथा-

मनोरंजक कथाओं का सबसे बड़ा संग्रह बृहत्कथा है। इसकी रचनागुणाढ्य ने की थी, जो महाराजा हाल के राजकवि थे। विभिन्न विद्वानों ने इसकी रचनाकाल के विषय में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये। हैं। कतिपय विद्वान् इसे पाँचवीं शती की तो कुछ प्रथम शती की रचना मानते हैं। इसकी भाषा पैशाची प्राकृत है। आज यह ग्रन्थ अपने मूल में प्राप्त नहीं है। इसके तीन संस्कृत अनुवाद उपलब्ध हैं-

अ- बृहत्कथा श्लोक संग्रह-

इसकीरचना नेपाल के बुधस्वामी द्वारा आठवीं या नवीं शताब्दी में की गई। यह रचना भी पूर्ण उपलब्ध नहीं है। अट्ठाइस सर्गों के अंतर्गत लगभग साढ़े चार हजारश्लोक

हैं। कुछ अंश प्राकृत भाषा में भी लिखे गए हैं। बृहत्कथा के इस सर्वाधिक प्राचीन अनुवाद में राजा नरवाहन दत्त के छब्बीस विवाहों में से मात्र दो की ही साहस भरी कथाएं हैं।

ब- बृहत्कथा मंजरी-

इस ग्रन्थ की रचना महाकवि क्षेमेन्द्र ने ग्यारहवीं शती में की थी। इसमें लगभग साढ़े सात हजार श्लोक हैं। यह भी बृहत्कथा का संक्षिप्तरूप है। इसका अधिकांश मूल इसमें सुरक्षित है। इसमें कथावस्तु को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। डा० कीथ ने लिखा है[1] "भारत मंजरी और रामायण मंजरी के समान क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी भी संभवतः उनके यौवनकाल रचना है। इनकी रचना कदाचित् उन्होंने अपने ही इस सिद्धान्त के अनुसार की थी कि जो कवि बनना चाहता है उसे पहले रचना का इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिये। इन संक्षेपों का स्वरूप सुविदित है। वे शुष्क और गंभीर हैं। मूलार्थ की रक्षा करते हुए भी वे मूल के अंशों को बहुत अधिक छोड़ देते हैं और उसमें इतनी काट-छाँट करते हैं कि वह अस्पष्ट हो जाता है और उसमें स्वयं सजीवता एवं आकर्षण नहीं रहने पाता। क्षेमेन्द्र, अपने संक्षेपों में रोचकता लाने के प्रयत्न के स्थान में अपनी रचनाओं की रूक्षता को दूर करने की दृष्टि से बीच-बीच में सुन्दर वर्णनों का समावेश करना पर्याप्त समझते हैं। परन्तु इन वर्णनों का कोई महत्त्व नहीं है। इनसे कोई प्रयोजन सिद्ध न होकर केवल ग्रन्थों का आकार बढ़ जाता है।"[1]

स- कथासरित्सागर-

इसके रचयिता सोमदेव हैं। इसकी रचना 1063 ई० से 1081 ई० के मध्य मानी जाती है। यह अत्यन्त विशाल ग्रन्थ है। यथास्थान सोमदेव ने "कथासरित्सागर" में "बृहत्कथा की कथा में परिवर्तन भी किये हैं। इसकी महत्ता का आधार यह है कि सरल और अकृत्रिम होते हुए भी, एक आकर्षक और सुन्दर रूप में कथाओं की एक बड़ी भारी संख्या को विभिन्न स्वरों में मनोविनोदी अथवा भयानक अथवा प्रेमसम्बन्धी अथवा समुद्र और स्थल के अद्भुत दृश्यों सहित आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसे 18 लम्भकों के साथ 24 तरंगों में विभक्त किया गया है।

1- सं०सा० का इतिहास- कीथ- अनु० मंगलदेव शास्त्री

इन तीनों अनुवादोंमें बृहत्कथा अपने मूल को किस अनुवाद में सर्वाधिक सुरक्षित रखे हुए है यह निर्णय प्रमाणों के अभाव में करना कठिन है।

2- वेताल पंचविंशतिका-

बृहत्कथा के तीनों अनुवादों तथा पंचतंत्र के ही समान वेतालपंचविंशतिका का भी कथा साहित्य में विशिष्ट स्थानहै। इसकी रचना शिवदास ने की है। डा० हर्टेल महोदय के अनुसार [1], जम्भलदत्त की रचना के आधार पर शिवदास ने 1487 ई० से बहुत पहले ही "वेतालपंचविंशति लिखी थी, क्योंकि उसी समय का इसका प्राचीन हस्तलेख उपलब्ध होता है। बारहवीं शताब्दी का भी एक संस्करणउपलब्ध है, अत: इसका रचनाकाल ग्यारहवीं शताब्दी अनुमान किया जा सकता है। यह गद्य रचना है और भारत की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। इसकी शैली सरल, स्वच्छ तथा आकर्षक है। बीच-बीच में नीति संबंधी पद्य हैं, जोअनुप्रास में हैं। इसमें 25 कथाएं हैं जिसका वक्ता वेताल और श्रोता त्रिविक्रमसेन है।

3- सिंहासन द्वात्रिंशिका-

बत्तीस कथाओं के इस संग्रह का कथा साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके दो संस्करण मिलते हैं- उत्तर संस्करण तथा दक्षिण संस्करण। इसमें मनोरंजक कथाएं हैं। इसकी रचना लगभग तेरहवीं शताब्दी की मानी जाती है। इसमें महाराजा विक्रम से संबंधित कथाएं है। राजा भोजभूमि में गड़े हुए विक्रमादित्य के सिंहासन को उखाड़ कर ज्यों ही उस पर बैठने का प्रयास करते हैं कि उसमें जड़ी हुयी बत्तीस पुतलियाँ राजा विक्रम का पराक्रम सुनाकर उन्हें सिंहासन पर बैठने के अयोग्य सिद्ध करके बैठने से रोकती हैं।

4- शुकसप्तति-

इसकी रचना किसी अज्ञात रचयिता द्वारा की गई है। आज इसके दो संस्करण मिलते हैं। पहले संस्करण की रचना चिन्तामणि नेतथा दूसरे को किसी जैन धर्मावलम्बी

1- संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ- डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल-पृ०- 307

श्वेताम्बर ने की है। इसमें सत्तर कथाएं हैं। इसकी रचना ग्यारहवीं शताब्दी में हुई थी। इन कथाओं का वक्ता है तोता तथा श्रोता है मैना। इसका गद्य सरल और सुबोध है। बीच-बीच में उपदेशात्मक श्लोक भी आए हैं। इसकी कथा में मदनसेन नामक कोई युवक किसी कारणवश परदेश जाता है। उसकी विरही पत्नी को शुक सत्तर कथाएं सत्तर रात्रि में सुनाकर परपुरुषों के पास जाने से रोके रखता है। इन कथाओं के समाप्त होते-होते मदनसेन परदेश से लौट आता है। इन कथाओं में स्त्रियों की धूर्तता, कपटाचरण तथा उनके त्रियाचरित्र का सुन्दर वर्णन किया है।

उपर्युक्त विभिन्न कृतियों के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कथा साहित्य का उद्भव तथा विकास किन-किन सरणियों से हुआ है। उद्भव और विकास पर प्रकाश डालना ही इस शीर्षक का मुख्य प्रतिपाद्य विषय था। विषय-सामग्री जुटाने में तथा प्रामाणिक संगति बैठाने में कहाँ तक मुझे सफलता मिली इसे सुधी समीक्षक सरलता से समझ सकेंगे। कथा के विषय में तथा उसकी प्राचीनता के विषय में भले ही लिपिबद्ध साहित्य न उपलब्ध हुआ हो, मनुष्य जाति के साथ ही सोदरों की भाँति कथा का जन्म हुआ है। इस प्राचीनता पर कोई विवाद नहीं है। हितोपदेश और पंचतंत्र की लोकप्रिय कथाओं को तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से जनमानस तक पहुँचाने का प्रयास मेरा कितना सार्थक है यह विद्वान् ही समझ सकेंगे।

====

प्रथम - अध्याय

पृ०सं० 35-69

पंचतन्त्र का रचयिता एवं रचनाकाल

पंचतन्त्र का रचयिता एवम् रचनाकाल

पंचतन्त्र का रचयिता -

आचार्य विष्णु शर्मा संस्कृत के कथासाहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । विगत सैकड़ों वर्षों से अपने कथा साहित्य की उच्छल धारा में वे सहृदय सामाजिक को ही नहीं वरन् विश्व भर के मनीषियों, विचारकों तथा चिन्तकों को भी आकण्ठ अवगाहन कराते आयें हैं । वे "सकलशास्त्र पारंगत", "छात्र समुदाय में अध्यापन हेतु सुविख्यात" तथा "दृढ़प्रतिज्ञ" हैं । वस्तुतः सम्पूर्ण विश्व के कथासाहित्य में जो कुछ महनीय है और जो कुछ जीवन के परमलक्ष्य की प्राप्ति है, उसका प्रयत्नपूर्वक सजाया, संवारा, रूप विष्णु शर्मा का रचित काव्य पंचतन्त्र ही है ।

देश-विदेश के साहित्य महारथियों ने उन्हें विश्व कथासाहित्य की अप्रतिम प्रतिभाओं में परिगणित किया है । इनके द्वारा रचित पंचतन्त्र का न केवल यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ, बल्कि पाश्चात्य संसार भी इस भारतीय महती प्रतिभा के दर्शन कर विस्मित हो उठा ।

यह दुर्भाग्य का ही विषय है कि ऐसे महान् व्यक्ति के जीवन, जन्म-स्थान आदि के विषय में हमें आधिकारिक रूप में कुछ भी ज्ञात नहीं है । जो कुछ भी ज्ञात है, वह पंचतन्त्र में प्राप्त संकेत पर आधारित है । वस्तुतः भारतीय मनीषियों की परम्परा के अनुगामी होने के कारण अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के समान विष्णुशर्मा ने भी अपने जन्म, निवास और कार्यकाल आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया । इस का परिणाम यह हुआ कि इन्होंने संकुचित सीमाओं से ऊपर उठकर देशकालातीत अमर पद को प्राप्त किया है ।

अनेक पाश्चात्य विद्वान् मूलरूप से विष्णुशर्मा नाम पर भरोसा नहीं करते हैं । बेन्फे महोदय विष्णुशर्मा को विष्णुगुप्त नाम से जोड़ते हैं ।[1] (विष्णु - गुप्त

---

1. हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर बाई एम0 विण्टरनित्ज ; पृष्ठ - 345

चाणक्य का ही दूसरा नाम है। यही नहीं ए0 बी0 कीथ महोदय का मत है कि मूल रूप में दिये गये विष्णु शर्मा नाम पर भरोसा नही किया जा सकता है । साथ ही इसको बनावटी नाम समझकर बिल्कुल ही न मानना भी असम्भव है ।[1] भारतीय विद्वान् एस0 के0 डे महोदय ने उपर्युक्त दोनों पाश्चात्य विद्वानों के मतों को सबल प्रमाणों द्वारा अस्वीकार कर दिया है । उनके अनुसार "प्रत्यक्ष रूप से कौटिल्य के अर्थशास्त्र का प्रभाव पंचतन्त्र पर नही पड़ा है । अतः पंचतन्त्र के लेखक को विष्णु शर्मा (गुप्त) मानना उचित नहीं है ।" उपर्युक्त विवेचन के आधार पर विष्णु शर्मा को ही पंचतन्त्र का रचयिता स्वीकार किया जा सकता है जिसके अधोलिखित पुष्ट प्रमाण हैं -

1. पंचतन्त्र के कथामुखं की, ईशवन्दना के तृतीय श्लोक में विष्णु शर्मा ने स्वयम् पंचतन्त्र प्रणयन का उल्लेख किया है ।

   "सम्पूर्ण राजनीतिशास्त्रों के तत्वों का पर्यालोचन करके तथा विश्व में प्रचलित परम्पराओं एवं व्यवहारों का स्वयं अनुभव करने के पश्चात विष्णु शर्मा ने पाँच भागों में विभक्त इस पंचतन्त्र नाम के परम उपादेय राजनीतिशास्त्र का प्रणयन किया है ।[2]

2. राजा अमरशक्ति के दरबार में सुमति नामक सचिव द्वारा दिया गया विष्णु शर्मा का परिचय इस प्रकार है -

   "विष्णु शर्मा नामक विद्वान् आप की इस सभा में ही उपस्थित हैं, जो संपूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता और छात्र समुदाय में अध्यापन के लिये सुविख्यात है । इन राजकुमारों को उन्ही की देखरेख में देना चाहिये । मुझे यह विश्वास है कि वे इन राजकुमारों को अतिशीघ्र ही सुशिक्षित बना देंगे ।"[3]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए0 बी0 कीथ अनुवादक मंगलदेवशास्त्री : पृष्ठ-208
2. सकलार्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदम् ।
   तन्त्रैः पंचभिरेतच्चकार सुमनोहरं शा स्त्र म् ।।3।। कथामुखम् ।। पंचतन्त्रम्
3. तदत्रास्ति विष्णुशर्मा नाम ब्राह्मणः सकलशास्त्रपारंगमः, छात्र संसदि लब्धकीर्तिः । तस्मै समर्पयत्वेतान् । नूनं स एतान् द्राक् प्रबुद्धान् करिष्यति" । कथामुखम् ।।
   - पंचमन्त्रम्

3. सम्पूर्ण पंचतन्त्र में सर्वत्र विष्णुशर्मा का ही नाम आया है । विष्णुगुप्त अथवा कौटिल्य आदि का नहीं ।

4. पाश्चात्त्य विद्वान बेन्फे महोदय का विष्णु शर्मा नाम पर सन्देह भी निराधार प्रतीत होता है, क्योंकि आचार्य विष्णु शर्मा ने ग्रन्थ के कथामुखम् की ईशवन्दना में अन्य देवताओं की वन्दना के समय चाणक्य (कौटिल्य तथा विष्णुगुप्त का ही नाम है) को भी नमस्कार किया है ।

"मनु, बृहस्पति, शुक्र, व्यास पराशर, चाणक्य, विद्वर्ग तथा राजनीतिशास्त्र के प्रवर्त्तक अन्य जनों को मेरा प्रणाम है।"[1] कोई भी व्यक्ति स्वरचित ग्रन्थ की रचना के पूर्व अपने को ही नमस्कार नहीं करता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचतन्त्र के रचयिता विष्णुशर्मा ही थे, कोई अन्य नहीं ।

पंचतन्त्र का रचयिता, दक्षिण भारत के किसी सुसंस्कृत परिवार का ज्ञात होता है तथा इसका सम्बन्ध महिलारोप्य नामक नगर से अवश्य रहा होगा । इसकी सम्भावना इसलिये अधिक हो सकती है, क्योंकि महिलारोप्य नामक नगर के राजा अमरशक्ति के दरबार में ये विद्वानों की श्रेणी में अग्रगणी थे । पंचतन्त्र के विभिन्न स्थलों में भी महिलारोप्य नगर का वर्णन है । कथाओं के प्रारम्भ में जैसे किसी वन

---

1. मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय ससुताय ।
   चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्र कर्तृभ्य: ।: 2 :। कथामुखम् - पंचतन्त्रं

2. (अ) कथामुखमं अस्ति दक्षिणात्ये नगरे महिलारोप्यं नाम नगरम् ।
   (ब) प्रथम तन्त्र-प्रस्तावना कथा अस्ति दक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्य नाम नगरं ।
   (स) द्वितीय तन्त्रं - अस्ति दक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम् ।
   (द) द्वितीय तन्त्रं - कथा सं0 1, अस्ति दक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरं ।
   (य) तृतीय तन्त्रं - अस्ति दक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम् ।

में एक सिंह रहता था, इस प्रकार के स्थान वर्णन में बनों का, दक्षिण का, समुद्र का, एक स्थान पर पर्वत का वर्णन भी किया गया है ।[1] पाश्चात्य विद्वान् हर्टेल महोदय के अनुसार पंचतन्त्र कश्मीर में लिखा गया था, क्योंकि मूल पुस्तक में न तो व्याघ्र का और न ही हाथी का ही कोई स्थान है जब कि ऊँट ज्ञात है । हर्टेल महोदय के इस कथन से कीथ महोदय तनिक भी सहमत नहीं हैं । उनके अनुसार देर में रचे जाने के कारण भारत के अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र के लोगों के लिये ऊँट के बारे में जानना सब कुछ सम्भव सा हो सकता है । इस प्रकार कीथ महोदय इस ग्रन्थ के रचना स्थान के विषय में किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके । हर्टेल महोदय द्वारा इस ग्रंथ का रचना स्थान कश्मीर मान लेना सुसम्मत नहीं प्रतीत होता है । पंचतन्त्र में दक्षिण भारत से सम्बन्धित विभिन्न स्थल हैं । यह तो मानव की स्वाभाविक दुर्बलता ही है कि वह अपनी प्रिय वस्तु की ओर अनायास आकर्षित होता ही है । जैसे कि कालिदास ने मेघदूत में अनायास ही उज्जयिनी का वर्णन किया है । पंचतन्त्र के ही

---

1. ।अ। प्रथमतन्त्रं – कथा सं0 7 – अस्ति कस्मिंश्चिद्वनप्रदेशे नाना जलचरसनाथं महत्सरः ।

।आ। प्रथम तन्त्रं – कथा सं0 8 –कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंह प्रतिवसति स्मः ।

।इ। प्रथम तन्त्र – कथा सं0 12– कस्मिंश्चित्समुद्रतीरैक देशे टिट्टिभ दम्पती प्रतिवसतः स्मः ।

।ई। प्रथम तन्त्र – कथा सं0 17– अस्तिकस्मिंश्चित्पर्वतैकदेशे वानरयूथम् ।

।उ। द्वितीय तन्त्र – कथा सं0 3 – अस्ति कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे कश्चित्पुलिन्दः ।

।ऊ। तृतीय तन्त्र – कथा सं0 – 2 – कस्मिंश्चिद्वने चतुर्दन्तो नाम महागजो यूथाधिपः प्रतिवसिति स्म।

।ए। तृतीय तन्त्र – कथा सं0 – 13 – अस्तिकस्मिंश्चित्पर्वतैकदेशे महान वृक्षः ।

।ऐ। चतुर्थ तन्त्र – अस्ति कस्मिंश्चित्समुद्रोपकण्ठे महांजम्बूपादपः सदाफलः ।

।ओ। चतुर्थ तन्त्र – कथा सं0 – 2 कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे करालकेसरो नाम सिंह प्रति वसति स्म ।

।औ। चतुर्थ तन्त्र – कथा सं0 10 – आसीत्कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे महाचतुरोनाम श्रृंगालः ।

।अं। पंचतन्त्र – कथा सं0 12 – "दैव ।•कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे चण्डकर्मा नाम राक्षसः प्रतिवसति स्मः ।

वर्णन के आधार पर यह प्रतीत होता है कि विष्णु शर्मा का जन्म स्थान सम्भवत: दक्षिण भारत अथवा इसका निकटवर्ती कोई स्थान रहा होगा ।

इतना ही नही रचयिता के शैव होने के भी सबल प्रमाण हैं । कीथ महोदय के अनुसार विष्णु शर्मा के वैष्णव होने के समुचित साक्ष्य उपलब्ध नही हैं।वास्तव में यह कथन सत्य भी है । रचयिता तो शिव का विशिष्ट भक्त प्रतीत होता है। ग्रन्थ की रचना के प्रारम्भ में भी उन्होंने वन्दना करते समय भी शिवोपासना किया है । ग्रन्थ में अनेक स्थलों में शिव का वर्णन ही इस बात की ओर संकेत करता है कि रचयिता शिवभक्त था । ऐसा इसलिये भी हो सकता है, क्योंकि द्रविड़ संस्कृति के देवता होने के कारण दक्षिण भारत में आज भी शिवपूजन को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है । इसी कारण सम्भवत: रचयिता भी शैव मत का अनुयायी हो गया होगा । मित्रभेद नामक प्रथम तन्त्र में सञ्जीवक बैल का वर्णन पिंगलक से करते हुये दमनक ने कहा -

> "सहि भगवतो महेश्वरस्वय वाहनभूतों वृषभ:", इति । मया पृष्ट इदमूचे महेश्वरेण परितुष्टेन कालिन्दीपरिसरे शष्पाग्राणि भक्षयितं समादिष्ट: ।
> पंचतन्त्र प्रथम" [illegible] तंत्र:

रचयिता ने भगवान शिव का वर्णन कोई साधारण ढंग से नही किया है । वे अत्यन्त दयालु ही नही अपितु प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण वन भी क्रीड़ा हेतु प्रदान कर सकते हैं, एक अन्य स्थल पर -

> "किं बहुना, मम प्रदत्तं भगवता क्रीडार्थं वनमिदम्"।। पंचतंत्र प्रथम" [illegible] तन्त्र:

ग्रन्थकार शिव परिवार को ही सम्पूर्ण पृथ्वी का आदर्श तथा मूलस्वरूप स्वीकार करके अपनी सम्पूर्ण शिवभक्ति प्रकट करता है ।

मित्रभेद की ही "दूतीजम्बुकाषाढ़भूति-कथा में आषाढ़भूति नामक धूर्त भी देवशर्मा के समीप जाकर सर्वप्रथम शिव का ध्यान करके "ॐ नम: शिवाय" का उच्चा-

रण करता है तदन्तर देवशर्मा शिवमन्त्र की महत्ता बताते हुये कहता है कि -

"शूद्रो वा यदि वान्योऽपि चाण्डालोऽपि जटाधरः ।
दीक्षितः शिवमन्त्रेण सभस्मांगः शि वो भ वे त् ।। 1/178 ।।वहीं।

षडक्षरेण मन्त्रेण पुष्पमेकमपि स्वचम् ।
लिंगस्य मूर्ध्नि यो दद्यान्न स भूयो भिजायते ।। 1/179 ।। वही ।

और भी- अत्तुं वांछति शाभवो गणपतेराखु क्षुधतिः फणी,
तं च क्रौंचरिपोः शिखी गिरिसुतासिंहोऽपि नागाशनम्
इत्थं यत्र परिग्रहस्य घटना शम्भोरपि स्याद्गृहे,
तत्रान्यस्य कथं,न, भाविजगतो यस्मात्स्वरूपं हि तत् ।। 1/170-वही।

विद्वता एवं पाण्डित्य :-

पंचतन्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विष्णु शर्मा वेद, उपनिषद, स्मृति दर्शन, गीता, रामायण, ज्योतिष, व्याकरण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, राजनीतिशास्त्र, कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, काव्य-शास्त्र एवं छन्द शास्त्र के निष्णात विद्वान् थे ।इतना ही नहीं अपितु वे ललित कलाओं के भी मर्मज्ञ थे । उन्होंने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों से विभिन्न कथायें एवं उनके उपदेशक तत्वों का भी समायोजन अपने इस ग्रन्थ में किया, जो कथायें उनको नीरस अथवा घिसी पिटी मालूम पड़ी, उनको नया रूप दे दिया, किसी में नायक अथवा नायिका के रूप में आये हुए मानव अथवा मानवेतर प्राणियों के नाम इत्यादि परिवर्तित कर दिये । यह सम्भवतः उन्होंने नवीनता एवं रोचकता लाने की दृष्टि से किया होगा ।

विष्णुशर्मा ने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विधि के द्वारा उन तीनों कोमलमति, अविनीत, एवं अशिक्षित राजपुत्रों को शिक्षा प्रदान की । व्याकरण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा कामशास्त्र जैसे दुरूह विषयों की शिक्षा देने का लघु एवं सरलतम उपाय

उन्होंने अपनाया । विष्णु शर्मा ने इसका पूर्ण ध्यान रखा कि उनके शिष्यों की विषय में रोचकता निरन्तर बनी रहे । इस कारण उन्होंने इस ग्रन्थ में राजा, स्त्री ब्राह्मण, पशु-पक्षी, साधु-महात्मा, नौकर, पेड़-पौधे, पर्वत, वन आदि सभी को अपनी कथा में अत्यन्त सजीव ढंग से प्रस्तुत किया । जिससे विषय मनोरंजक भी हो गया । यूँ तो पूरा ग्रन्थ ही मनोवैज्ञानिकता एवं स्वाभाविकता लिये हुये है, किन्तु इस पर आश्रित नीति के कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैं -

> "उपायों द्वारा वशीभूत सर्पों, व्याघ्रों, गजों तथा सिंहों को देखकर यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है कि उत्साही, अध्यवसायी तथा बुद्धिमान् व्यक्तियों के लिये राजा को वशीभूत करना कोई कठिन कार्य नही होता" [1]

> "कथित अर्थ को तो पशु भी समझ लेते हैं । क्योंकि इंगितों द्वारा प्रेरित घोड़े और हाथी सवार को लेकर चलते हैं । किन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति अकथित अर्थ को भी समझ जाता है । वस्तुतः दूसरे के अन्तःस्थ भावों को उसकी आंगिक चेष्टाओं के द्वारा जान लेना ही बुद्धि का कार्य होता है ।"[2]

और भी-"मनुष्य के आकार-प्रकार, इंगित गति, चेष्टा, वचन, नेत्र एवं मुखगत विकारों के द्वारा उसके अन्तःस्थ भावों का पता लग ही जाता है।"[3]

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य श्लोक[4] तथा कथायें भी हैं, जिनमें मनुष्य के स्वभाव की अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से चर्चा की गई है ।

---

1. सर्पान्व्याघ्रान्गजान्सिंहान् दृष्ट्वोपायैर्वशीकृतान् ।
   राजेति कियती मात्रा धीमतामप्रमादिनाम् ।। 41 ।। मित्रभेदः ।
2. उदीरितोऽर्थः पशुनाऽपि गृह्यते, हयाश्च नागाश्च वहन्ति चोदिताः ।
   अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः, परेंगितज्ञानफला हि बुद्धयः ।। 44 ।। वही ।
3. आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च ।
   नेत्र वक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ।। 45 ।। वही ।
4. पंचतन्त्र-मित्रभेद - 1/36, 1/70, 1/144, 1/145, 1/279, 1/280, 1/136 व 1/142

संगीत शास्त्र का ज्ञान देने का रचयिता का अत्यन्त मनोहारी तरीका था, जिसके द्वारा यह भी स्पष्ट हो गया कि उन्हें संगीत का भी समुचित ज्ञान था। पंचतन्त्र की रासभश्रृंगाल कथा में उन्होंने संगीत के समस्त भेदों का उल्लेख किया है। उद्धत नामक रासभ जो धोबी के घर दिन भर वस्त्रों का गट्ठर ढोने के बाद रात्रि में मनमाने ढंग से इतस्ततः विचरण किया करता था और प्रातःकाल ही वह अपने निवास पर लौट आता था। किसी दिन खेतों में घूमते हुये उसकी एक श्रृंगालसे मित्रता हो गई। स्थूलकाय होने के कारण वह रासभ खेतों के घेरे के तोड़कर अपने मित्र के साथ खूब ककड़ी खाया करता था और प्रातःकाल दोनों अपने अपने निवास को लौट जाते थे। एक दिन उस प्रमत्त रासभ ने उस खेत में स्वयं श्रृंगाल से गाना गाने की इच्छा व्यक्त की। श्रृंगाल के मना करने पर भी वह रासभ अपने दुराग्रह पर दृढ़ था और उसने श्रृंगाल को संगीत के भेद इस प्रकार बताये –

"स्वरोंके सात भेद होते हैं। स्वरों के तीन समूह होते हैं, जिनको ग्राम कहा गया है। संगीत में इक्कीस मूर्च्छनायें होती हैं। उन्चास ताल होते हैं। स्वरों की सात मात्रायें होती हैं और तीन लय होते हैं।

स्वरों के तीन उद्गम स्थान होते हैं। यतिके भी तीन भेद कहे गये हैं। आस्य आरम्भ छः प्रकार के होते हैं। रसों की संख्या नौ होती है। रागों के छत्तीस भेद बताये गये हैं और भावों के चालीस भेद बताये गये हैं। पंचमवेद-स्वरूप तथा श्रवणसुखद संगीत शास्त्र के इन एक सौ पचासी भेदों को संगीत के प्रवर्त्तक भरत मुनि ने स्वयं कहा है।"[1]

---

1. सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशति।
   तानास्त्वेकोनपंचाशत्तिस्त्रो मात्रा लयास्त्रयः ।। 51 ।।
   स्थानत्रयं यतीनां च षडास्यानि रसा नव।
   रागाः षटत्रिंशतिर्भावाश्चत्वारिंशत्ततः स्मृताः ।। 52 ।।
   पंचाशीत्यधिकं ह्येतद्गीतागानां शतं स्मृतम्।
   स्वयमेव पुरा प्रोक्तं भरतेन श्रुतेः परम् ।। 53 ।।

– अपरीक्षितकारक पंचतन्त्रम्।

रासभ द्वारा बताये गये उपर्युक्त संगीत के भेदों को सुनकर श्रृंगाल घेरे के बाहर बैठ गया । रासभ ने ज्योंही जोर से रेंकना प्रारम्भ किया, क्षेत्रपाल ने आ कर उस रासभ को बुरी तरह पीट डाला ।[1] इस कथा के द्वारा विष्णु शर्मा ने संगीत की शिक्षा प्रदान की । इससे यह भी पता चलता है कि उन्हें संगीत का अच्छा ज्ञान था । विष्णु शर्मा ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों का अनुकरण नितान्त नूतन ढंग से किया । अपने इस ग्रन्थ में प्राचीन ग्रन्थों की कथाओं का भी वर्णन करने के कारण इनको उत्कृष्ट रचयिता की कोटि से हटाया नही जा सकता है । ग्रन्थ की उत्तमता की परीक्षा करते समय उसके अन्तिम लक्ष्य को ध्यान में रखना चाहिये ।

विष्णु शर्मा ने कथाओं अथवा उपदेशों के लक्ष्य को वस्तुतः ग्रहण किया तथा उसकी अभिव्यक्ति अपने इस ग्रन्थ में सुन्दरता के साथ की है । इसी लिये हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रचयिता की यह कृति नितान्त अभिनव तथा उच्च कोटि की है । अनेक स्थल इसमें ऐसे भी हैं, जिसमें दो भिन्न ग्रन्थों के समान पद, समान वाक्य, समान अर्थ, समान शैली तथा समान उपदेश प्राप्त होते हैं । यहाँ यह सम्भव है कि एक ही लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विभिन्न रचयिताओं में एक ही प्रकार के भाव स्फुरित हुये हों, आवश्यक नही है कि अनुकरण किया ही गया हो। लोकश्रुति भी है कि महापुरूषों के विचार प्रायः समान ही होते हैं ।[2]

पंचतन्त्र में विष्णु शर्मा ने मुख्य पाँच कथायें दी हैं । प्रत्येक कथा में अनेक उपकथायें हैं । प्रत्येक तन्त्र विभिन्न प्रकार की नीतिशिक्षाओं से भरे पड़े हैं । रचयिता ने मित्रभेद में बाइस उपकथायें, इन उपकथाओं में चार सौ इकसठ श्लोक, दूसरे तन्त्र मित्र सम्प्राप्ति में छः उपकथायें और एक सौ निन्यानबे श्लोक, तृतीय तन्त्र काकोलूकीयम् में 16 उपकथायें दो सौ पचपन श्लोक, चतुर्थ तन्त्र लब्धप्रणाश में ग्यारह उपकथायें तथा अस्सी श्लोक, तथा पंचम तन्त्र अपरीक्षित कारक में चौदह उपकथायें तथा अठ्ठानबे श्लोकों की रचना की है । इस प्रकार सम्पूर्ण पंचतन्त्र में कुल पछत्तर

---

1. अपरीक्षित कारकं - पंचतन्त्रं - श्लोक 51-53
2. सवादास्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधसाम् - काव्यमीमांसा से उद्धृत ।

कथायें हैं, जिनमें छः मुख्य कथायें हैं । ग्यारह सौ तीन श्लोक हैं, जिनमें से दस कथा-मुख में है । इनसे ही उन बालकों को शिक्षित किया ।

किसी घटना विशेष की कल्पना कर उसका सजीव वर्णन करने में ग्रन्थप्रणेता की सूक्ष्म दृष्टि की झलक मिल जाती है । भद्राकृति वाले उलूकराज को देखकर समस्त पक्षियों द्वारा एक स्वर से उलूकराज को ही राजा बनाने का प्रस्ताव रखा गया । उस उलूकराज के राज्याभिषेक की तैयारी का वर्णन वक्ष्यमाण है ।

"विविध तीर्थों का जल एकत्र किया गया । 108 औषधियों का मूल जुटाया गया । सिंहासन को उचित स्थान पर रख दिया गया । सातों द्वीपों और सम्पूर्ण पर्वतों से चित्रित विचित्र चौक बना कर पृथ्वी का एक अत्यन्त मनोहर चित्र बना दिया गया । व्याघ्र चर्म बिछा दिया गया । स्वर्ण-कलशों को जल से भर दिया गया । दीपमालायें जला दी गईं । चारो ओर सुन्दर बाजे बजने लगे । माँगलिक सामग्रियों को एकत्र कर यथास्थान रख दिया गया । बन्दीगण ने स्तुतिपाठ, वैदिकों ने समवेत स्वरों से वेद पाठ करना आरम्भ कर दिया । युवतियों ने मंगलगान आरम्भ कर दिया । राज-महिषी के स्थान पर कृकालिका को लाकर बैठा दिया गया"।[1] रचयिता ने अपनी सहृदयता तथा वर्णन-कौशल के द्वारा अपनी सूक्ष्मदर्शिता के आधार पर कल्पना का ऐसा जामा पहनाया है कि श्रोता के मानस-नेत्रों के सम्मुख उस समय का अत्यन्त आकर्षक चित्र उपस्थित हो जाता है । विष्णु शर्मा अत्यन्त सरस हृदय के प्रतीत होते हैं । पंचतन्त्र में जिन कथाओं का वर्णन उन्होंने किया हैं, उनमें उनकीवृत्ति रमी हुई लगती है । उनकी बहुज्ञता प्रबल थी ।

---

1. अथ साधिते विविधतीर्थोदके, प्रगुणीकृतेऽष्टोत्तरशतमूलिका संघाते, प्रदत्ते सिंहासने, वर्तिते सप्तद्वीपसमुद्रभूधर विचित्रे धरित्रीमण्डले, प्रसारिते, व्याघ्र चर्मणि, आपूरितेषु हेम कुम्भेषु, दीपेषु, वाद्येषु च संजीकृतेषु, मांगल्यवस्तुषु, गीतपरे युवतीजने, आनीतायामग्रमहिष्यां कृकालिकायाम् उलूकोऽभिषेकार्थं.................। काकोलूकवैरकथा - काकोलूकीयम्।पंचतंत्रम्।

वे निश्चय ही महान शिक्षाशास्त्री रहे होंगे । कोमलमति राजकुमारों को शिक्षित करने का उन्होंने एक सरलतम उपाय खोज लिया था । ऐसा उल्लेख कहीं पर भी प्राप्त नहीं होता है कि विष्णु शर्मा अपने लक्ष्य में किंचितमात्र भी असफल रहे हों, बल्कि पंचतन्त्र की सर्वातिशायिनी लोकप्रियता ही रचयिता की महती सफलता का स्वयमेव उद्घोष करती है, जैसा कि इसके कथामुखम् से भी स्पष्ट है -

"विष्णु शर्मा ने उन राजकुमारों को सुबुद्ध बनाने के लिये मित्रभेद, मित्रसंप्राप्ति, काकोलूकीयम्, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षित कारक नामक नीतिशास्त्र के पाँच प्रकरणों को बना कर उन्हें पढ़ाया और वे राजकुमार प्रकरणों को पढ़कर छः मास के भीतर अप्रतिम विद्वान् हो गये । तभी से यह पंचतन्त्र नाम का नीतिशास्त्र बालकों को सुबुद्ध एवं व्यवहारपटु बनाने के लिये इस संसार में चल पड़ा और शनैः शनैः इसकी पर्याप्त ख्याति हो चली ।[1]

रचयिता को सफल शिक्षाशास्त्री ही नहीं वरन् एक नवीन शिक्षा पद्धति का जनक भी कहा जा सकता है । यद्यपि कथाओं के माध्यम से उपदेश देने की पद्धति चिर प्राचीन रही है तथापि सम्पूर्ण ग्रन्थ को उपदेशात्मक कथासंग्रह के रूप में प्रस्तुत करने का यह सम्भवतः प्रथम एवं श्रेष्ठ प्रयास था ।

आधुनिक शिक्षाशास्त्री आज मनोरंजनात्मक ढंग से बालकों को शिक्षा प्रदान करने के जो अनेक साधनों का आविष्कार करते हैं, उसका सूत्रपात तो इस आचार्य द्वारा भारतवर्ष में सुदूर अतीत में ही हो चुका था । एक रोचक ढंग से विषय को पढ़ाना ही नही अपितु उसमें विद्यार्थी की रुचि को उत्पन्न करना तथा रटने रटाने की शैली द्वारा गहन विषयों के तरीके को त्याग कर मनोरंजनात्मक ढंग से समस्त

---

1. विष्णु शर्माऽपि तानादाय तदर्थं मित्रभेद-मित्रप्राप्ति - काकोलूकीय - लब्धप्रणाशापरीक्षितकारकाणि चेति पंचतन्त्राणि रचयित्वा पाठितास्ते राजपुत्राः । तेऽपि तान्यधीत्य मासषट्केन यथोक्ताः संवृत्ताः । ततः प्रभृत्येतत्पंचतन्त्रकं नाम नीतिशास्त्रं बालावबोधनार्थं भूतले प्रवृत्तम् ।। कथामुखं-पंचतंत्र।

विषयों की शिक्षा देना कुछ कम महत्त्वपूर्ण कार्य नही था । वर्तमान शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रदान कीजाने वाली "उदार शिक्षा" [लिबरल एजूकेशन] का मूर्त रूप पंचतन्त्र की जन्तुकथाओं में दृष्टिगोचर होता है ।

व्यक्तित्व :-

पंचतन्त्र का भली भाँति अवलोकन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि विष्णु शर्मा महान शिक्षाशास्त्री होने पर भी एक निर्लोभ व्यक्ति थे । राजा अमर शक्ति ने प्रारम्भ में ही तीनों पुत्रों को शिक्षित करने के बदलेमें विष्णुशर्मा को एक सौ ग्रामों का अधिकार प्रदान करने के लिये कहा था ।[1] किन्तु राजा नेअपने पुत्रों को शिक्षित करने हेतु जिन महान् आचार्य को नियुक्त किया था, उन्होंने तो उसी समय स्पष्ट कह दिया कि -

"देव ! मेरे यथार्थ कथन पर आप ध्यान दें । एक सौ ग्रामों का आधिपत्य प्राप्त करने पर भी मैं विद्या का विक्रय नही करूँगा ।"[2]

वास्तव में सौ ग्रामों के अधिकार के बदले विद्या विक्रय न करने की बात तो विष्णु शर्मा जैसा महान् आचार्य ही कर सकता था । उनको तो अस्सी वर्ष की अवस्था हो जाने पर बिना किसी लोभ के विद्या से मात्र मनोरंजन ही करना था ।[3] इसी लिये तो उन्होंने विद्या ग्रहण कराने के लिये एक नवीन शिक्षा पद्धति की योजना बनाई और एक अनोखा दृढ़ विश्वास लेकर अपना कार्यारम्भ किया था कि

---

1. भो भगवन् ! मदनुग्रहार्थमेतानर्थशास्त्रं प्रति द्राग्यथा नन्यसदृशान्विदधासि तथा कुरु, तदा हं त्वां शासनशतेन योजयिष्यामि । कथामुखम् - पंचतन्त्रम् ।
2. देव ! श्रूयतां मे तथ्य वचनं, नाहं विद्याविक्रयं शासनशतेनाऽपि करोमि ।। तही ।।
3. नाहमर्थलिप्सुर्ब्रवीमि । ममाशीतिवर्षस्य व्यावृत्तसर्वेन्द्रियार्थस्य न किंचिदर्थेन प्रयोजनम् । किन्तु त्वत्प्रार्थना सिद्ध्यर्थं सरस्वती विनोदनं करिष्यामि ।
   । कथा मुखम् - पंचतन्त्रम् ।

मात्र छः मास में ही वे उन बालकों को नीतिनिपुण, सुबुद्ध एवं व्यवहारपटु बना देंगे। वे तो गुरु थे, उनका तो कार्य ही था, कि वे अपने शिष्यों के भीतर जागृति उत्पन्न कर दें। अतः उन्होंने वैसा ही किया। विभिन्न ग्रन्थों का आशय लेकर उन्होंने उपदेश देना प्रारम्भ किया। निश्चय ही उन बालकों में उन ग्रन्थों को पढ़ने की तथा उनके विषय में पूरी जानकारी की जिज्ञासा हुई होगी।

लेखक की विनोदप्रियता की झलक भी ग्रन्थ में यत्र-तत्र दिखा जाती है। प्रथमतन्त्र की कीलोत्पाटि वानर कथा इसका अच्छा उदाहरण है[1]-

किसी बनिये ने नगर के समीप के एक वन में देवमन्दिर बनवाना प्रारंभ किया उसमें कार्य करने वाले श्रमिक और कारीगर दोपहर के समय भोजन करने के लिये नगर के समीप चले जाया करते थे। एक दिन अकस्मात् वानरों का एक झुण्ड इधर उधर से घूमता हुआ उस वन में आ पहुँचा। उन शिल्पियों में से किसी एक ने आधे चीरे हुये अर्जुनवृक्ष के एक खम्भे के बीचो बीच खैर का एक खूँटा गाड़ कर छोड़ दिया था। वानरों ने वहाँ पहुँच कर वृक्षों, मकानों, लकड़ियों एवं खम्भों आदि पर स्वच्छन्द खेलना प्रारम्भ कर दिया। उन वानरों में से कोई एक मृत्यु के सन्निकट आ जाने से उस आधे चीरे हुये खम्भे पर बैठकर अपने दोनों हाथों से उसमें गड़े खूँटे को उखाड़ने लगा। उस खूँटे को पकड़ कर हिलाने के कारण उसके निकल जाने से खम्भे के मध्य में लटका हुआ उसका अंडकोष दब गया।

---

1. कस्मिंश्चिन्नगराभ्याशे केनापि वणिक्पुत्रेण तरुषण्डमध्ये देवतायतनं कर्तुमारब्धम्। तत्र च ये कर्मकराः स्थपत्यादयस्ते मध्याह्नवेलायामाहारार्थं नगरमध्ये गच्छन्ति। अथ कदाचिदानुषङ्गिकं वानरयूथमितश्चेतश्च परिभ्रमदागतम्। तत्रैकस्य कस्यचिच्छिल्पिनो-ऽर्धस्फाटितोऽर्जुनवृक्षदारुमयः स्तम्भः खादिरकीलकेन मध्यनिहितेन तिष्ठति। एतस्मिन्नन्तरे ते वानरास्तरुशिखरप्रासादशृंगदारुपर्यन्तेषु यथेच्छया क्रीडितुमारब्धाः। एकश्चैतेषां प्रत्यासन्न मृत्युश्चापल्यात्तस्मिन्नर्धस्फोटितस्तम्भे उपविश्य पाणिभ्यां कीलकं संगृह्य यावदुत्पाटयितुमारेभे, तावत्तस्य स्तम्भमध्यगतवृषणस्य स्वस्थानाच्चलित कीलकेन यद्वृत्तं तत्प्रागेव निवेदितम्।

— पंचतन्त्रम् — 1/1

विष्णुशर्मा एक क्रान्तिकारी व्यक्ति थे । राजा के आश्रित होने पर भी राजाओं के अनेक दोषों का उद्घाटन करने में वे तनिक भी नहीं हिचकिचाये । प्राचीन काल में सूत परम्परा थी जिसे कथा साहित्य का बीज माना गया । प्रत्यक्ष रूप से राजा की निन्दा करने का प्रश्न ही नहीं उठता था । कथा के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूपेण सूत्र लोग राजा के दोषों को बना देतेथे । अपने ग्रन्थ में एक स्थान पर उन्होंने राजा के स्वभाव का वर्णन किया है -

"विषधरों से युक्त, विषम, पाषाणनिर्मित तथा सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं से अवकीर्ण होने के कारण जैसे पर्वत दुरारोह होते हैं, उसी प्रकार शठ व्यक्तियों से युक्त, कूटभाषी, कठोर तथा दुष्ट जनों से अवकीर्ण होने के कारण राजा भी अत्यन्त कष्टाराध्य होते हैं ।"[1]

"राजा का स्वभाव ठीक सर्प जैसा ही होता है , जैसे सर्प कंचुकाविष्ट, कुटिल चालवाले, क्रूर कार्यकर्त्ता, दुष्ट तथा केवल मन्त्रसाध्य होतेहैं, उसी प्रकार राजा भी भोग विलास में लिप्त, कवचधारी, कुटिल तथा क्रूरचेष्टा वाले होते हैं । केवल अनुनय और मन्त्रणा आदि से ही प्रसन्नरहते हैं ।"[2]

"सर्पों के समान ही राजा भी द्विजिह्व क्रूर कार्य विधायक, अनिष्टकारक, परछिद्रान्वेषी तथा दूरदर्शी होते हैं ।"[3] "अग्नि में जलकर भस्म होने वाले पतंग की तरह राजा का थोड़ा भी अपकार करने वाला व्यक्ति उसकी क्रोधाग्नि में जलकर भस्म

---

1. दुराराध्या हि राजानः पर्वता इव सर्वदा ।
   व्यालाकीर्णाः सुविषमाः कठिनाः दुष्टसेविताः ।। 1/68 ।। पंचतन्त्र ।।
2. भोगिनः कंचुकाविष्टाः कुटिलाः क्रूरचेष्टिताः ।
   सुदुष्टा मन्त्रसाध्याश्च राजानः पन्नगा इव ।। 1/69 ।। पंचतन्त्र ।।
3. द्विजिह्वाः क्रूरकर्माणो निपटाश्छिन्द्रानुसारिणः ।
   दूरतो अपि हि पश्यन्ति राजानो, भुजगा इव ।। 1/70 ।। पंचतन्त्र ।।

भस्म हो जाता है ।"[1] "ब्रह्मतेज की तरह सर्ववन्द्य एवं दुष्प्राप्य राजाओं का पद भी अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होता है । यदि उसमें थोड़ी भी गड़बड़ पड़ी तो वह दूषित हो जाता है । थोड़े से अपमान से ही कुपित होने वाले ब्रह्म तेज के समान राजा भी अत्यल्प अपमान से क्रुद्ध हो जाता है ।"[2]

विष्णुशर्मा ने राजा-मन्त्री इत्यादि को साधु-असाधु कुछ भी कह देने में कोई कमी नही रखी । रचयिता ने स्त्रियों के स्वभाव तथा उनका चरित्र वर्णन करते हुये अनेक स्थलों पर उन्हें चरित्र कीदृष्टि से गिरा हुआ, व्यभिचारिणी, आदि भी कहा है । इतना ही नही अपितु चौर्य रति लालची एवं झूठ, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता एवं निर्दयता ही उनका स्वाभाविक दोष बतलाया है ।

"स्त्रियों का यह स्वभाव ही होता है कि वे किसीएक व्यक्ति के साथ बातचीत करतीहैं तो दूसरे व्यक्ति को हावभाव एवं कटाक्ष आदि से देखती रहीती हैं । और किसी तीसरे व्यक्ति को हृदय में स्मरण करती रहती हैं । स्त्रियों के लिये कौन प्रिय होता है ।"[3]

"स्मित-हास के कारण पाटलवर्ण की आभा से युक्त अधरों वाली स्त्रियाँ एक ओर किसी व्यक्ति से विविध प्रकार की बाते करती हैं तो दूसरी ओर खिली हुई कुमुदिनी के समान विकसित एवं उल्लसित नेत्रों से किसी अन्य पुरूष को देखतीरहती हैं, और साथ ही मन में किसी प्रख्यात, यश एवं रूप से युक्त तृतीय व्यक्ति का ध्यान भी करती रहती हैं । वास्तविक रूप से सच्चे अर्थ में इन वामलोचनाओं का किससे प्रेम

---

1. स्वल्पमप्यपकुर्वन्ति येऽभीष्टा हि महीपतेः ।
   ते वह्नाविव दह्यन्ते पतंगाः पापचेतसः ।। 1/71 ।। पंचतन्त्र ।।
2. दुरारोहं पदं राज्ञां सर्वलोकनमस्कृतम् ।
   स्वल्पेनाप्यपकारेण ब्राह्मण्यमिव दुष्यन्ति ।। 1/72 ।। पंचतन्त्र ।।
3. जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
   हृद्गतं चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ।। 1/146 ।। वही ।।

होता है ? अर्थात् वास्तविक रूप से स्त्रियाँ किस पुरूष के प्रति अपने मन में अनुराग रखती हैं, यह जानना बहुत कठिन होता है ।[1]

अग्नि इन्धन से, समुद्र नदियों से. और काल प्राणियों से जैसे कभी तृप्त नही होता है, उसी प्रकार स्त्री कभी पुरूषों से तृप्त नही होती हैं ।[2]

हे नारद ! या तो एकान्त स्थान नही मिलता, या उचित अवसर नहीं मिल पाता, अथवा कोई अनुरागी और कामुक व्यक्ति नही मिलता - तभी तक स्त्रियों का सतीत्व-भाव सुरक्षित रहता है ।[3]

जो व्यक्ति अपनी अज्ञानता के कारण यह समझता है कि - - "यह कामिनी मुझसे प्रेम करती है, वह पालतू पक्षी (तोता या मैना) की तरह उसके वशीभूत हो जाता है । जैसे चारे का लोभ देकर पक्षियों को पिंजरे में डाल दिया जाता है, उसी प्रकार स्त्रियों के असत्य प्रेम के लोभ में पड़कर वह पुरूष भी उनका दास बन जाता है ।[4]

"जो व्यक्ति स्त्रियों के छोटे तथा बड़े कार्यों को करता है और उनके आदेश का पालन करता है, वह अपने कृत्यों के कारण विश्व में लघुता को प्राप्त

---

1. एकेन स्मितपाटलाधररूचों जल्पन्त्यनल्पाक्षरं,
   वीक्षन्ते न्यमितः स्फुटत्कुमुदिनीफल्लोल्लसल्लोचना ।
   दूरोदारचरित्र चित्रविभवं ध्यायन्ति चान्यं धिया,
   केनेत्थं परमार्थतोऽर्थवदिव प्रेमास्ति वामभ्रुवाम् ।। 1/147 ।।
2. नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
   नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ।। 1/148 ।।
3. रहो नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
   तेन नारद ! नारीणां सतीत्वमुपजायते ।। 1/149 ।।
4. यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मम कामिनी ।
   स तस्या वशगो नित्यं भवेत्क्रीडाशकुन्तवत् ।। 1/150 ।।

हो जाता है । स्त्रियों के आज्ञाकारी व्यक्ति प्रायः उपहास के पात्र समझे जाते हैं । समाज में लोग उसे नीच समझते हैं ।[1]

"जो पुरूष स्त्रियों के पीछे घूमा करता है और उनकी आज्ञाकारिता के लिये उनसे निकट का सम्बन्ध रखता है, अथवा उनकी थोड़ी भी सेवा आदि करता है, स्त्रियाँ उसी को मानती व चाहतीहैं ।[2]

"स्त्रियाँ स्वभाव से ही अमर्यादित होती हैं । वे मर्यादा की सीमा में तभी तक आबद्ध रहती हैं, जब तक किउनको कोई कामी पुरूष नही मिलता है, अथवा कुल तथा गोत्र के व्यक्तियों का भय बना रहता है ।"[3]

स्त्रियों के लिये कोई भी पुरूष या स्थान अगम्य नही होता है । उनकी अवस्था से कोई भी विशेष प्रयोजन नही होता है । कुरूप या रूपवान भी वे नहीं देखती हैं । केवल पुरूष समझ कर उसका उपभोग करती हैं ।[4]

उपर्युक्त के अतिरिक्त कतिपयऐसे भी स्थल हैं, जहाँ पर रचयिता ने स्त्रियों के प्रति विशेष सम्मान प्रकट किया है ।

"स्त्रियाँ पहले सोम गन्धर्व तथा अग्नि नाम वाले देवताओं से पहले भोगी जाती हैं । बाद में उन्हें मनुष्य भोगते हैं । इस कारण उनमें कोई दोष नही हैं ।"[5]

और भी, "चन्द्रमा ने उनको पवित्रता, गंधर्वों ने उनको शिक्षित वाणी, और अग्नि ने सर्वांग पवित्रता दी है, अतः स्त्रियाँ सदैव पापरहित होती हैं ।"[6]

---

1. तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि ।
   करोति, यो कृतैर्लोके लघुत्वं याति सर्वतः ।। 1/151 ।।
2. स्त्रियं च यः प्रार्थयते सन्निकर्षं च गच्छति ।
   ईषच्च कुरूते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः ।। 1/152 ।।
3. अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्परिजनस्य च ।
   मर्यादायाम मर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति सर्वदा ।। 1/153 ।।
4. नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां च वयसि स्थितिः ।
   विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुंजते ।। 1/154 ।।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों के स्वभाव के विषय में विभिन्न बातें बताने का लेखक का अभिप्राय मात्र इतना ही था कि शिक्षा राजपुत्रों को दी जा रही थी और राजा बनने पर विभिन्न प्रकार की स्त्रियाँ, जैसे वेश्या, दासी, गुप्तचरीआदि राजा के आसपास रहती हैं, अतः यह आवश्यक है कि राजा इन सभी के स्वभाव से सुपरिचित रहे । लेखक का यह अभिप्राय कदापि नहीं होगा कि स्त्रियों को समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाये । रचयिता ने तो गृहस्थ एवं कुलीन स्त्रियों की सदैव प्रशंसा की है ।

विष्णुशर्मा का अपनी अपूर्व वर्णन कला के कारण तो गुरुत्व है ही, शैली क्रम से भी वे कथा साहित्य-मार्ग के सम्प्रिय प्रदर्शक माने गये हैं । उन्हें प्रतिपाद्य विषय का जितना ध्यान था, उतना ही वर्णन शैली का भी । अतः उनकी रचना का आदर कथा-साहित्य में सर्वोपरि है । कलापक्ष पर उतना अधिक आग्रह नहीं है । फिर भी उनकी रचना में अत्यधिक स्वाभाविकता एवं अद्भुत सुषमा है । यह रचना उच्च कोटि की होने के कारण सम्पूर्ण विश्व में सराहनीय है । इसके द्वारा ज्ञान-प्रसार तथा बौद्धिक क्रियाओं का विस्तार हुआ । कुछ वस्तुओं का वर्णन तो पूर्वगामी अनेक कवियों द्वारा किया गया है । कुछ वर्णन तो पूर्व की भाँति अनुकरण हैं । किन्तु कथायें ऐसी हैं जो पूर्व कथा में उपदिष्ट शिक्षा को अन्यथा रूप में वर्णन करती हैं ।

रचयिता पुरुषार्थ के महत्त्व को भली भाँति जानते थे । तीनों ही राजपुत्र थे । परिश्रम उनके जीवन का प्रमुख अंग था । पुरुषार्थ का महत्त्व बताते हुये रचयिता कहते हैं कि -

"दैव के विपरीत होने पर भी अपने दोष नष्ट करने के लिये तथा चित्त को साहस बधाने के लिये बुद्धिमान को काम करना चाहिये ।[1]

---

1. पराङ्‌मुखेऽपि दैवेऽत्र कृत्यं कार्यं विपश्चिता ।
आत्मदोष विनाशाय स्वचित्तास्तम्भनाय च ।। पंचतन्त्र - 1/391 ।।

उद्योगी पुरुष को सदा लक्ष्मी मिलती रहती है । प्रारब्ध देता है, यह कायर कहते हैं । दैव को त्याग कर अपनी शक्ति पर पुरुषार्थ करने पर भी यदि सिद्धि न प्राप्त हो तो करने में कोई दोष है ।[1]

विष्णु शर्मा की भाषा स्पष्ट एवं सुन्दर है । कई स्थानों पर पद्यों में जटिल छन्द, अलंकारादि तथा परिष्कृत शैली के चिन्ह हैं । लेकिन पद्य सरल तथा प्रचलित शैली एवं लम्बे समास से युक्त हैं । रचयिता निश्चित रूप से सुरुचिपूर्ण था । ग्रन्थ में भूतकाल का प्रकाशन या तो "क्त" अथवा "क्तवतु" प्रत्ययान्त शब्दों से या "स्म" के साथ प्रयुक्त "लट्" लकार के रूपों में प्रयुक्त है । भाववाच्य अथवा कर्मवाच्य का प्रयोग अधिक होने के कारण तिङ्न्त क्रियाओं के स्थान में कृदन्त क्रिया-रूपों का प्रयोग है । रचयिता की त्वा-प्रत्ययान्त तथा अम्-प्रत्ययान्त शब्दों एवं विशेषणवाची कालबोधक कृदन्तों के प्रति विशेष रूचि प्रतीत होती है । तथापि समस्त कथायें मनोरंजक एवं भली प्रकार से कही गई हैं ।

संसार मेंजो चतुराई प्रचलित थी, उसकेअनुसार ही उन्होंने शिक्षा प्रदान की । राजप्रिय सेवक के लक्षण भी उन्होंने भली भाँति स्पष्ट कर दिया है । इसमें कहीं कहीं चाटुकारिता की झलक मिल जातीहै ।

"कृत्य -अकृत्य को जानने वाला जो सेवक पुकारने पर "जी" ऐसा कहता है तथा बिना विचारे आज्ञा का सम्पादन करता है, वही राजाओं का प्रिय होता है ।"[2]

---

1. उद्योगिनं पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मी -
   दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति ।
   दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
   यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ।। 1/392 ।।
2. जीवेति प्रब्रुवन्प्रोक्तः कृत्याकृत्य विचक्षणः ।
   करोति निर्विकल्पं यः स भवेद्राजवल्लभः ।। 1/54

"प्रभु की प्रसन्नता से प्राप्त द्रव्य से जो सन्तोष करता है, वही राजाओं का प्रिय होता है तथा उनके वस्त्रादि अपने अंगों में धारण करता है, वही राजा का प्रिय होता है।"[1]

"जो प्रभु के कहने पर विरुद्ध उत्तर नही देता और समीप उच्च स्वर से नही हँसता वही राजा का प्रिय होता।"[2]

"जो राजा की स्त्रियों की संगति नही करता तथा उनकी निंदा और उन के साथ विवाद नही करता, वही राजा का प्रिय होता है।"[3]

सेवक के उपरोक्त लक्षण बताते हुये उन्होंने सेवा की घोर निन्दा भी की है -

"जिन्होंने सेवा को कुत्ते की वृत्ति कही है, उनकी यह कल्पना मिथ्या है, क्योंकि कुत्ता स्वच्छन्द फिरता है और सेवक पराई आज्ञा से चलता फिरता है"[4] सेवक के कार्य को पापजन्य माना है -

"पृथ्वी पर शय्या, ब्रह्मचर्य, कृशता तथा स्वल्प भोजन इस तरह यति तथा सेवक की स्थिति समान होती है, अन्तर मात्र इतना ही है कि सेवक का काम पाप-जन्य तथा तथा यति का कार्य धर्मजन्य होता है।[5]

---

1. प्रभुप्रसादजं वित्तं सुप्राप्तं यो निवेदयेत् ।
   वस्त्रार्थं च दधात्यंगे स भवेद्राजवल्लभः ।। 1/59 ।।
2. प्रोक्तः प्रत्युत्तरं नाह विरुद्ध प्रभुणा च यः ।
   न समीपे हसत्युच्चैः स भवेद्राजवल्लभः ।। 1/61 ।।
3. न कुर्यान्निरनाथस्य योषिद्भिः सह संगितम् ।
   न निन्दा, न विवादं च स भवेद्राजवल्लभः ।। 1/63 ।।
4. सेवा श्ववृत्तिराख्याता यैस्तैमिथ्या प्रजल्पितम् ।
   स्वच्छन्दं चरति श्वा त्र सेवकः परशासनात् ।। 1/291 ।।
5. भूशय्या ब्रह्मचर्यंच कृशत्वं लघुभोजनम् ।
   सेवकस्य यतेर्यद्वद्विशेषः पापधर्मजः ।। 1/292 ।।

और भी, "सेवा से धन पाने की इच्छा करने वाले सेवकों ने जो किया है, सो देखो शरीर को जो स्वतन्त्रता थी सो भी इन मूर्खों ने नष्ट कर दी है।"[1]

अर्थोपार्जन हेतु समस्तउपायों में उन्होंने वाणिज्य को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। वाणिज्य के भीउन्होंने 7 प्रकार बातयें हैं -

1. गान्धिक व्यवहार तैल और इत्र आदि बेंचना,
2. दूसरों का आभूषण आदि बन्धक रखना
3. मोदीयना करना
4. परिचित ग्राहकों को ठग कर उनके हाथों सौदा बेंचना,
5. वस्तु का झूठ मूल्य बताकर मुनाफ़ा खोरी करना,
6. कम तौलना, और
7. विदेश से विक्रय वस्तुओं का आयात-निर्यात करना ।[2]

विष्णु शर्मा को चिकित्साशास्त्रका भी ज्ञान था । पंचमतन्त्र की चन्द्रभूपति कथा में घोड़ों के जलने पर उपचार बताया है -

"घोड़ो के जलने पर दाह वानरों को चर्बी से उसी प्रकार समाप्त हो जाता है, जिस प्रकार सूर्योदय होने से अन्धकार समाप्त हो जाता है ।"[3]

इतना ही नहीं इसी तन्त्रकी एक कथा में उन्होंने मोतियाबिन्द की बड़ी ही अचूक चिकित्सा बताई है, जिससे पता चलता है, कि सोंठ, मिर्च, नमक डालकर काले सर्प को पानी में डालकर उबलते हुये पानी को वाष्प यदि मोतियाबिन्द में लगे

---

1. सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्य यत्कृतम् ।
   स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम् ।। 1/287 ।।
2. तच्च वाणिज्यं सप्तविधमर्थागमाय स्यात् । तद्यथा गान्धिकव्यवहारः निक्षेप-प्रवेशः, गोष्ठिक कर्म, परिचितग्राहकागमः, मिथ्याक्रमकथनम्, कूटतुलामानम्, देशान्तराद भाण्डानयनंचेति । - "मित्रभेदः पंचतन्त्रम्"
3. कपीनां मेदसा दोषो वह्निदाहसमुद्भवः ।
   अश्वानां नाशमभ्येति, तमः सूर्योदये यथा ।।
   -- पंचतन्त्रं - 5/74

तो मोतियाविन्द गल कर गिरने लगता है ।[1]

रचयिता को सामुद्रिक शास्त्र का समुचित ज्ञान था । प्रथमतन्त्र की दूती-जम्बुकाषाढ़भूति-कथा में उन्होंने इसका वर्णन किया है -

यदि मनुष्य का स्वर बदल गया हो और उसकेमुख का स्वाभाविक रंग भी बदल गया हो, वह सशंकित होकर देखता हो, अथवा हतप्रभ हो गया हो, तो दोषी अवश्य होता है । क्योंकि पाप करने के बाद मनुष्य अपने कर्म से संत्रस्त हो उठता है और उसका मुखविकृत हो जाता है ।[2]

यदि पुरूष चलते समय लड़खड़ाता होता हो, उसका मुख विवर्ण हो गया हो, उसके ललाट पर पसीना आ गया हो, और वह बोलने में हिचकिचाता हो, तो वह दोषी अवश्य होता है ।[3]

न्यायालय पहुँचने के बाद यदि पुरूषअपनी दृष्टि को नीचेकी ओर झुका कर उत्तर देता है तो भी उसे सदोष समझना चाहिये ।[4]

निर्दोष व्यक्ति की पहचान भी उन्होंने बताई है -

"न्यायालय में उपस्थित होने के बाद यदि पुरूष प्रसन्न हों, स्वस्थ हो, उसकी वाणी सपफ हो, उसकी आँखों में रोष हो, क्रोधयुक्त होकर बात करता हो और उसका धैर्य स्थिर हो तो वह निर्दोष होता है ।"

लोकव्यवहार में भी यह लेखकअत्यन्त निपुण थे । पहलीबात तो अतिथि ही देवतास्वरूप होता है और यदि वह सूर्यास्त काल में आता है तब तो उसकीपूजा-मात्र

---

1. पंचतन्त्र - पंचमअंक - अन्धक - कुब्जक - त्रिस्तनी कथा ।
2. पंचतन्त्र - प्रथमअंक - श्लोक संख्या - 210
3. पंचतन्त्र - प्रथम अंक श्लोक संख्या - 211
4. पंचतन्त्र - प्रथमअंक - श्लोक संख्या - 212

से ही गृहस्थों को देवत्त्व मिल जाता है । इतना ही नहीं अतिथि के स्वागत से अग्नि, आसन प्रदान करने से इन्द्र, पादप्रक्षालन से पितर तथा अतिथि को अर्घ्य देने से शिवतृप्त होते हैं ।

रचयिता की शैली सरल और सरस है । बालोपयोगी इन कथाओं में प्रसाद एवं माधुर्य गुण की अधिकता है । पाण्डित्यप्रदर्शन, क्लिष्ट-रचना, दुर्बोध शब्दावली का सर्वथा परित्याग किया गया है । हास्य एवं विनोदप्रियता कूट कूट कर भरी है, छोटे छोटे वाक्य, सरल भाषा, सुरूचिपूर्ण उक्तियाँ, कथा-प्रवाह और अनुभूतियों के यथार्थ चित्रण से लेखक की विदग्धता, राजनीतिज्ञता, शास्त्रीय पाण्डित्य, वर्णन कुशलता एवं हास्यप्रियता का पग-पग पर परिचय स्वतः ही मिल जाता है । अत्यन्त सरल शब्दों में छोटी सी कथा का आश्रय लेकर गूढ़ राजनीति एवं उच्च शिक्षा देना लेखक के प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचायक है । छोटी से छोटी नैतिक या राजनीतिक शिक्षा के लिये एक कहानी दी गई है । ये कथायें धर्म, जाति, व्यक्ति, राष्ट्र और सभी प्रकार कीसंकीर्णताओं से ऊपर उठकर मानवमात्र की सम्पत्ति हो गई है । भाषा विषय के अनुरूप तथा कहीं कहीं पर मुहावरेदार भी है । रचयिता ने नीतिवाक्य अथवा उपदेशात्मक अंशों को श्लोक के रूप में तथा कथा को गद्य केरूप में रचा है । कुछ पद्य ऐसे भीहैजिनमें उपदेशात्मक अंश, कथा का सारांश तथा कहानी के पात्र,सार एक ही में दिये गये हैं, जैसे -प्रथम तन्त्र की एक कथा के श्लोक में वर्णित हुआ है ।[1]
कुछ स्थलों पर भाषा की सुन्दर छटा भी दर्शनीय है । सिंह के कथन में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग प्रशंसा के योग्य है । पशुपक्षियों द्वारा नीति-शिक्षा, धर्म शिक्षा तथा जो कर्तव्यशिक्षा विष्णुशर्मा ने दी है, वह भला किसके मन कोआकृष्ट नही कर लेगी । नीले गीदड़ की कथा,[3] शेर की खाल ओढ़े गधे की कथा,[4] चूहे हिरण्यक तथा कपोत राज चित्रग्रीव की कथा,[5] बन्दर और मगर की कथा[6] आदि विभिन्न कथायें भारत

---

1. अनागत विधाता च, प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
   द्वावेतौ सुखमेधेते, यद्भविष्यो विनश्यति ।। पंचतन्त्र - 1/347 ।।
2. न गोप्रदानं न महीप्रदानं न चान्नदानं हि तथा प्रधानम् ।
   यथा वदन्तीह बुधाः प्रधानं सर्वप्रदानेष्व भयप्रदानम् ।। वही - 1/313 ।।
3. वही - 1/10

कीही नहीं, अपितु विश्व की सम्पत्ति हो गई हैं। रचयिता जीवन के गुण व दोष दोनों से भली भाँति परिचित था। ब्राह्मणों का छलप्रपंच, पाखण्ड, त्रिया-चरित्र नौकरों का कपट-व्यवहार, चापलूसों का स्वार्थ साधन, धूर्तों का छिद्रान्वेषण, राजाओं की अविवेकिता आदि दुर्गुणों का भी उन्होंने व्यंग्यात्मक भाषा में भली प्रकार उद्घाटन किया है।

र च ना - का ल

पंचतन्त्र के रचनाकाल के विषय में अनेक विद्वानों ने विभिन्न मान्यतायें प्रस्तुत की हैं । इस ग्रन्थ के रचना काल की निश्चित जानकारी अभी तक नहीं है । पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान अनुमान द्वारा ही इसका काल-निर्णय कर पाते हैं । पंचतन्त्र का सही काल-निर्णय नहीं हो सकने का मुख्य कारण यह है कि आज मूल पंचतन्त्र नहीं प्राप्त है । उसके रूपान्तरों एवं अनुवादों की सहायता से ही उसके रचना काल का किंचित् अनुमान लगाया जा सकता है ।

अनेक पाश्चात्य विद्वानों की पंचतन्त्र की रचना काल के विषय में भिन्न भिन्न मान्यतायें इस प्रकार हैं -

1. हर्टेल महोदय ने पंचतन्त्र का प्रमाणित अनुशीलन कर तन्त्राख्यायिका को ही इस का सर्वप्राचीन रूप बताया है । उन्होंने तन्त्राख्यायिका को ही पंचतन्त्र का रूप बताते हुये तन्त्राख्यायिका का समय ई०पू० 200 वर्ष माना है ।[1] मूल पंचतन्त्र की रचना इसके बहुत पूर्व ही हो चुकी होगी - ऐसा अनुमान किया जा सकता है ।

2. एडजर्टन महोदय के अनुसार छठीं शताब्दी में इसका अनुवाद पहलवी भाषा में हुआ था । इस ग्रन्थ के अन्तर्गत कौटिल्यीय अर्थशास्त्र के उद्धरण प्राप्त हैं । अतः यह इस ग्रन्थ की रचना के बाद का हो सकता है, किन्तु निश्चितरूपेण इस ग्रंथ की रचना के विषय में जानकारी नहीं है । इसका रचनाकाल सम्भवतः सौ से पाँच सौ ई० के मध्य हो सकता है ।[2]

3. पाश्चात्य विद्वान कीथ महोदय पंचतन्त्र की रचना गुप्तकाल अथवा गुप्त साम्राज्य के कुछ ही पूर्व मानते हैं । कीथ महोदय के अनुसार "पंचतन्त्र को महाभारत के

---

1. दि पंचतन्त्र - डा० हर्टेल (जैन रिसेन्शन) प्रिफेस पेज - 13
2. दि पंचतन्त्र - रहोयान फार दि जनरल रीडर डा०एफ०एडगर्टन ।

सम्बन्ध में अच्छी तरह जानकारी है और उसमें दीनार[1] शब्द का प्रयोग, जो लैटिन में "डेनारियस" है, निश्चय ही इसकी तिथि ई0 सं0 के परवर्ती काल में सूचित करता है । दीनार शब्द के प्रयोग से विदित मिलता है कि इसका समय द्वितीय शताब्दी ई0 से पूर्व नहीं है । परन्तु इसका प्रत्येक पात्र यह सूचित करता है कि इसकी रचना गुप्त काल में अथवा उनके साम्राज्य स्थापन के कुछ ही पहले ब्राह्मणों के अभ्युदय तथा विस्तार के काल में हुई थी ।[2]

4. विण्टरनित्ज महोदय ने पंचतन्त्र का रचनाकाल 300 ई0 से 500 ई0 के मध्य माना है ।[3]

---

1. काकोलूकीयम् - पंचतन्त्रम् - कथा संख्या - 5.
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - ए0बी0कीथ, अनुवादक डा0 मंगलदेव शास्त्री, पृष्ठ - 295
3. In case history of Nitisastra had been already clear, we would have a chance for determination of the age of origin of the Tantrakhyayika and of the oldest version of the Panch-tantra. But unfortunately we are not in a position to prove that the exast Kautilya - Arthasastra is actually the work of Chanakya, the minister of king Chandra Gupta all that we can say is that Tantrakhyayika did not originate before the age of Chanakya, that is third century B.C. Provisionally we may further only say that the Panchatantra had already been so famous a work in the 6th century A.D., that under the order of king Shosru Ano Shriwan (531-579) it was translated into Pahlavi, and that already is 570 A.D. a Syriac translation from Pahlavi was ready. We would be able to arrive at the truth at least approximately in case we could put the age of its origin between 300 A.D. and 500 A.D.

(History of Indian Literature by M Winternitz:

..... अगले पृष्ठ पर

5. ए० मैकडॉनल महोदय पंचतन्त्र का रचनाकाल 500 ई०डी० के आसपास मानते हैं ।[1]

पिछले पृष्ठ से ......

अर्थात् यदि नीतिशास्त्र के इतिहास का स्पष्टीकरण हुआ होता तो हमें यह निर्धारित करने का संयोग प्राप्त होता कि "तन्त्राख्यायिका और "पंचतन्त्र" के सबसे प्राचीन अनुवाद की उत्पत्ति का युग क्या था, परन्तु दुर्भाग्य से हम स्थिति में नहीं हैं कि हम यह प्रमाणित कर सकें कि कौटिल्य अर्थशास्त्र सम्राट् चन्द्रगुप्त के मन्त्री चाणक्य द्वारा ही प्रणीत था । हम मात्र इतना ही कह सकते हैं कि तन्त्राख्यायिका की उत्पत्ति चाणक्य युग अर्थात् तीसरी शताब्दी में ही हुई, इसके पूर्व नहीं । इसके अतिरिक्त हम यह भी कह सकते हैं कि पंचतन्त्र छठी शताब्दी ईसा पूर्व में इतनी प्रसिद्ध हो चुकी थी कि सम्राट् खुसरो अनो शेरवाँ के कार्यकाल में [531-579] इसका पहलवी भाषा में अनुवाद हुआ और 570 में इसका पहलवी भाषा से सीरियक भाषा में अनुवाद हो चुका था । इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसकी उत्पत्ति 300 से 500 के मध्य हुई होगी ।

---

1. **History of Indian Literature by M winternitz : Page - 348**

At what time this collection first assumed definite shape, it is impossible to say. We know, however that it existed in the first half of the sixth century A.D., since it was translated by order of Kind Khosru Anu Shrivan (531-79) into Pahlavi, the literature language of Persia at that time. We may indeed, assume that it was known in the fifth century, for a considerable time must have elapsed before it become so famous that a foreign king desired its translation.

अर्थात् यह कहना सम्भव नहीं है कि इस ग्रन्थ ने किस समय अपना निश्चित रूप प्राप्त किया । हम इतना कह सकते है कि यह छठवीं सदी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान था । क्योंकि राजा अनो शेरवान के के आदेशानुसार 531-79 में इसका पहलवी भाषा में अनुवाद किया गया, लेकिन हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह पाँचवीं शताब्दी में अवश्य प्रचलित थी, क्योंकि इतनी प्रसिद्धि में इतना समय अवश्य लगा होगा कि एक विदेशी सम्राट् ने उसका अनुवाद करवाना चाहा ।

[अ हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर - द्वारा ए० मैकडॉनल " पृष्ठ संख्या - 373]

6. पाश्चात्य विद्वान बेनफे महोदय पंचतन्त्र का आविर्भाव बौद्ध क्षेत्र में मानते हैं। उनके अनुसार - "पंचतन्त्र की बहुत सी कथायें बौद्ध कहानियों तथा आख्यानों में हैं। अतः बौद्ध कथाओं को उन्होंने उत्यन्त प्राचीन माना है।[1]

पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त भारतीय विद्वानों ने भी पंचतन्त्र के रचनाकाल का निर्धारण किया है -

1. कुछ विद्वान पंचतन्त्र का रचनाकाल 300 ई0 के आसपास मानते हैं।[2]
2. भारतीय विद्वान वाचस्पति गैरोला महोदय के अनुसार "सम्प्रति उपलब्ध उसके [पंचतन्त्र के] विभिन्न अनुवादों एवं उसकी प्राचीनतम हस्तलिपियों के आधार पर पंचतन्त्र की रचना तीसरी शताब्दी के लगभग मानी गई है।[3]
3. एम0 कृष्णामाचार्य महोदय पंचतन्त्र की रचना ख्रिस्ताब्द के कुछ पश्चात मानते हैं।[4] अपने मत की पुष्टि हेतु इन्होंने अधोलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।

"पंचतन्त्र में वर्णित मित्रभेद, मित्रलाभ, काकोलूकीयम्, लब्धप्रणाशम्, अपरीक्षितकरकम्, नीतिसम्बन्धी विचार अर्थशास्त्र से पहले किसी भी रचनाकाल में वर्णित नहीं पाये जाते हैं। पंचतन्त्र में इन्हीं को उदाहरण सहित संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया। यह विश्वसनीय है कि पंचतन्त्र का रचनाकाल प्रकृति शब्द जो मित्रप्रकृति एवं अरिप्रकृति का सूचक है, के लिये अर्थशास्त्र का ऋणी है। किसी राज्य के अन्दर का मित्र अथवा शत्रु आभ्यन्तर प्रकृति एवं राज्य के बाहर का बाह्य प्रकृति है। अर्थशास्त्र की तन्त्रयुक्ति नामक पुस्तक के पन्द्रहवें भाग में चाणक्य के कथनानुसार मित्र अथवा शत्रु के अर्थ में प्रकृति शब्द का प्रयोग उनका स्वनिर्मित नामकरण है। जिसका परैः अस्मिताः शब्दाः और अन्य द्वारा

---

1. भारतीय साहित्य का इतिहास - विण्टरनित्ज, पृष्ठ संख्या - 365
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा0 कमल नारायण टण्डन।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ संख्या - 919
4. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर - एम0 कृष्णामाचार्य - पृष्ठ सं0-424

अप्रयुक्त है । इनके अर्थशास्त्र में स्वनिर्मिततकनीकी शब्दों तथा राजनीतिक विचारों की शिक्षा अर्थशास्त्र में प्रयुक्त करने के अतिरिक्त पंचतन्त्र के रचनाकाल ने न केवल चाणक्य नृपसूत्र या नीतिशास्त्र की चर्चा किया है, वरन् कहीं संगत तरीके से कहीं असंगत तरीके से उदाहरण अर्थशास्त्र के विचारों का समर्थन किया है ।[1]

---

1. Speaking of the priority of Kautilya's Arthasastra, it has been said, "The titles such as separation of frinds, winning of friends, war and peace, the loss of one's acquisition and hasty action given to the five books of the Panchatantra are political ideas explained in no earlier work than the Arthasastra. They are adumbrated with appropriate illustrative stories in the Panchtantra. There is reason to believe that the author of Panchatantra is indebted to the Arthasastra for the use of the word 'Prakriti' in the sense of a friend or an enemy (Mitraprakriti and Ariprakriti). A friend or an enemy inside a state is called Abhyantara Prakriti and outside a state, Bahyaprakriti. In the 15th book entitled Tantrayukti of the Arthasastra Chanakya says the use of the word Prakriti in the sense of a friend or an enemy in his own device (Swasanjna) which he explaines as parair asamitas - sabhas, a word used by others. Besides making use of the technical terms devised & political ideas taught in the Arthasastra, the author not only mentions the name of Chanakya as a writer on Nripsastra, but also makes verbatim quotations sometimes wrongly and sometimes rightly from the Arthasastra in support of his views. (History of classical Sans.Lit. by M Krishnamacharya, Page - 424).

..... शेष अगले पृष्ठ पर

4. ऐतिहासिक प्रमाणों से पता चलता है कि ईसा की द्वितीय शताब्दी के आसपास राजसभाओं में संस्कृत को प्रधानता मिलने लगी थी । राजकार्य में संस्कृत भाषी ब्राह्मणों काप्रधान स्थान हो गया था । अत: ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ी जो संस्कृत का बोध कराने के साथ साथ राजनीति की भी शिक्षा दे सकें । इसी उद्देश्य को लक्ष्य मेंरख कर पंचतन्त्र की रचना हुई । गुप्तवंश का शासनकाल ब्राह्मण और संस्कृत साहित्य के अभ्युदय का समय था । अतः पंचतन्त्र का रचनाकाल 300 ईसा के लगभग माना जा सकता है ।[1]

पिछले पृष्ठ का शेष -

कौटिल्य कृत "अर्थशास्त्र" कोप्राथमिकता प्रदान करते हुये इस कथन का समर्थन किया गया है कि "मित्रों का पृथक्करण, मित्रों का मिलन, युद्ध तथा अमन, किसी प्राप्ति से वंचित हो जाना तथा जल्दबाजी में कार्य करना", ऐसी उपाधियाँ हैं, जो "पंचतन्त्र" के पाँच अंशों को प्रदान की गई है । यह ऐसी राजनैतिक धारणायें हैं, जिन का स्पष्टीकरण "अर्थशास्त्र" से पूर्व किसी अन्य साहित्यिक कृति में नहीं उपलब्ध हैं । इन पाँचों विषयों का सृजन उचित दृष्टान्तात्मक कथाओं द्वारा "पंचतन्त्र" में प्राप्त है । "प्रकृत" शब्द का प्रयोग हितैषी या शत्रु का बोध कराता है, इसलिये इस विश्वास में युक्ति है कि "पंचतन्त्र" के सृजक व रचयिता "अर्थशास्त्र" पर ही अनुग्रहीत थे । हितैषी या शत्रु को राज्य के भीतर "अभ्यान्त्यप्रकृत" तथा राज्य के बाहर "भयाप्रकृत" कहा गया है । "अर्थशास्त्र" के पन्द्रहवें कृतंश "तन्त्रयुक्ति" में चाणक्य का कथन है कि "प्रकृत" शब्द का प्रयोग हितैषी अथवा शत्रु के उस बोध से है, जिसकी युक्ति स्वयं हो (स्वसंजना) । इसकी व्याख्या वे "अस्मितम्-समम्" शब्द से करते हैं । इस शब्द का का प्रयोग अन्य सृजकों द्वारा भी किया गया है । साहित्यकार ने "अर्थशास्त्र" में लिखित यान्त्रिक शब्दों व राजनैतिक धारणाओं का भी प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त वह इस बात का भीउल्लेख करते हैं कि चाणक्य न केवल "नृपसूत्र" व "नीतिशास्त्र" के लेखक थे, बल्कि कभी कभी अपने दर्शन का निर्वाह व समर्थन करने के लिये उन्होंने उद्धृत अंशों का शब्दशः प्रयोग किया है ।

---

1. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा - डा० चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा डा० नानू राम व्यास पृष्ठ संख्या - 328

5. मूल पंचतन्त्र का रचनाकाल तृतीय शताब्दी ई0 मानना उचित है । इस समय सम्भवतः भारतीय क्षत्रियों ने विदेशियों को हटा कर हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया होगा और उन्हें इस प्रकार के ग्रन्थ की आवश्यकता पड़ी होगी।[1]

6. डा0 अय्यरके कथनानुसार विष्णुशर्मा ई0पू0 तीसरी शती के थे । कथामुखम् में राजा अमरशक्ति का अपने पुत्रों को कौटिल्य के अर्थशास्त्र का ज्ञान करा देने की प्रार्थना से यह सिद्ध होता है । कौटिल्य या चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रसिद्ध मन्त्री था और उसकी मृत्यु 275 ई0पू0 के आसपास हुई थी । अतः पंचतन्त्र की रचना इस तिथि के बाद हुई होगी । यह पंचतन्त्र का रचनाकाल ई0 पू0 275 से 100 ई0 के बीच मानते हैं ।[2]

7. पंडित बल्देव उपाध्याय पंचतन्त्र का रचनाकाल चतुर्थ शती स्वीकार करते हैं ।[3]

8. डा0 भीखनलाल आत्रेय के अनुसार यह ग्रन्थ (पंचतन्त्र) तीन सौ ई0पू0 के समय का माना जाता है । उसका वर्तमान और प्राप्त संस्करण 300 ई0 की रचना माना जाता है । कोई कोई विद्वान् तो विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतन्त्र को ईसा की पाँचवी शती का रचा हुआ समझते हैं ।[4]

9. पंचतन्त्र की स्थिति मानते हैं, महाभारत के पूर्व की, डा0 प्रभाकर नारायण कवठेकर । उनकेअनुसार "शिक्षाप्रद साहित्य एवं नीतिकथाओं को महाभारत में बाद में जोड़ा गया है । वह समय स्थूल रूप से ख्रि0 पू0 300 से लगाकर ख्रि0 200 तक का है जिसमें नीतिकथा का महाभारत में प्रक्षेप हुआ था । ख्रि0 पू0 200 में ही तन्त्राख्यायिका के अस्तित्व की सम्भावना डा0 हर्टेल ने प्रकट की है । तन्त्राख्यायिका में नीतिकथायें नीतिशास्त्र का अंग बन चुकी हैं । इसके पूर्व जातक एवं मूल पंचतन्त्र (Ur- Panchatantra) में प्राणिकथा नीतिकथा का रूप धारण कर चुकी थी । इससे स्पष्ट है कि महाभारत में नीतिकथायें मूल पंचतन्त्र, जातक और तन्त्राख्यायिका के प्रभाव से ही अपनाई गई हैं । पंचतन्त्र के बाद के जो संस्करण

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - वे0 वरदाचार्य-अनुवादक-डा0कपिलदेव द्विवेदी, पृ-198
2. पंचतन्त्र एण्ड हितोपदेश स्टोरीज बाई एस0एस0पी0 अय्यर इन्ट्रोडक्शन, पृष्ठ- 10
3. संस्कृत वाङ्मय - पंडित बल्देव उपाध्याय - पृष्ठ - 215
4. भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास -डा0 भीखनलाल आत्रेय - पृष्ठ - 395

हैं, उनसे कहीं पूर्व ही महाभारत में नीतिकथा प्रवेश कर चुकी थी ।[1]

10. महामहोपाध्याय पं0 सदाशिव शास्त्री ने लिखा है कि पंचतन्त्र का रचनाकाल 300 ई0पू0 है, क्योंकि यह विष्णुशर्मा ।चाणक्य। का बनाया हुआ है ।[2]

11. महामहिम पंडित दुर्गाप्रसाद शर्मा ने विष्णुशर्मा को ईसा की आठवीं शताब्दी के मध्य माना है, क्योंकि पंचतन्त्र में आठवीं शताब्दी के दामोदरगुप्त द्वारा रचित कुट्टिनीमत की "पर्यंक: स्वास्तरण" इत्यादि आर्या प्रथम तन्त्र में दिखाई पड़ती है ।[3]

पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के मतों का विवेचन करने से पंचतन्त्र की निश्चित तिथि पर कोई प्रकाश नही पड़ता है । सभी विद्वानों ने भिन्न भिन्न अनुमानित समय माना है । तथापि कतिपय बिन्दुओं पर समस्त विद्वान् सहमत हैं । भारतीय एवं पाश्चात्य सभी विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि खुसरो अनोशेरवाँ के आश्रय में हकीम बुर्जोई द्वारा 531-579 ई0 में पंचतन्त्र का पहलवी भाषा में अनुवाद हुआ था, जिसकी प्रसिद्धि करटक व दमनक नाम से थी । भारतीय विद्वान् पं0 दुर्गाप्रसाद शर्मा ने पंचतन्त्र की स्थिति आठवीं शती मानी है । यह तो वास्तव में हास्यास्पद है, क्योंकि ईसा की छठीं शती में पंचतन्त्र का पहलवी भाषा में अनुवाद हुआ था । यह तो असम्भव ही है कि बिना मूल ग्रन्थ के उसका अनुवाद हो जाए । अत: पंडित दुर्गाप्रसाद शर्मा का कथन निराधार प्रतीत होता है । इन विद्वान् के अतिरिक्त अन्य समस्त विद्वज्जन ने इस ग्रन्थ के पहलवी अनुवाद की छठीं शती में स्थिति स्वीकार की है । आज इसका पहलवी अनुवाद तथा इसकी संस्कृत दोनों ही अनुपलब्ध है । 500 ई0 में बूद द्वारा इसका सीरियन में अनुवाद कर लिया गया था। इन अनुवादों द्वारा पंचतन्त्र की प्रसिद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है, क्योंकि

---

1. संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्गम एवं विकास - डा0 प्रभाकर नारायण कठवेकर- पृष्ठ - 366
2. हितोपदेशसार - 1949, प्रस्तावना, पृष्ठ - 6
3. काव्यमाला, तृतीय गुच्छक । 1899। पृ0-111

इस ग्रन्थ की सर्वातिशायिनी प्रसिद्धि के पश्चात् ही इसका पहलवी तथा सिरियन में अनुवाद हुआ होगा । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस अनुवाद के बहुत पहले ही इस ग्रन्थ की रचना हो चुकी होगी, अर्थात् छठीं शताब्दी से पूर्व ही इसकी रचना हुई होगी ।

पंचतन्त्र के प्रारम्भ में रचयिता ने चाणक्य को अत्यन्त आदरपूर्वक नमस्कार किया है ।[1]

"मनु, वृहस्पति, शुक्र, व्यास, पराशर, चाणक्य, विद्वद्वर्ग तथा राजनीति शास्त्र के प्रवर्त्तक अन्य जनों को मेरा प्रणाम है ।"

इससे यह विदित होता है कि यह रचना निश्चय ही चाणक्य से पूर्व की होगी । पं0 सदाशिवशास्त्री ने चाणक्य तथा विष्णुशर्मा में कोई अन्तर न करके दोनों को एक ही बताया है । इसी अध्याय में पहले ही इस विषय पर चर्चा की जा चुकी है । जिससे उपरोक्त विद्वान् के इस विचार का खण्डन हो जाएगा और स्पष्ट होता है कि पंचतन्त्र की रचना निश्चित रूप से अर्थशास्त्रकी रचना के बहुत बाद हुई थी ।

पंचतन्त्र मेंप्रयुक्त दीनार शब्द का प्रयोग जो लैटिन में "डेनारियस" कह-लाता है इस ग्रन्थ का रचनाकाल ईस्वी सम्वत् की ओर संकेत करता है, क्योंकि दीनार का प्रयोग ईसा के पश्चात् ही किया गया था । डा0 प्रभाकर नारायण कवठेकर के अनुसार मूल पंचतन्त्र कीरचना महाभारत से पूर्व ही हो चुकी थी तथा महाभारत के अंश उसमें बाद के संस्करणों में जोड़े गये हैं, तर्कसंगत प्रतीत नही होता है, क्योंकि महाभारत के अनेक नीतिपूर्ण श्लोक इस ग्रन्थ में उल्लिखित हैं, इतना ही नहीं अपितु कतिपय कथायें भी महाभारत से ग्रहण की गईं हैं ।

---

1. मनवेवाचस्पतये शुकाय, पराशराय ससुताय ।
   चाणक्यायच विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्रकर्तृभ्य: ।। 2 ।। पंचतन्त्रं - कथामुखम् ।

वे कथायें अथवा श्लोक आदि पंचतन्त्र में महाभारत के पश्चात् जोड़े गये हैं, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, क्योंकि पंचतन्त्र जैसे नीतिग्रन्थ का नाम अथवा इस के रचनाकार का उल्लेख महाभारत में कहीं नहीं है । अतः पंचतन्त्र की रचना महाभारत के पश्चात ही हुई होगी, ऐसा प्रतीत होता है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अब यह निष्कर्ष निकलता है कि पंचतन्त्र की रचना सम्भवतः ईसा की तीसरी शताब्दी के आसपास हुई होगी, क्योंकि इसमें वर्णित धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्थिति से यह गुप्तकालीन रचना मालूम देती है । साधारण सामाजिक स्थिति पर रचित यह धर्मविषयक कथाओं से इस पर ब्राह्मण वर्ग का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है । शिवपूजन पर विशेष महत्व दिया गया है । राजा का मन्त्रिपरिषद मुख्यतः ब्राह्मण ही था । संक्रान्ति के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था ।[1] इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ का लक्ष्य ब्राह्मण धर्म का प्रचार करना था । आडम्बरों को इस ग्रन्थ में अच्छा नहीं समझा गया है । सम्भवतः यह गुप्तकालीन रचना ही हो । डा० सक्सेना का यह विचार है कि भारत में नैतिक शिक्षा देने के लिये गुप्तकाल में छोटी-छोटी आख्यायिकाओं का आश्रय लिया जाता था । धीरे धीरे इन कथाओं को साहित्यिक साँचे में ढाल दिया गया । उनमें कहीं कहीं पद्यों का भी समावेश कर दिया गया । इन कहानियों में एक से दूसरी कहानी बड़ी कहानी के रूप में परिवर्तित हो जाती थी । गुप्त काल में ऐसे कथासाहित्य का सृजन यथेष्ट मात्रा में हुआ । विष्णुशर्मा नामक पंडित ने पंचतन्त्र की रचना की जो सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय कथासंग्रह बन गया ।[2] इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि पंचतन्त्र की रचना ईसा की तीसरी शती के आसपास हुई होगी ।

---

1. पंचतन्त्र - 2/2
2. गुप्तकाल में शिक्षा और साहित्य - डा० भूपेश चन्द्र सक्सेना - पृष्ठ सं० 266

द्वितीय - अध्याय

पृ०सं० 70-102

पंचतन्त्र का मूल-स्रोत

पंचतन्त्र का मूल - स्त्रोत

चिरकाल से ही कथाएं मानव-जीवन के लिये सामाजिक नीति अथवा आचार-विचार की शिक्षा प्रदान करने का एक अच्छा साधन रही है । पंचतन्त्र में उपदेशात्मक कथाएं भरी पड़ी हैं । पंचतन्त्र की कथाएं कहाँ से ली गई हैं, कितनी कथाएं दूसरे ग्रन्थों से ली गई हैं तथा कितनी ऐसी हैं, जिनकी रचना रचयिता ने स्वयं की है । वास्तव में इसके अध्ययन के द्वारा ही पंचतन्त्र की कथाओं के स्त्रोत की किंचित् जानकारी प्राप्त की जा सकती है ।

पंचतन्त्र के कृतिकार ने कथामुखम् के दूसरे श्लोक में ही वन्दना करते समय मनु, गुरू, शुक्र, व्यास, पराशर तथा चाणक्य जैसे विद्वानों के प्रति अपनीश्रद्धा व्यक्त करते हुए नमस्कार किया है । अवश्य ही कृतिकार उक्त विद्वानों से प्रभावित रहा होगा और उसने अपनी रचना के समय इन शास्त्रकारों की कृतियों का सहारा लिया होगा ।

पंचतन्त्र की अनेक कथाएं ऐसी भी हैं, जो ब्राह्मणकाल, रामायण-काल, महाभारतकाल और जातक आदि की कथाओं से साम्य स्थापित करती हुई सी प्रतीत होती हैं । राजतन्त्रीय व्यवस्था जैसी नीति की अनेक बातें हमें चाणक्य के अर्थशास्त्र से उद्धृत मालूम देती हैं ।

कथाओं में किसी भी एक मत अथवा अपने मतों की पुष्टि के लिये रचयिता ने चाणक्य के अर्थशास्त्र के श्लोकों का सहारा लिया है । पंचतन्त्र को देखने से यह भी अच्छी तरह ज्ञात होता है कि आचार व्यवहार जैसी नीतियों के श्लोकमनुस्मृति पराशरस्मृति, नारदस्मृति जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों से लिये गए हैं । कतिपय श्लोकों का रूप भी ऐसा प्रतीत होता है कि जो लेखक के द्वारा बदल दिया गया है । अनेक ग्रन्थों के रचनाकाल का सही सही समय न ज्ञात होने के कारण यह जानना कठिन है कि पंचतन्त्र से पूर्व कौन-कौन से ग्रन्थ विद्यमान थे, किन्तु कतिपय ग्रन्थों की संभावित

तिथियों के अनुसार ही पंचतन्त्र के मूल-स्त्रोत का पता चल सकता है । पंचतन्त्र के ईश-वन्दना श्लोक से यह तो स्पष्ट हो ही चुका है कि व्यास, चाणक्य, मनु तथा पराशर जैसे कृतिकारों के ग्रन्थ पंचतन्त्र रचयिता के समय में रहे होंगे, क्योंकि लेखक इन ग्रन्थों से अत्यधिक प्रभावित था, उसने इनकी वन्दना भी की है ।

॥॥ म हा भा र त

महाभारत का अनेक प्रकार की कथाओं की दृष्टि से विश्वसाहित्य में विशिष्ट स्थान है । यह इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र का ही नहीं, वरन् भारतीय कथाओं का भी एक विशाल भण्डार है । महाभारत को पंचतन्त्र का उपजीव्य मानने से पूर्व आवश्यक है कि उसके रचना काल को भी जान लिया जाए । इसकी रचना के विषय में अनेक विभिन्न मत प्रस्तुत किये गए हैं ।

महाभारत के एक श्लोक से यह ज्ञात होता है[1] कि आज जो महाभारत हमारे समक्ष है, वह वास्तविक महाभारत का परिवर्द्धित रूप है । मैकडॉनल महोदय के अनुसार असली महाभारत जो जय के नाम से थी उसमें आठ हजार आठ सौ श्लोक थे । चिन्तामणि विनायक वैद्य महोदय के अनुसार इसमें आठ हजार आठ सौ कूट श्लोक थे, किन्तु साधारण श्लोक इनसे अलग थे । ऐसा माना जाता है कि महाभारत अलग अलग तीन कालों में पूर्ण हुई । सम्भवतः इसका प्रथम रूप औपदेशिक न होकर ऐतिहासिक रहा होगा, जिसे व्यास द्वारा "जय" नाम दे दिया गया होगा ।[2] आदि पर्व के श्लोक से कुछ विद्वान इस भारत का प्रारम्भ मनु उपाख्यान से तथा अन्य कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जो परिचर उपाख्यान से भारत का प्रारम्भ स्वीकार करते हैं ।[3]

---

1. जयो नामेतिहासोऽयम् ।। महाभारत - 18 पर्व ।
2. जयो नामेतिहासोऽयम् ।। महाभारत - 18 पर्व ।
3. मन्वादि भारतं केचिदस्तिकादि तथा परे ।
   तथा परिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते ।।

महर्षि व्यास ने उपर्युक्त तीनों काल में से प्रथम काल में अपने पाँच मुख्य शिष्यों में से एक वैशम्पायन नामक शिष्य को महाभारत पढ़ाया । यह कदाचित् परिचर उपाख्यान से प्रारम्भ होने वाला ग्रन्थ है ।

द्वितीय काल में वैशम्पायन ने जनमेजय को सर्पसत्र सुनाया । आस्तिक उपाख्यान से आरम्भ होने वाले इस ग्रन्थ में सम्भवत: दो हजार चार सौ श्लोक थे ।

तृतीय काल में जब शौनक द्वादशवर्षीय यज्ञ कर रहे थे, उस समय सौति ने शौनक को द्वितीय काल का विस्तृत ग्रन्थ सुनाया । ऐसा समझा जाता है कि महाभारत का रूप इसी काल में परिवर्द्धित हुआ होगा । एक लाख श्लोकों की संख्या वाले इस ग्रन्थ का नाम "महाभारत" कदाचित् सौति ने ही रखा होगा ।[1]

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाभारत अनेक शताब्दियों के अन्तर में पूर्ण की गई । अत: इसका काल - निर्णय सम्पूर्ण महाभारत को एक साथ रख कर करना असम्भव है । तथापि कतिपय विद्वानों के काल सम्बन्धी विचारों पर दृष्टिपात करना उचित है ।

‖1‖ दहलमन के साक्ष्य के अनुसार व्याकरण प्रणेता पाणिनि को असली महाभारत का पता था ।[2]

‖2‖ ई०पूर्व पाँचवीं शताब्दी में आश्वलायन गृह्यसूत्र में भारत तथा महाभारत दोनों नाम आये हैं ।

‖3‖ महाभारत का उल्लेख लगभग चार सौ ईसा पूर्व बोधायन धर्म सूत्र में भी आया है ।

‖4‖ महाभारत के "विष्णुसहस्त्रनाम" का उद्धरण बोधायन गृह्यसूत्र में है ।

---

1. महत्वाद् भारत्वाच्च महाभारतमुच्यते ।
2. पाणिनि को युधिष्ठिर जैसे वीरों का पता है किन्तु महाभारत नामक किसी ग्रन्थ का नहीं । इसके द्वारा इस बात का भी स्पष्टीकरण होता है कि महाभारत नाम की उत्पत्ति बाद में हुई ।

(5) मेगस्थनीज रचित इण्डिका नाम के ग्रन्थ में लिखा है कि कुछ कहानियाँ हैं जो महाभारत में पाई जाती हैं ।[1]

(6) कतिपय ज्योतिषियों ने यह बताया है कि असली महाभारत दो सौ ईसा पूर्व का है ।

(7) असली महाभारत में ब्रह्मा को सबसे बड़ा देव कहा है । पालि साहित्य के आधार पर ब्रह्मा को सबसे बड़ा देव मानना पाँचवीं शताब्दी से पूर्व की बात है ।

पाश्चात्य विद्वान् डाक्टर विष्टरनित्ज सम्पूर्ण महाभारत को ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के बाद तथा ईसवी चौथी शताब्दी के पूर्व मानते हैं ।[2]

हॉपकिन्स महोदय ने "दि ग्रेट एपिक ऑफ इण्डिया" में महाभारत की उत्पत्ति एवं समय पर विस्तृत वर्णन किया है -

(1) चार सौ ईसा पूर्व भारत संग्रह था, जिसे पाण्डवों के बारे में कोई जानकारी नही थी ।

(2) चार सौ ईसा पूर्व से दो सौ ईसा पूर्व में महाभारत की कथा का आविर्भाव हुआ, जिसमें पाण्डव नायक तथा कृष्ण उपदेवता हैं ।

(3) तीन सौ ईसा पूर्व से सौ ईसवी या दो सौ ईसवी तक कृष्ण उनके पूरे देवता बन चुके हैं । इसी काल में उपदेशात्मक साहित्य का प्रवेश हुआ ।

(4) दो सौ से चार सौ ईसवी तक आरम्भिक भाग और बाद में पर्व जोड़ दिये गये हैं ।

(5) हॉपकिन्स महोदय के अनुसार नीति शिक्षात्मक सभी अंश बाद में जोड़े गये हैं । सम्पूर्ण महाभारत का रचनाकाल ज्ञात करना असम्भव है तथापि स्थूल

---

1. कुत्ते के बराबर बड़ी बड़ी दीमकें या चीटियाँ जमीन खोदती हैं और सुनहरी रेत निकल आती है ।

2. The Mahabharat cannot have received its present form earlier than the fourth century B.C. and later than the fourth century A.D. (History of Indian Literature by Dr Winternitz: Page - 465.

रूप से यह कहा जा सकता है कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में महाभारत विद्यमान था ।[1]

मैक्डॉनल महोदय के अनुसार हमारा यह मानना ठीक है कि यह महान् ऐतिहासिक महाकाव्य महाभारत हमारे संवत्सर के प्रारम्भ से पूर्व ही एक औपदेशिक संग्रह-ग्रन्थ बन चुका था ।

पंचतन्त्र का रचनाकाल ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से चतुर्थ शताब्दी के मध्य है । इससे स्पष्ट है कि पंचतन्त्र से पूर्व महाभारत अपने असली रूप में विद्यमान था ।

सम्पूर्ण महाभारत में अनेक पशुकथायें भरी पड़ी हैं । सबसे अधिक कथायें शान्ति पर्व में हैं । आदि पर्व की कणिक नीति की जम्बुक कथा से ही पंचतन्त्र की महाचतुरक श्रृंगाल कथा की कथावस्तु ली गई होगी, ऐसा स्पष्ट परिलक्षित होता है -

किसी बन में रहने वाले महाचतुरक श्रृगाल ने एक बार एक हाथी देखा जो जमीन पर मृत पड़ा था । वह श्रृगाल उसके कठोर चमड़े को काट नहीं पा रहा था । इसी बीच एक सिंह आया । श्रृगाल ने दौड़कर उससे विनती करते हुये कहा, "मैं आप का सिपाही हूँ । यहाँ बैठकर गज की रक्षा कर रहा हूँ । आप इसका भक्षण करें ।" सिंह ने उसकी विनम्रता से प्रसन्न होकर कहा कि मैं दूसरे का मारा हुआ जीव नहीं खाता हूँ ।" सिंह ने वह मृत हाथी श्रृगाल को पुरस्कारस्वरूप दे दिया । सिंह के जाने के पश्चात् वहाँ एक व्याघ्र आ गया । उसे देखकर श्रृगाल ने उसको भेदनीति के द्वारा वहाँ से यह कहकर भगा दिया कि सिंह सभी व्याघ्रों पर कुपित है और वह निश्चय ही उस व्याघ्र को भी मार डालेगा । व्याघ्र के जाते ही वहाँ एक चीता आया । श्रृगाल ने सोचा कि चीते के दाँत सुदृढ़ होते हैं । श्रृगाल ने युक्ति से काम लिया और चीते से उस गज का चमड़ा कटवा कर उसे सिंह के आने का डर दिखा कर

---

1. Hopkins : The Great Epic of India : Page-239.

भगा दिया । जैसे ही श्रृगाल ने उस गज को खाना प्रारम्भ ही किया था कि एक अन्य श्रृगाल भी वहाँ आ पहुँचा । श्रृगाल ने उसे युद्ध करके क्षत-विक्षत कर डाला । और इसके बाद बहुत दिनों तक वह उस गज के माँस का आस्वादन करता रहा ।

शान्ति पर्व में लगभग बारह नीति कथायें हैं - व्याघ्र-गोमायु संवाद, उष्ट्रग्रीवोपाख्यान, नदियों और समुद्र का संवाद, श्वान-दृष्टान्त, मत्स्योपाख्यान, मार्जार-मूषक संवाद, ब्रह्मदत्त-पूजनी संवाद, कपोत-व्याघ्र संवाद, गृध्र-गोमायु संवाद, शाल्मलिवृक्ष कथा, ऊँट और 2 बैलों की कथा तथा काश्यप-श्रृगाल संवाद । महाभारत की ही "मत्स्योपाख्यान" कथा पंचतन्त्र की प्रथम तन्त्र की मत्स्यत्रय कथा से अत्यन्त समानता रखती है । पंचतन्त्र की कथा इस प्रकार है :-

किसी जलाशय में अनागत विधाता, प्रत्युत्पन्नमति तथा यद्भविष्य नामक तीन मत्स्य रहते थे । एक बार कुछ केवटों ने उस जलाशय को देखकर कहा कि यह जलाशय मछलियों से भरा पड़ा है कल प्रातःकाल अपनी जीविका हेतु यहीं से मछ-लियाँ निकालेंगे । यह सुनकर अनागतविधाता नामक मत्स्य ने समस्त मछलियों को उस तालाब से निकल कर अन्य किसी पार्श्ववर्ती तालाब में जाने की सलाह दी । अनागत विधाता की बात सुनकर प्रत्युत्पन्नमति भी वहाँ से चलने के लिये तत्पर हो गया । किन्तु प्रत्युत्पन्नमति की बात सुनकर यद्भविष्य ने उच्च अट्टहास किया और उन दोनों के निर्णय को अनुचित बताया । वह भाग्य के सहारे ही बैठा रहा और किसी अन्य तालाब की ओर नहीं गया । पद्मविषय के उक्त निर्णय को जानकर अनागत विधाता तथा प्रत्युत्पन्नमति अपने अपने अनुयायियों के साथ उस तालाब से निकलकर दूसरे तालाब में चले गये । दूसरे दिन प्रातःकाल उन केवटों ने आकर जालों से उस तालाब को छान डाला और पद्मविषय के साथ अन्य मत्स्यों को भी मार कर उस तालाब को मत्स्यहीन बना दिया ।

विष्णु शर्मा ने स्वरचित ग्रन्थ की कथा में कतिपय परिवर्तन भी किया है, महाभारत की भाँति पंचतन्त्र में भी अनागत विधाता तथा प्रत्युत्पन्नमति नामक मत्स्यों का

वर्णन है । महाभारत की कथा इस प्रकार है -

एक तालाब में तीन मत्स्य रहते थे । तीनों में मित्रता थी । उन तीनों मित्रों में से एक अत्यन्त दूरदृष्टि वाला था । दूसरा मत्स्य अधिक बुद्धिमान होने के कारण प्रसंग आने पर अपनी नीतियुक्त बुद्धि से प्रत्येक संकट से मुक्ति पा लेता था, किन्तु तीसरा मत्स्य आलसी था ।

एक दिन कुछ मछुआरे उस तालाब पर आये और तालाब के किनारे की भूमि पर उन्होंने कुछ छिद्र कर दिये जिससे सारा पानी बह गया । यह देखकर अनागतविधाता नामक दूरदर्शी मत्स्य ने सभी मत्स्यों को वह तालाब छोड़ कर अन्यत्र जाने की सलाह दी किन्तु नीतिनिपुण प्रत्युत्पन्नमति ने "प्रसंग आने पर अपनी नीति से काम लूँगा ।" तथा आलसी मत्स्य ने कहा "इतनी जल्दी ही क्या है ।" यह सुन कर अनागत विधाता मत्स्य तालाब छोड़कर अन्यत्र चला गया ।

तालाब में कम जल बचने पर मछुआरों ने जाल बिछा कर अनेक मत्स्यों को फँसा लिया । मछुआरों द्वारा जाल से मछली निकाले जाते समय प्रत्युत्पन्नमति मत्स्य ने जाल को बाहर से इस तरह पकड़ लिया जैसे कि वह जाल में ही फँसा हो, किन्तु आलसी मत्स्य उस जाल के भीतर ही फँस गया । अन्य जलाशय पर जाकर मछुआरे जैसे ही जाल धोकर मछलियाँ निकालने लगे तो सुअवसर जानकर प्रत्युत्पन्नमति मत्स्य जाल को छोड़कर पानी में चला गया तथा आलसी मत्स्य जाल में ही फँसे रहने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गया ।

जातक में भी इसी प्रकार तीन मत्स्य की कथा मिलती है जिसका विचार शील मत्स्य उदात्त बोधिसत्व होने के कारण अन्य दोनों मत्स्यों की रक्षा करता है, अर्थात् जातक के अन्य दोनों मत्स्य पराजित होते हैं । उनकी प्राणरक्षा भी विचार-शील मत्स्य की युक्ति के द्वारा ही होती है ।

इस प्रकार यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इस कथा पर महाभारत का प्रभाव है । भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को सुनाया गया "कपोतव्याघ्र संवाद",[1] जो मुनि भार्गव द्वारा मुचकुन्द को सुनाया गया था, पंचतन्त्र में भी प्राप्त होता है ।[2] यह कथा अत्यन्त प्राचीन है । पंचतन्त्र में यह कथा इस प्रकार है -

एक दिन एक बहेलिया माँस की खोज में इतस्तत: भ्रमण कर रहा था । घूमते समय उसके हाथ में एक कपोती आ गई । उसने उसे पिंजरे में बन्द कर लिया । अचानक वातवृष्टि होने लगी । बहेलिया एक वृक्ष के नीचे पहुँचा । आकाश के निर्मल होने पर वह प्रार्थना करने लगा कि - "जो कोई इस वृक्ष पर रहता हो, मैं उसकी शरण में आया हूँ । वह मेरी रक्षा करे । इस समय मैं शीत से व्यथित हूँ और भूख से बेसुध हो रहा हूँ"उसी वृक्ष पर बैठा कपोत अपनी स्त्री की प्रतीक्षा कर रहा था तथा विलाप कर रहा था । पति के दुख से दुखी कपोती ने शरणागत की रक्षा करने हेतु अपने पति का ध्यान आकृष्ट कराया । कपोती के धार्मिक-युक्तियों से ओत-प्रोत विचारों को सुनकर कपोत ने सूखे पत्तों पर कहीं से अंगारे लाकर गिराये, जिससे अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई । व्याध के अग्नि सेंकने के बाद उस कपोत ने अग्नि की प्रदक्षिणा करके स्वयं को अग्नि को समर्पित कर दिया । यह देख कर व्याध ने शोकाकुल होने के कारण पिंजरे को तोड़ कर फेंक दिया ।कपोती भी शोकाकुल होकर अग्नि में प्रविष्ट हो गई । भौतिक शरीर कात्याग करने के बाद उसने अपने पति के साथ स्वर्ग का आनन्द लिया ।

पंचतन्त्र रचयिता का महाभारत को एक विशिष्ट उपजीव्य के रूप में मानना इस ग्रन्थ में आये श्लोकों द्वारा स्पष्ट होता है -[3]

---

1. महाभारत पर्व 12, 143-149 श्लोक ।
2. पंचतन्त्र - तृतीय तन्त्र - कथा - 8
3. जीवन्तो पिमृता: पंच श्रूयन्ते किल भारते ।
   दरिद्रो व्याधितो मूर्ख: प्रवासी नित्यसेवक: ।। वही 289 श्लोक ।।
   आदित्योदयस्तात । ताम्बूलं भारती कथा ।
   इष्टा भार्या सुमित्रं च अपूर्वाणि दिने दिने ।। वही 2/18 ।।

भगवान् व्यास का कहना है कि दरिद्र, रोगी, मूर्ख, प्रवासी तथा सेवक ये पाँचों जीवित रहते हुये ही मरे के समान होते हैं।

हे तात, सूर्योदय, ताम्बूल, महाभारत की कथा, प्रियकारिणी स्त्री तथा सन्मैत्री - ये वस्तुयें प्रतिदिन अपूर्व एवं नवीन वस्तु की तरह ही सुख-कारक होती है। मनुष्य का हृदय इनसे कभी भी ऊबता नही है।

पंचतन्त्र के कुछ श्लोक महाभारत की कथा की ओर संकेत करते हैं -

दुष्टों के सहवास से कभी कभी सज्जनों के भी मन में विकार उत्पन्न हो जाया करता है, जैसे - दुर्योधन के कारण भीष्म पितामह को भी विराट् नगर में गायों को छीनने के लिये जाना पड़ा था।[1]

आपत्तिकाल में फँस जाने की स्थिति में बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह कालापेक्षी बन कर सब कुछ जानते हुये भी अपने नेत्रों को बन्द कर ले और अच्छे या बुरे कार्यों को जिस किसी भी भाँति मौन भाव से करता चला जाय। गाण्डीव की प्रचण्ड प्रत्यंचा को खींचने के कारण कठोर हो जाने वाले करों से युक्त अर्जुन ने नृत्यकाल में अपनी कमर में सुशोभित होने वाली काँची को धारण कर के नर्तकी के रूप में नृत्य नहीं किया था, क्या ?[2]

धैर्य एवं उत्साह से युक्त होते हुये सिद्धि की अपेक्षा करने वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने तेज, प्रताप और बल को रोक कर भाग्य के द्वारा स्वतः सिद्ध होने वाले कार्यों में धैर्यपूर्वक स्थिर भाव से समय की प्रतीक्षा करता रहे। इन्द्र,

---

1. असतां संगदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम् ।
   दुर्योधन प्रसंगेन भीष्मो गोहरणे गतः ।। 1/274 ।। पंचतन्त्र
2. यद्वा तद्वा विषमपतितः साधु वा गर्हितं वा,
   कालापेक्षी पिहितनयनो बुद्धिमान् कर्म कुर्यात् ।
   किं गाण्डीवस्फुरद्गुणास्फालनक्रूरपाणि -
   र्नासील्लीलानटनविलसन्मेखली सव्यसाची ? - 3/223 - वही

कुबेर तथा यमराज जैसे प्रतापी भाइयों के रहते हुये भी महाराज युधिष्ठिर को विराट के राज्य में त्रिदण्ड धारण करके रहना पड़ा था और अनेक कष्टों को सहना पड़ा था ।[1] रूपवान तथा बलवान होने पर भी नकुल और सहदेव ने राजा विराट के यहाँ भृत्य के रूप में रहकर गायों को चराने का कार्य किया था ।[2]

अनुपम सुन्दरी, युवतियों में श्रेष्ठ, उत्तमकुल में उत्पन्न और कान्ति में साक्षात् लक्ष्मी के समान लगने वाली द्रौपदी भी समय की विपरीतता के कारण दुर्दशा को प्राप्त हो गई थी । मत्स्यराज-विराट के अन्तःपुर की युवतियों के द्वारा सगर्व एवं आक्षेपयुक्त वाक्यों में "सैरन्ध्री" (दासी) कहकर संबोधित की जाती थी और वहाँ चन्दन घिसने का कार्य किया करती थी ।[3]

त्रिलोक विजयी महाराज मान्धाता आज कहाँ चले गये ? सत्यप्रतिज्ञ भीष्म आज कहाँ हैं ? देवताओं के राजा बननेवाले महाराज नहुष आज कहा हैं? महायोगिराज भगवान कृष्ण कहाँ गये ? इनके विनाश को देखकर यही मानना पड़ता है कि ये महारथी असंख्य कुँजरों के अधिपति एवं इन्द्र के सिंहासन पर बैठने वाले महापुरूष काल के कहीं द्वारा बनाये गये थे और उसी के द्वारा नष्ट

---

1. सिद्धिं प्रार्थयता जनेन विदुषातेजो निगृह्यस्वकं,
   सत्वोत्साहवताऽपि दैवविधिषु स्थैर्यं प्रकार्यंकृमात् ।
   देवेन्द्रद्रविणेश्वरान्तकसमैरप्यन्वितो भ्रातृभिः
   किं क्लिष्टः सुचिरं त्रिदण्डमवहच्छ्रीमान्न धर्मात्मजः ? ।। वही 3/224 ।।
2. रूपाभिजनसम्पन्नौ कुन्तीपुत्रौ बलान्वितौ ।
   गोकर्मरक्षाव्यापारे विराटप्रेष्यतां गतौ ।। पंचतन्त्र 3/225 ।।
3. रूपेणाप्रतिमेन यौवनगुणैः श्रेष्ठे कुले जन्मना,
   कान्त्या श्रीरिव यात्र सापि विदशां कालकृमादागता ।
   सैरन्ध्रीति सगर्वितं युवतिभिः साक्षेपमाज्ञप्तया,
   द्रौपद्या ननु मत्स्यराजभवने घृष्टं चिरं चन्दनम् ।। वही 3/226 ।।

भी कर दिये गये ।[1]

गीता से भी पंचतन्त्र में कुछ श्लोक लिये गये हैं ।[2] कथाओं के समान ही कतिपय श्लोक ऐसे भी हैं जिनके रूप तथा भाषा इत्यादि में कुछ परिवर्तन कर दिये गये हैं ।

"हे अर्जुन . जिनके विषय में शोक नही करना चाहिये उनके विषय में तुम शोक भी कर रहे थे और इधर आदर्शवादी पंडितों की तरह तत्व की बातें भी करते जा रहे हो । हे धनंजय . यदि तुम पंडितों की तरह तत्व की बातें कर रहे हो तो तुम्हें पंडितों के अनुकूल ही आचरण करना चाहिये ।" – पंचतन्त्र ।

हे अर्जुन . तूं न शोक करने योग्य मनुष्यों के लिये शोक करता है और पंडितों के से बचनों को कहता है, परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पंडित जन शोक नही करते हैं – गीता ।

युद्ध में यदि तुम मारे भी जाओगे तो स्वर्ग की ही प्राप्ति होगी और यदि भाग्य से जीवित बच गये तो घर तो मिलेगा ही, साथ में यश भी मिलेगा । अतः युद्ध करने में दोनो ही स्थिति में उत्तम फलों की प्राप्ति होगी – पंचतन्त्र ।

या तो तू युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीत कर पृथ्वी का राज्य भोगेगा । इस कारण हे अर्जुन . तूं युद्ध के लिये निश्चय करके खड़ा हो जा । – गीता ।

---

1. मान्धाता क्व गतस्त्रिलोकविजयी राजा क्व सत्यव्रतो,
   देवानां नृपतिर्गतः क्व नहुषः सच्छास्त्रवित्केशवः ।
   मन्ये ते सरथाः सकुंजरवरा/ शक्रासनाध्यासिनः,
   कालेनैव महात्मना ननु कृताः कालेन निर्वासिताः ।। – वही – 3/253-।।
2. अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
   गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ।। पंचतन्त्र – 1/461 ।।
   अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
   गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ।। गीता – 2/11 ।।
   हतस्त्वं प्राप्स्यसि स्वर्गं जीवन् गृहमथो यशः ।
   युध्यमानस्य ते भावि गुणद्वयमनुत्तमम् ।। पंचतन्त्र – 4/69 ।।
   हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
   तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।। गीता – 2/[illegible] ।।

इतना ही नहीं अपितु कथा की दृष्टि से तृतीय तन्त्र की रूपरेखा तथा बहेलिये का जाल लेकर उड़ जाने वाली कथा भी महाभारत से काफी मिलती जुलती है ।[1]

इस प्रकार अनेक कथाओं व श्लोकों की साम्यता महाभारत से होने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचतन्त्र रचयिता ने महाभारत जैसे महाकाव्य में प्रयुक्त नीतियोंका प्रयोग पंचतन्त्र में अत्यन्त उदारता पूर्वक किया है । इस प्रकार महाभारत पंचतन्त्र के लिये एक उपजीव्य ग्रन्थ है ।

[2] बौद्ध जातक में पंचतन्त्र के स्त्रोत

बुद्ध के जन्म के कुछ वर्ष पूर्व भारत में अनेक प्रकार के झगड़े होने लगे थे । कर्म काण्ड के बाहरी आडम्बर, हिंसा, लोभ से दूर रहे इसकी चिन्ता में कुछ सत्व-प्रधान लोग आत्मा की खोज में एकान्तसाधक बन गये, ऐसी ही ऊहापोह की स्थिति में ईसा के पूर्व छठीं शताब्दी में भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ । बुद्धदेव ने सूत्रों, गाथाओं के माध्यम से आर्त्त जनता के कष्टों को दूर किया । बुद्ध ने अपने आविर्भाव काल में पाली, मागधी जनभाषा वाले बिहार प्रदेश में विचरण किया । "पाली त्रिपिटक ग्रंथ" जो बुद्ध वचनों का सर्वाधिक प्रमाणिक ग्रन्थ है, तृतीय बौद्ध सम्मेलन के अवसर पर बैशाली में ईसा पूर्व तृतीय शती में संकलित हुआ ।[2] इसका वर्णन डा0 विण्टरनित्ज महोदय ने किया है ।[3] वास्तव में ये गाथायें अत्यन्त प्राचीन हैं । इन्हीं के स्पष्टीकरण हेतु जातक कथायें कही गईं हैं । डा0 विण्टरनित्ज के अनुसार कुछ गाथायें वैदिक युग की हैं ।[4] ये तीन पिटक इस प्रकारहैं :-

---

1. महाभारत : 10/1 . . 2/04
2. भरत सिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास - अध्याय -3, पृष्ठ-111
3. हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, डा0 विण्टरनित्ज - भाग-2, पृष्ठ 4 व 5
4. वही

1. सुत्त पिटक 2. विनय पिटक,
3. अभिधम्म पिटक

सुत्तपिटक पाँच भागों में विभक्त है ।[1] यह साहित्य एवं इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसी के अन्तर्गत दसवें स्थान पर जातक ग्रन्थ भी आता है । बौद्धकाल की कतिपय कथायें पंचतन्त्र में उपलब्ध होती हैं । पाश्चात्य विद्वान बेनफे महोदय का मत है कि पंचतन्त्र की कथायें जातक से ली गई हैं ।[2] क्यों कि जातक की कुछ कथायें पंचतन्त्र में पाई जाती हैं । इसके विपरीत हर्टेल महोदय इस मत का खण्डन करते हुये कहते हैं कि पंचतन्त्र के मूल संस्करण से जातक की कथायें ली गई हैं ।[3] वास्तव में पंचतन्त्र का सही काल निर्णय न हो सकने तथा इसके मूल संस्करण के अनुपलब्ध होने के कारण यह स्पष्ट रूपेण नहीं कहा जा सकता है कि बौद्ध जातक पंचतन्त्र से पहले था या बाद में । क्योंकि "जातक" भी विभिन्न काल की रचना है । किन्तु जातक की रचना पंचतन्त्र से पूर्व की है, इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि जातक की नीतिकथायें अर्द्ध विकसित रूप में हैं तथा उनका पूर्ण विकास लौकिक साहित्य पंचतन्त्र में हो गया ।

जातक किस प्रकार पंचतन्त्र का उपजीव्य है, इसका विवरण इस प्रकार है-

"पंचतन्त्र के चतुर्थ तन्त्र की मुख्य कथा[4] जातक की एक कथा से[4] साम्य रखती है । लेकिन कहीं कहीं पर इसमें भिन्नता है तथापि यह कहा जा सकता है कि इसका कथानक पंचतन्त्र रचयिता ने जातक से ही लिया होगा । यद्यपि यह स्पष्ट है कि इन कथाओं को विष्णुशर्मा ने बलपूर्वक नहीं ग्रहण किया होगा, बल्कि ये कथायें लोकसाहित्य से अत्यन्त निकट सम्बन्ध रखने के कारण समाज में पूर्णरूपेण फैल चुकी थीं ।

---

1. दीर्घ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय, खुदत्तक निकाय ।
2. Benfey, Panchtantra, I Introduction.
3. Hertel, W Z K M 16 P. 269 : Dr S N Das Gupta, History of Sanskrit Literature, 1947, Vol. I, Editor's Notes, P.702 F.N.
4. पंचतन्त्र, चतुर्थ तन्त्र, मगर व वानर की कहानी ।
5. संसुमार जातक, 208

जातक में बन्दर, मगर को गंगा के उस पार फल खाने का भुलावा देकर ले जाता है और पंचतन्त्र में मगर कहता है कि तुम्हारी भौजाई ।मगरी। ने तुम्हें बुलाया है और मुझे कृतघ्न कहती हैं, क्योंकि मैं तुम्हें अपने घर नहीं ले जाता । जातक कथा में बन्दर, गूलर के वृक्ष पर निवास करता है, किन्तु पंचतन्त्र में वह जंबू ।जामुन। वृक्ष का निवासी है ।

धम्मपद की कच्छप जातक कथा[1] भी पंचतन्त्र में मिलती है । इन कथाओं में कतिपय अन्तर होने पर भी काफी समानता का भाव है । जातक कथा में हंस के बच्चे कछुये को हिमालय प्रदेश के सरोवर में ले जाते हैं और उसे चुप रहने के लिये कहते हैं, परन्तु कछुआ बोलने के कारण राजप्रासाद में गिर पड़ता है । राजा तथा अमात्य वहाँ आते हैं और बोधिसत्व एक गाथा सुनाते हैं कि जो वाचाल होते हैं, उनकी यही गति होती है । पंचतन्त्र की प्रथम तन्त्र की कथा सं0 13 में भी इसी प्रकार की कथा वर्णित है, किन्तु इसमें वृष्टि न होने से अकाल पड़ने के कारण उसके दो मित्र हंस उसे दूसरे सरोवर में प्राणरक्षा हेतु ले जाते हैं न कि मनोहर सरोवर दिखाने के लिये ।

पंचतन्त्र के द्वितीय तन्त्र की मुख्य कथा कुरंगमिगजातक[2] के समान है । इस में हिरण्यकमूषक, चित्रांगमृग, सुबुद्धिकाक और कम्बुग्रीव नामक कच्छप आपस में मित्र होने के कारण एक दूसरे की मदद करते हैं और एक दूसरे को विपत्तियों से भी बचाते हैं । कुरंगमिग जातक की कथा में हिरण, कठफोड़वा, कछुआ व शिकारी हैं । रोचकता की दृष्टि से पंचतन्त्र की कथा अधिक रोचक है ।

कुट्टिदूसक जातक[3] में एक बन्दर की कथा है, जिसमें बन्दर एक पक्षी द्वारा उपदेश दिये जाने पर पक्षी के घोंसलें को नष्ट कर देता है । इसी कथा के समान पंचतन्त्र की प्रथम तन्त्र की अठ्ठारहवीं कथा भी है ।

---

1. धम्मपद जातक, 215 - पृष्ठ सं0-418
2. कुरंगमिग जातक, 206
3. कुट्टिदूसक जातक, 321

सीहचम्म जातक[1] में सिंह की खाल ओढ़े गधे की कहानी है जो पंचतन्त्र में भी उपलब्ध है ।[2]

वास्तव में जातक नीतिकथाओं का ही नही वरन् परी कथाओं, पुरातन - कथाओं, दृष्टान्त कथाओं, लोक कथाओं जैसे अनेकानेक कथाओं का भी संग्रह है । पंच- तन्त्र में व्यवहारिक नीति एवं राजनीति विषयक नीति पर विशेष बल दिया गया है। यह प्रभाव पंचतन्त्र रचयिता को जातक कथाओं से ही प्राप्त हुआ होगा । जातक की अनेक कथाओं का विकसित रूप पंचतन्त्र की कथाओं से प्राप्त होता है । पंचतन्त्र के मूल संस्करण की अनुपलब्धता के कारण यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जातक पंच- तन्त्र का उपजीव्य ग्रन्थ है और इसके बाद के संस्करणों में जातक की कथायें अवश्य जोड़ी गईं होंगी ।

---

1. सीहचम्म जातक - 189
2. पंचतन्त्र, 1/6

किसी स्थान पर उद्धत नामक गधा रहता था । वह धोबी के यहाँ दिन भर गट्ठर ढोकर रात्रि में इतस्ततः घूमता रहता था । प्रातःकाल वह भयवश धोबी के घर लौट जाता था । किसी दिन रात के समय खेतों पर घूमते हुये उसकी एक श्रृंगाल के साथ मित्रता हो गई । मोटा होने के कारण वह घरा तोड़कर श्रृंगाल के साथ खेतों में प्रविष्ट हो जाताथा । किसी दिन प्रमत्त गधे ने खेत में खड़े होकर श्रृगाल से गाना गाने की अपनी इच्छा व्यक्त की श्रृंगाल के बार बार मना करने पर भी वह गधा गाना गाने के लिये कटिबद्ध था । श्रृंगाल घेरे के बाहर बैठ गया । श्रृंगाल के जाने के बाद गधे ने अपना गीत ज्योंही आरम्भ किया, क्षेत्रपाल ने उस गधे को पीटना प्रारम्भ कर दिया । थोड़ी देर बाद क्षेत्रपाल के जाते ही गधा भागते हुये खेत के बाहर निकल गया ।

(3) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पंचतन्त्र का स्त्रोत

प रि च य :-

ई0पू0 चतुर्थ शताब्दी में सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रधान मन्त्री, चाणक्य का अर्थ-शास्त्र नीतिपदों से भरा पड़ा है। उसमें नीति सम्बन्धी उत्कृष्ट श्लोक सरल भाषा-शैली में निबद्ध हैं। अर्थशास्त्र यद्यपि राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थ है, फिर भी इसमें व्यवहारिक सामान्य नीति सम्बन्धी शाश्वत सत्य के द्योतक श्लोक प्राप्त होते हैं। डा0 फ्लीट इसका रचना काल 321-296 ईसा पूर्व मानते हैं। किन्तु डा0 जॉली ने मेगस्थनीज के यात्रा विवरण में चाणक्य के नाम का उल्लेख न देखकर इसे ईसा की चतुर्थ शती की रचना स्वीकार किया है। विण्टरनित्ज तथा कीथ भी इसकी रचना ई0 चतुर्थ शताब्दी मानते हैं, किन्तु अर्थशास्त्र में वर्णित नरेन्द्रार्थे तथा मौयार्थे पदावली से इसका रचना काल चन्द्रगुप्त मौर्य अर्थात् ईसा पू0 चौथी शताब्दी ठहरता है। इस प्रकार निश्चय ही यह रचना पंचतन्त्र से पूर्व की है। और विष्णु शर्मा इससे विशेष रूप से प्रभावित थे।

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र राजनैतिक शिक्षा का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। चाणक्य के ही नाम से अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं, यथा -

1. लघु चाणक्य - 108 श्लोक।
2. वृद्ध चाणक्य - 250 श्लोक।
3. चाणक्य नीति दर्पण - 348 श्लोक।
4. चाणक्य राजनीति शास्त्र - प्राय: 1000 श्लोक।
5. कौटिलीय अर्थशास्त्र - 6000 श्लोक।
6. चाणक्य सूत्र - 571 सूत्र।

विषय की दृष्टि से कौटिलीय अर्थशास्त्र का विशिष्ट स्थान है। इसमें राजा के कर्त्तव्यों का, ग्रामीण रीतियों का, भूमि एवं कृषि व्यापार-समस्याओं का, अपराधियों को किस प्रकार का दण्ड देय होगा आदि का, उल्लेख है।

अनेक विद्वान इस बात से सहमत नहीं हैं कि अर्थशास्त्र का रचयिता चाणक्य ही था । किन्तु यह तथ्य निश्चित है कि चाणक्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र विष्णु शर्मा के समक्ष अवश्य था, क्योंकि रचयिता ने अत्यन्त श्रद्धाभाव से अर्थशास्त्र रचयिता चाणक्य को प्रणाम किया है ।[1]

पंचतन्त्र पर अर्थशास्त्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । पंचतन्त्र के तृतीय तन्त्र काकोलूकीयम् में मेघवर्ण नामक काक के पिता के वृद्ध मन्त्री ने जिन तीर्थों एवं गुप्तचरों का वर्णन किया है, वे अर्थशास्त्र से ही ग्रहण किये हुये मालूम देते हैं । चाणक्य रचित अर्थशास्त्र में भी तीर्थों की संख्या शत्रुपक्ष में अट्ठारह तथा अपने पक्ष में पन्द्रह दर्शाई गई है । पंचतन्त्र में यह भी वर्णन मिलता है कि भगवान् नारद ने युधिष्ठिर से इन तीर्थों के बारे में बताया था ।[2] इस कथन से यह प्रतीत होता है कि विष्णुशर्मा ने इसे अर्थशास्त्र से ग्रहण किया होगा । यह भी सम्भावना है कि यह महाभारत से लिया गया हो, क्योंकि चाणक्य ने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करके राजतन्त्रीय व्यवस्था सम्बन्धी अनेक तत्व संकलित करके अपने ग्रन्थ का प्रणयन किया था ।[3]

---

1. मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय ससुताय,
   चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्र कर्तृभ्यः ।। पंचतन्त्र कथामुखम् ।।
   सकलार्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदम् ।
   तन्त्रैः पंचभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम् ।। पंचतन्त्रम् कथामुखम् श्लोक – 2, 3,।।
   अर्थात् – मनु, बृहस्पति, शुक्र, व्यास, पराशर, चाणक्य, विद्वद्वर्ग तथा राजनीति शास्त्र के प्रवर्त्तक अन्य जनों को मेरा प्रणाम है ।
   सम्पूर्ण राजनीतिशास्त्रों के तत्वों का पर्यालोचन करके तथा विश्व में प्रचलित परम्परा एवं व्यवहारों का स्वयं अनुभव करने के पश्चात् विष्णु शर्मा ने पाँच भागों में विभक्त इस पंचतन्त्र नाम के परम उपादेय राजनीतिशास्त्र का प्रणयन किया ।
2. अत्र विषये भगवता नारदेन युधिष्ठिरः प्रोक्तः ।।पंचतन्त्रम् काकोलूकीयम् –पृष्ठ–18
3. प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ।
   नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति समुच्चयनम् ।। चाणक्य नीति दर्पण – 1/1 ।।

पंचतन्त्र के ही अनेक श्लोक चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों में पाये जाते हैं। जिनमें कुछ में तो अन्तर प्रदर्शित होता है, किन्तु कतिपय श्लोक ज्यों के त्यों पाये जाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विष्णु शर्मा ने चाणक्य के नीति ग्रन्थों का पंचतंत्र रचने के समय भरपूर प्रयोग किया।

[4] स्मृति ग्रन्थों में पंचतन्त्र के स्त्रोत

वैदिक ग्रन्थों के कठोर आदेशों के द्वारा साधारण जनता की लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती थी, अतः विभिन्न धर्मशास्त्रों ने जन्म लिया। इन्हीं धर्मशास्त्रों में कतिपय स्मृतियाँ ऐसी भी हैं जिनका प्रभाव पंचतन्त्र पर भी है।

म नु स्मृ ति :-

मनुस्मृति सर्वप्राचीन ग्रन्थ है। कीथ महोदय के अनुसार "मनुस्मृति में एक जाति या राष्ट्र के एक बड़े विभाग की अन्तरात्मा प्रतिफलित है।[1]

मनुस्मृति का काल निर्णय अन्य ग्रन्थों की भाँति कठिन है। महाभारत तथा मनुस्मृति के स्थलों में साम्य होने के कारण किसको प्राथमिकता प्रदान की जाये यह प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि दोनों ग्रन्थों के उन पद्यों को सम्भव है कि किसी अन्य ग्रन्थ से ग्रहण किया गया हो। गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा महाभारत में मनुस्मृति के कथनों का उल्लेख है। मनुस्मृति का व्याकरण प्रायः पाणिनि सम्मत है। मनुस्मृति के नाम का जो ग्रन्थ आज उपलब्ध है, उसमें बारह अध्याय और दो हजार छः सौ चौरानबे श्लोक हैं। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ब्राह्मणों के पुनरभ्युत्थान का काल है तथा

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डा० ए०बी० कीथ अनु० मंगलदेव शास्त्री : पृष्ठ-संख्या - 557

चौथी शताब्दी गुप्तकालीन पुनर्जागरण मनुस्मृति की रचना हेतु अधिक समीचीन होता है । यह ग्रन्थ एक व्यक्ति विशेष अथवा एक समुदाय विशेष कृति है, यह कहना कठिन है । यह भी सम्भव है कि ये ग्रन्थ इनसे पूर्ववर्ती ग्रन्थ हों । इसमें कतिपय श्लोकों को छोड़कर जो अन्य बातें कही गई हैं, वह श्लोक वर्तमान मनुस्मृति में अनुपलब्ध है, किन्तु लेखक मनुस्मृति के विचारों से अत्यधिक प्रभावित था - यह कहा जा सकता है ।

पंचतन्त्र के प्रथम तन्त्र में मनुस्मृति के कतिपय श्लोक हैं ।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि ये श्लोक विष्णुशर्मा द्वारा मनुस्मृति से ही ग्रहण किये गये होंगे । मनु

---

1. आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ । पंचतन्त्र - 1/45 ।

अर्थात् मनुष्य के आकार, प्रकार, इंगित, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र एवं मुखगत विकारों के द्वारा उसके अन्तस्थ भावों का पता लग जाता है ।

आकारैरिंगितैर्गत्या, चेष्टया भाषितेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ ।मनुस्मृति 8/26।

अर्थात् आकार, इंगित, गमन, चेष्टा, भाषण तथा नेत्र एवं मुख के विकारों से भीतरी भाव मालूम होता है ।

तृणानि भूमिरूदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि हर्म्येषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ । पंचतन्त्र - 1/182 ।

अर्थात् बिछाने के लिये तृण, विश्राम के लिये भूमि, पीने या हाथ-पैर धोने के लिये जल और सुनने के लिये मृदुवाणी, ये चार वस्तुयें सज्जनों के घर से कभी नही जाती है ।

तृणानि भूमिरूदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ । मनुस्मृति - 3/101 ।

अर्थात् तृण, भूमि, जल और मधुर वचन, ये चारों तो सज्जनों के घर से कभी दूर नही होते ।

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ । पंचतन्त्र - 1/387 ।

.... अगले पृष्ठ पर

के अनेक कथनों का वर्णन भी पंचतन्त्र में मिलता है । विपत्ति आने पर मित्र एवं बांधवों के लिये यत्नपूर्वक विद्वान् लोग यत्न करें । यह बात मनु भगवान् ने भी कहा था ।[1] बलिवैश्व देव कर्म के अन्त में तथा श्राद्ध में समुपस्थित अतिथि से उसका चरण, गोत्र, विद्या और कुल न पूछे ।[2] यह भी भगवान् का ही कथन है । यद्यपि इन श्लोकों में मनु का नाम आता है तथापि आज प्राप्त मनुस्मृति में ये श्लोक अनुपलब्ध हैं । पंचतन्त्र के कतिपय ऐसे भी श्लोक हैं जो मनुस्मृति के समान हैं । पंचतन्त्र के तृतीय तन्त्र काकोलू-

---

पिछले पृष्ठ से -

अर्थात् आपत्ति से त्राण पाने के लिये धन को एकत्र किया जाता है । स्त्री की रक्षार्थ धन का परित्याग करें । किन्तु आत्मरक्षा हेतु धन तथा स्त्री दोनों का परित्याग यदि आवश्यक हो तो उनका परित्याग करने में मनुष्य को हिचकिचाना नहीं चाहिये ।

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान्न रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।। ।मनुस्मृति - 7/213।

अर्थात् आपत्ति के लिये धन की रक्षा करें । धनों द्वारा स्त्रियों की रक्षा करें और धन तथा स्त्री द्वारा सदा अपनी रक्षा करें ।

1. मित्रार्थे बान्धवार्थे च बुद्धिमान् यतते सदा ।
जातास्वापत्सु यत्नेन जगादेदं वचो मनुः ।। । पंचतन्त्र - 1/346 ।
अर्थात् मनु ने कहा है कि आपत्तिकाल में बुद्धिमान् व्यक्ति को अपने मित्रों तथा बंधु बान्धवों को उस आपत्ति से बचाने का सतत प्रयत्न करते रहना चाहिये क्योंकि सतत प्रयत्न से सम्भव है कि आपत्ति दूर हो जाये ।

2. न पृच्छेच्चरणं गोत्रं न च विद्यां कुलं न च ।
अतिथिं वैश्वदेवान्ते श्राद्धे च मनुरब्रवीत ।। । वही - 4/3 ।
अर्थात् मनु का कथन है कि श्राद्ध एवं बलिवैश्वदेव के अनन्तर भोजन का समय हो जाने पर समागत अतिथि से उसके वेद की शाखा गोत्र, विद्या एवं कुल आदि के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिये ।

कीयम् के सैंतीसवें श्लोक में कहा गया है कि अधिक बलशाली विजयार्थी राजा के लिए कार्तिक व चैत्र मास में[1] शत्रुदेश में जाना उचित है, अन्य समय में नहीं । इसी तन्त्र का ही अड़तीसवाँ श्लोक किसी विपत्ति में फँसे हुये तथा उसकी निर्बलता की दशा में शत्रु पर आक्रमण करने हेतु समस्त समय उचित कहे गये हैं ।[2]

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा यह कहा जा सकता है कि पंचतन्त्र रचयिता विष्णु शर्मा ने स्वग्रन्थ की रचना हेतु मनुस्मृति अथवा इससे भी पूर्व मनु के विचारों के संकलन रूप किसी अन्य स्त्रोत से ग्रहण किये हैं ।

॥5॥ नारद स्मृति में पंचतन्त्र का स्त्रोत

नारदस्मृति वृहत् एवं लघु दो संस्करणों के रूप में प्राप्त होती है । इसमें अनेक विषयों का वर्णन है और यह मनुस्मृति का अनुकरण करती है । नवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध के लेखक विश्वरूप ने इसके लगभग 50 श्लोकों का उद्धरण दिया है । मेधातिथि एवं मिताक्षरा में भी इसका उल्लेख है । नारद स्मृति में मनुस्मृति के उद्धरण पाये जाते हैं । सम्भवतः नारदस्मृति याज्ञवलक्य स्मृति के बाद की है ।

नारदस्मृति का काल सौ ईसवी से तीन सौ ईसवी के मध्य माना गया है ।[3] बाण की रचनाओं में नारद स्मृति का रचनाकाल सौ से पाँच सौ ईसवी के मध्य माना गया है ।[4] पंचतन्त्र का रचयिता पराशर स्मृति का ऋणी है । पंचतन्त्र के तृतीय तन्त्र के 182वाँ और 212वाँ श्लोक पराशरस्मृति से लिये हुये प्रतीत होते हैं ।[5]

---

1. कार्तिके वाथ चैत्रे वा विजिगीषोः प्रशस्यते ।
   यानमुत्कृष्टवीर्यस्य शत्रुदेशे न चान्यदा ॥ ॥पंचतन्त्र - 3/37॥
2. अवस्कन्दप्रदानस्य सर्वे कालाः प्रकीर्तिताः ।
   व्यसने वर्तमानस्य शत्रोश्छिद्रान्वितस्य ॥ ॥पंचतन्त्र - 3/38॥
3. अ हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र - पी0वी0 काणे - भूमिका, पृष्ठ - 29
4. अ हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र - पी0वी0 काणे - भूमिका, पृष्ठ - 30
5. माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च ।
   त्रयस्ते नरकं याति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ॥पंचतन्त्र 3/212॥ ॥परा0स्मृति 7/8॥

पराशरस्मृति के कतिपय श्लोकों द्वारा पंचतन्त्रसे इसकी साम्यता प्रदर्शित होती है, उदाहरणार्थ - पंचतन्त्र के चतुर्थ तन्त्र के श्लोक का भाव पराशरस्मृति के श्लोक के ही समान है किन्तु दोनों के श्लोकों के शब्दों में थोड़ा अन्तर है ।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पंचतन्त्र पर पराशरस्मृति का प्रभाव अवश्य है ।

{6} बृहस्पति स्मृति में पंचतन्त्र के स्त्रोत

बृहस्पतिस्मृति आज अपूर्ण ही उपलब्ध है । किन्तु इसका रूप अस्पष्ट नही कहा जा सकता है । इसको देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह नारदस्मृति की सम कालीन है । इसका रचनाकाल दो सौ से चार सौ ईसवी के लगभग माना जाता है । कात्यायन और विश्वरूप ने इसका कईबार उल्लेख किया है ।

पंचतन्त्र में अनेक स्थलों पर बृहस्पति के कथनों का उल्लेख है, यथा - एक श्लोक में कहा गया है कि बृहस्पति के मतानुसार किसी का विश्वास नही करना चाहिये, जिसका वंश एवं कार्य न मालूम हो उसके साथ मेल न करें - यह बृहस्पति ने कहा है ।[2] युद्ध में विजयप्राप्ति अनिश्चित होती है, अतः बृहस्पति ने कहा है कि संशय युक्त कार्य नही करना चाहिये ।[3] बृहस्पति स्मृति के एक श्लोक में तथा पंचतन्त्र के एक

---

1. प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खो वा यदि पंडितः ।
   वैश्वदेवान्तमापन्नः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ।। {पंचतन्त्र - 4/2}
   इष्टो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पंडितः एवं वा ।
   सम्प्राप्तो वैश्वदेवान्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ।। {पराशरस्मृति - 1/40}
2. यस्य न ज्ञायते वीर्यं न कुलं न विचेष्टितम् ।
   न तेन संजाति कुर्यादित्युवाच बृहस्पतिः ।। {पंचतन्त्र - 2/62}
3. सन्धिमिच्छेत्समेनापि संदिग्धो विजयो युधि ।
   न हि सांशयिकं कुर्यादित्युवाच बृहस्पतिः ।। {पंचतन्त्र - 3/11}

श्लोक में अत्यधिक समानता है ।[1] बृहस्पति देवताओं के गुरू थे । अतः इसकी प्राचीनता निश्चित है और वर्तमान स्मृति में बृहस्पति ने ऐसा कहा है - इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता है । यद्यपि बृहस्पतिस्मृति का रचनाकाल कतिपय विद्वान् छठीं-सातवीं शती के लगभग रखते हैं ।[2] डा० जॉली भी इसका समय छठीं या सातवीं शताब्दी ही मानते हैं । पंचतन्त्र की रचना छठीं शताब्दी से पूर्व ही हो चुकी थी । सम्भव है कि पंचतन्त्र रचयिता ने ये श्लोक बृहस्पति के ही नाम से प्रसिद्ध किसी अन्य ग्रन्थ से ग्रहण किया होगा अथवा पंचतन्त्र में ही यह बाद में जोड़ दिया गया हो, ऐसी भी सम्भावना है क्योंकि पंचतन्त्र का रचना काल तीसरी शताब्दी के आसपास माना जाता है । किन्तु जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि बृहस्पतिस्मृति आज अपूर्ण उपलब्ध है । सम्भव है कि छठीं सातवीं शताब्दी के पूर्व बृहस्पतिस्मृति अपने पूर्ण रूप में रही हो और पंचतन्त्र के रचयिता ने उसी समय बृहस्पतिस्मृति से श्लोक ग्रहण किया हो । इसके बाद ही यह स्मृति अनुपलब्ध हुई है तथा छठीं सातवीं शती में पुनः यह अपूर्ण रूप में उपलब्ध हुआ हो ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि पंचतन्त्र के रचयिता ने बृहस्पतिस्मृति से कुछ अंश अवश्य ग्रहण किया होगा ।

[8] अन्य ग्रन्थों का पंचतन्त्र पर प्रभाव

उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी ग्रन्थ हैं, जिनका कुछ न कुछ प्रभाव

---

1. पंचपश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवान्नृते ।
   शतं कन्यानृते हन्ति सहस्त्रं पुरूषान्नृते ।। [पंचतन्त्र - 3/109]
   पंचकन्यानृतं हन्ति दश हन्ति गवानृतम्‌ [बृहस्पतिस्मृति - 1/43]
   शतमश्वानृतं हन्ति सहस्त्रं पुरूषानृतं । [बृहस्पतिस्मृति - 1/44]

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - ए०बी० कीथ :
   अनुवादक - मंगलदेव शास्त्री : पृष्ठ सं० 56.

पंचतन्त्र पर परिलक्षित होता है । कामशास्त्र का प्रभाव विष्णु शर्मा पर था । यह कथामुखम् से ही स्पष्ट हो जाता है ।[1] सम्भवत: इसकी रचना दूसरी शताब्दी के आसपास की है । इसके निश्चित समय निर्धारण के अनुमान में विशेष सहायता नहीं मिलती है तथापि यह निश्चित कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ का विष्णु शर्मा ने अच्छा अध्ययन किया होगा ।

भर्तृहरि की रचनाओंका भी पंचतन्त्र पर प्रभाव पड़ा है । शतकत्रयम् के कतिपय श्लोक पंचतन्त्र में मिलते हैं । भर्तृहरि की रचना में कालिदास कृत अभिज्ञान-शाकुन्तलम् एवं विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस जैसे विख्यात ग्रन्थों के श्लोक पाये जाते हैं, ये समस्त ग्रन्थ पंचतन्त्र के बाद के हैं । मुद्राराक्षस का काल पाँच सौ से छः सौ ई0 के मध्य का है । अत: भर्तृहरि निश्चितरूपेण इसके पश्चात् ही होंगे । पंचतन्त्र रच-यिता ने भर्तृहरि के ग्रन्थों से श्लोक लिया हो, यह कहना अनुचित होगा । यह सम्भव है कि भर्तृहरि ने पंचतन्त्र के श्लोकों का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया हो । इस के साथ ही साथ यह भी सम्भावना है कि पंचतन्त्र के बाद के संस्करणों में ये श्लोक ग्रहण कर लिये गये हों । भर्तृहरि के श्लोकत्रयी में से शृंगारशतक एवं नीतिशतक के कति-पय श्लोकों की समता दर्शनीय है -

राजाओं की नीति भी वेश्याओं की ही तरह बहुरूपिणी होती है । कार्यानुसार उसे सत्याचरण भी करना पड़ता है और झूठ भी बोलना पड़ता है । कहीं वह अत्यन्त कठोर हो जाती है और कहीं प्रिय बोल कर भी अपना कार्य निकाल लेती है । उसे कभी दयालु होना पड़ता है तो कहीं हिंसा का भी अवलम्बन करना पड़ता है । कहीं वह उदार और दानपरायण हो जाती है तो कहीं कृपणता एवं लोलुपता को भी ग्रहण करना पड़ता है । कभी वह उदार होकर व्यय करती है,

---

1. पंचतन्त्र - कथामुखम् ।

और कभी धनसंग्रह के लिये व्यग्र भी हो उठती है। उसका स्वभाव यदि कभी बहुव्ययी हो जाता है तो कभी उसके आय के साधन भी बढ़ जाते हैं।[1]

इसी तरह का एक श्लोक भर्तृहरि की नीतिशतक में है -

"कभी सत्य, कभी असत्य, कभी कठोर वचन बोलने वाली, कभी मधुर बोलने वाली, कभी घातक, कभी दयाभावयुक्त, कभी धनलोलुपता, कभी दान प्रवीण, नित्य व्यय करने वाली तथा नित्य अधिक धन पैदा करने वाली - इस प्रकार की राजनीति वेश्या के समान अनेक रूपों वाली होती हैं।[2]

---

1. सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च,
   हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
   भूरिव्यया प्रचुरवित्तसमागमा च,
   वेश्यांगनेव नृपनीतिरनेक रूपा ।। (पंचतन्त्र - 1/459)

2. सत्या नृता च परुषा प्रियवादिनी च,
   हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
   नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च,
   वारांगनेव नृपनीतिरनेक रूपा ।। (नीति-शतक -श्लोक सं0 48)

   और भी,

   आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
   दिनस्य पूर्वार्द्ध - परार्द्धभिन्ना, छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्। (पंचतन्त्र -3/40)
   आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वीपुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
   दिनस्य पूर्वार्द्ध - परार्द्धभिन्ना, छायेव मैत्री खल सज्जनानाम्। (नीतिशतक - श्लोक सं0 - 61)

   प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
   प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
   विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
   प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ।। (नीतिशतकम् - श्लोक सं0 - 28)

   तानीन्द्रियाण्यविकलानि, तदेव नाम,
   सा बुद्धिरप्रतिहता, वचनं तदेव।
   अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव -
   बाह्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।। (पंचतन्त्र - 5/25)

...........अगले पृष्ठ पर

पंचतन्त्र में प्रथमतन्त्र में सातवीं कथा में वराहमिहिर की चर्चा है । ये भारतीय गणित, ज्योतिष के सर्वप्राचीन आचार्य हैं । इन्होंने अपने ग्रन्थ पंचसिद्धान्तिका की रचना लगभग 550 ईसवी में की । इनका मृत्युकाल 587 ई0 माना जाता है ।[1] पंचतन्त्र में इनकी चर्चा इस प्रकार हुई है –[2]

यदि शनि रोहिणी का भेदन करता है तो इन्द्र द्वादश वर्ष तक पृथ्वी पर जल की वृष्टि नही करता ।

रोहिणी के शकट का भेदन हो जाने पर पृथ्वी अपने को पापिनी समझने लगती हैं । अतः वह भस्म तथा अस्थि से युक्त होकर कापालिक व्रत को धारण कर लेती है । अधिक क्या कहा जाये शनि, भौम, अथवा चन्द्रमा इनमें से कोई भी यदि रोहिणी के शकट का भेदन करता है तो अनिष्ट के सागर में सम्पूर्ण विश्व विनष्ट हो जाता है ।

चन्द्रमा यदि रोहिणी के शकट में प्रवेश करता है तो लोग शरणहीन हो कर कहीं तो अपने बच्चों को ही मार कर खा जाते हैं और कहीं सूर्य की प्रखर किरणों से अभितप्त अपेय जल को पीने के लिये बाध्य हो जाते हैं ।

पिछले पृष्ठ से –

तानीन्द्रियाण्य विकलानि तदेव नाम्
मा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुष क्षणेन,
सोऽप्यन्य एवं भवतीति विचित्रमेतत् ।। ।नीतिशतकम् – श्लोक सं0 4।।

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – ए0बी0कीथ – अनु0 मंगलदेवशास्त्री: पृष्ठ-654
2. यदि भिन्ते सूर्यसुतो रोहिण्याः शकटमिह लोके ।
द्वादशवर्षाणि तदा नहि वर्षति वासवो भूमौ ।। ।पंचतन्त्र – 1/233।
प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा ।
भस्मास्थिशकलकीर्णा कापालिकमिव व्रतं धत्ते ।। । वही ।/234।
रोहिणी शकटमर्कनन्दनश्चेद्भिनत्ति रूधिरोऽथवा शशी।
किं वदामि तदनिष्ट सागरे सर्वलोकमुपयाति संक्षयम् ।। ।वही – 1/235।

.......अगले पृष्ठपर

उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि वराहमिहिर पंचतन्त्र के बहुत बाद हुये हैं। पंचतन्त्र का सर्वप्रथम पहलवी अनुवाद हुआथा और इसके बाद वाले संस्करण के बहुत पहले पंचतन्त्र का मूल संस्करण विद्यमान था। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वराहमिहिर की जानकारी पंचतन्त्र के मूल संस्करण को नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि पंचतन्त्र के बाद वाले संस्करणों में वराहमिहिर एवं अन्य श्लोक जो परवर्ती ग्रंथो में पाये जाते हैं, निश्चय ही बाद में जोड़े गये होंगे।

॥9॥ वैदेशिक साहित्य में पंचतन्त्र का स्त्रोत

कथाओं ने एक देश से दूसरे देश में मौखिक रूप से प्रवेश बड़ी सरलता से प्राप्त कर लिया। भारतवर्ष में अनेक कथायें अरब, स्पेन, ग्रीक आदि देशों में पहुँच गईं। अनेक देशों में व्यापार हेतु आने जाने वाले व्यापारियों के माध्यम से भी पहुँची। इस प्रकार पूर्व से पश्चिम देशों की ओर जाती हुई इन कथाओं में किंचित् रूप-परिवर्तन भी हुआ। पंचतन्त्र की अनेक कथायें वैदेशिक साहित्य में भी प्राप्त होती हैं। कथाओं का मूल उद्‌गम स्थल भारतवर्ष है। यहीं से कथायें अन्य देशों में बड़ी सरलता से भ्रमण करती रही होंगी। सेण्ट मार्टिन की उस चिड़ियाँ की कथा जिसने आकाश को थामने के लिये अपने डैने फैला देने किन्तु एक पत्ती के अपने ऊपर व्याकुल होकर गिरते ही सेण्ट से शरण माँगने वाली अपनी ओडो ऑफ शैरिटन की कथा स्वयं पंचतन्त्र से ली गई प्रतीत होती है। सम्भवतः भारत से ही कथायें विदेशों में गई होंगी तथा पंचतन्त्र की कथाओं का स्त्रोत भारत ही रहा होगा न कि विदेश। सिन्दबाद की जानी पहचानी कहानी भी भारतीय स्त्रोत पर ही विश्वास प्रकट करती हैं। किताब् एल् सिन्दबाद जिसका फारसी अनुवाद सिन्दिबादनामह्, सीरियाई अनुवाद सिन्दबान

पिछले पृष्ठ से – "रोहिणीशकटमध्य संस्थिते चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः।
क्वापि यान्ति शिशुपाचिताशनाः सूर्यतप्तभिदुरामबुपायिनः ॥
– ॥पंचतन्त्र – 1/236॥

तथा अरेबियन नाइट्स की हस्तलिखित पुस्तक में प्राप्त अरबी भाषा में सात वजीरों की दास्तान, हिब्रू सन्दबार, ग्रीक तथा यूरोपीय कथाओं के एक बड़े समुदाय से काफी मेल खाती है । पंचतन्त्र के समान एक राजा अपने पुत्र को एक बुद्धिमान् व्यक्ति को सुपुर्द कर देता है, जो उस बालक को छः माह में बुद्धिमान बनाने का बीड़ा उठाता है ।

ग्रीक सम्बन्धी तथ्य :-

भारतीय एवं ग्रीस की कथाओं में बहुत समानता है, जिसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता है । कुछ विद्वानों का यह मत है कि कथाओं का उद्गम स्थल ग्रीक है तथा भारतीय पशुकथाओं का जन्म ग्रीक में हुआ था ।

॥1॥ बेवर तथा बेन्फे महोदय के अनुसार कथाओं का उद्गम स्थल ग्रीक है तथा भारतीय पशुकथाओं का जन्म ग्रीक में हुआ था । इनके मतानुसार हेसियड के समय ग्रीक पशु कथा विद्यमान थी । हेसियड को सर्वप्रथम ग्रीक की शिक्षाप्रद कथाओं का जनक माना गया है । इन्हीं के नाम की "वर्क्स आफ डेज" पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है । इनके द्वारा रचित हॉक एण्ड नाइटिंगेल कथा ग्रीक साहित्य में प्राचीनतम नीति-कथा मानी जाती है । इनका काल लगभग आठवीं शती माना गया है । होमर की कथा में भी पशुकथा का रूप दर्शित होता है ।

॥2॥ हेरोडोटस ईसप को एक जन्तुकथाकार के रूप में जानता था ।

॥3॥ बेबरिओज ॥200 ईसवीं॥ तथा फेड्रस ॥20 ईसवी॥ ने स्वयं परवर्ती होने पर भी प्राचीन स्त्रोतों से अपनी कथा सामग्री ग्रहण की है ।

॥4॥ कुछ विद्वान् जन्तुकथाओं की उत्पत्ति को भारत एवं यूनान के मध्यवर्ती देशों में हुई स्वीकार करते हैं, उनके मतानुसार पशुकथाओं की उत्पत्ति न तो भारत में और न तो ग्रीस में हुई ।

‡5‡ प्राचीन ग्रीस के प्रसिद्ध ईसप के नाम से सम्बन्धित प्रारम्भिक पशुकथाओं के सामान्य मूल स्त्रोत से ही पशुकथायें पश्चिम तथा पूर्व दोनों ओर गईं ।

‡6‡ ईसा पूर्व छठी शताब्दी में कोरिन्थियन शैली का एक चित्र कलश, लोमड़ी और कौवे की कथा को बताता है जब कि भारत में हमें लोमड़ी और कौवे की कहानी जातक में मिलती है ।

‡7‡ "डिमोक्रिटोस" उस बाज की कथा को भली भाँति जानता है, जिसने कछुये को गिरा दिया था । यही कथा भारत में आकर दो हंसों द्वारा कछुये को गिराये जाने की कथा में परिणित हो गई । यह कथा पंचतन्त्र में उपलब्ध है ।

‡8‡ "सेनेका" एवं "हेरोन्डास" को पंचतन्त्र में वर्णित लोहे की तराजू चूहों द्वारा खा जाने वाली कथा की जानकारी पहले से ही थी ।

‡9‡ "सोफोक्लिस" के "कामिक्योव" में डेडालस के विषय में कही गई कथा का जो एक परवर्ती जातक में पाई जाती है, भारतीय होने की अपेक्षा ग्रीक होना अधिक प्रमाणिक है ।

‡10‡ सिंह की खाल ओढ़ने वाले गधे की कथा ग्रीस एवं भारत दोनों ही देशों में पाई जाती है । अन्तरमात्र इतना ही है कि ग्रीक कथा में गधा स्वयं एक सिंह की खाल ओढ़ लेता है और वायु द्वारा उस खाल को उड़ा दिये जाने पर उसका भेद खुल जाता है, किन्तु पंचतन्त्र में इस कथा का कुछ दूसरा ही रूप है ।[1]

‡11‡ "फेड्रूस में कर्कश वाणी के कारण स्वभाव का प्रकाशन करने वाले श्रृगाल की कथा के ही समान एक कथा प्राप्त है ।

‡12‡ "फेड्रूस" में भी उन देवों की भी कथा है जिनकी अभिलाषा जलस्त्रोत का पान करने की है । इसी से ही मिलती जुलती एक कथा, जिसमें टिट्टिभ-दम्पति से बदला लेने हेतु उसे पूरा सुखा देना चाहते हैं, पंचतन्त्र में भी मिलती है ।[2]

---

1. पंचतन्त्र - 5/6
2. किसी समुद्र के किनारे एक टिटहरी का जोड़ा निवास करता था । कुछ समय

.... अगले पृष्ठ पर

॥3॥ आर्कीटोचोस को बाज को अपना बच्चा लौटाने हेतु विवश करने वाली लोमड़ी की कथा ज्ञात थी जो पंचतन्त्र की एक कौवे और सर्प की कथा के समान होने पर भी कुछ स्थलों पर इसमें अन्तर भी परिलक्षित होता है।

॥4॥ ॥1180 ईसवी॥ नीगेल ऑफ कैण्टरीबरी का ज्ञान जिसमें पशुओं की तुलना में मनुष्यों की कृतघ्नता का वर्णन है, निश्चित रूप से भारत की देन नहीं कही जा सकती है।

पिछले पृष्ठ से -

बाद अपने प्रसव का समय जानकर टिट्टिटभी ने अपने पति से निर्विघ्न स्थान ढूँढने को कहा, जहाँ पर व अण्डा दे सकती थी। टिट्टिटभी के मना करने पर भी टिट्टिटभ ने अत्यन्त अहंकार युक्त वचनों का प्रयोग करते हुये उससे उसी समुद्र के किनारे ही प्रसव करने के लिये कहा। टिट्टिटभ के अहंकारी वचनों को सुनकर समुद्र ने टिट्टिटभ का परीक्षण करने को सोचा। प्रसव के पश्चात् एक जब टिट्टिटभी अपनी जीविका हेतु निकल गई तो समुद्र ने तरंगों के बहाने से उसके अण्डो को अपहृत कर लिया। लौट कर जब टिट्टिटभी ने प्रसव स्थान को शून्य देखा तो उसने टिट्टिटभ को रो रोकर बहुत फटकारा तथा दो कथायें भी सुनाई। कथाओं को सुनकर टिट्टिटभ ने टिट्टिटभी को धैर्य बँधाते हुये कहा कि मैं अपने बुद्धिबल के द्वारा अपनी चोंच से इस समुद्र का सम्पूर्ण जल सोख जाऊँगा। टिट्टिटभी के मना करने पर भी जब टिट्टिटभ नहीं माना तो उसकी पत्नी ने उसे सलाह दिया कि अपने इष्ट मित्रों को साथ लेकर ही उसे समुद्र के साथ युद्ध करना चाहिये। यह कह कर उसने अपने पति को एक कथा भी सुनाई। पत्नी के सुझाव को मानकर टिट्टिटभ ने बक, सारस तथा मयूर आदि पक्षियों को बुलाकर उनसे कहा, "मित्रों, मेरे अण्डों को बहाकर इस समुद्र ने मेरा अपमान किया है। अतः इसके शोषण का उपाय सोचना आवश्यक है। उन पक्षियों ने आपस में विचार विमर्श के पश्चात् टिट्टिटभ के समक्ष इस कार्य हेतु अपनी असमर्थता प्रकट गरूड़ का नाम प्रस्तावित किया। इसके बाद में सभी पक्षियों ने वैनतेय के पास जाकर उन्हें अपना कष्ट बता दिया। वैनतेय समुद्र को सोखने की बात सोच ही रहा था कि भगवान् नारायण के एक दूत ने आकर कहा कि भगवान् देव कार्य हेतु अमरावती जाने वाले हैं, अतः शीघ्र चलिये। इस प्रस्ताव को वैनतेय ने अस्वीकार करते हुये दूत से साभिमान कह दिया कि जाकर भगवान् नारायण से कह दो कि वे मेरे

.... अगले पृष्ठपर

उपर्युक्त विवेचन से कतिपय तथ्य सामने आते हैं । एक तो पंचतन्त्र की कथाओं का भारतीय स्त्रोत और दूसरे वैदेशिक स्त्रोत । वास्तव में कथा की उत्-पत्ति विश्वभर में समान रूप से हुई है । उसमें शिक्षात्मक तत्त्व कब से प्रवेश कर गया, यह कहना कठिन है । किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति की आत्मा उस देश का साहित्य है । कथायें भी उस साहित्य का अंग होती हैं । भारतवर्ष चिरकाल से ही अपनी उत्कृष्ट संस्कृति का धनी है । विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में चिरकाल से ही कथाओं के माध्यम से विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान करने की परम्परा रही है ।

विण्टरनित्ज महोदय के अनुसार, "विश्व के अन्य राष्ट्र के पूर्व ही भारत में प्राणिकथा को चिरन्तन रूप देकर उसे ग्रन्थबद्ध कर दिया गया ।[1]

पंचतन्त्र के विषय में सुविख्यात रूसी उपन्यासकार श्री इलिआ एहरनबर्ग ने कहा है कि प्राचीन रूस में पंचतन्त्र "स्टेफनिल एण्ड इचिनालत" के नाम से परि-चित था । मेरी डी० फ्रान्स ने अपनी नीतिकथायें इसी आधार पर लिखी थी, किन्तु उनकी धारणा थी कि उन्हें रोमन कथाओं से ही प्रेरणा प्राप्त हुई थी । ला फॉन्टेन अपनी नीतिकथा के लिये ईसप का ऋण समझते थे, किन्तु उन्हें सम्भवत: पंच-तन्त्र की जानकारी नहीं थी । रूस में यह धारणा थी कि, ये नीतिकथायें ग्रीस में सेण्ट जॉन ऑव उमास्कस द्वारा लिखी गईं हैं ।[2] वास्तव में इन कथाओं को जिन

पिछले पृष्ठ से -

स्थानपर किसी अन्य भृत्य को नियुक्त कर लें । गरूड़ की इन बातों को सुनकर दूत ने कारण पूछा तो उन्होंने टिट्टिभ वृतान्त सुना डाला ।

दूत के मुख से गरूड़ के कुपित होने का समाचार सुनकर भगवान् नारायण ने स्वयं गरूड़ के पास जाकर उनके न आने का कारण जानकर समुद्र से क्रोधपूर्वक कहा, "अरे दुरात्मन्, टिट्टिभ के अण्डों को वापस कर दो, अन्यथा इस बाण से तुमको सुखाकर स्थल बना डालूँगा ।" भगवान् नारायण के डाँटने पर समुद्र ने टिट्टिभ के अंडो को लौटा दिया । टिट्टिभ ने उन अंडो को लेकर अपनी पत्नी को लौटा दिया । .... पंचतन्त्र - 1/12

----- अगले पृष्ठ पर

ग्रन्थों अथवा ग्रन्थकारों से प्रेरणा मिली है उन ग्रन्थों अथवाग्रन्थकारों का स्त्रोत पंचतन्त्र रहा है । इस प्रकार परम्परया उन्हें पंचतन्त्र से ही प्रेरणा प्राप्त हुई है, अत: पंचतन्त्र का स्त्रोत वैदेशिक न होकर भारतीय ही है । इस कथन की पुष्टि का सबल प्रमाण प्रस्तुत है -

एक भारतीय विद्वान ने डा० विण्टरनित्ज से प्रश्न किया, "आप की सम्मति में भारतवर्ष की संसार को मौलिक देने क्या हैं ?"

उत्तर में डा० विण्टरनित्ज ने कहा - "एक वस्तु जिसका नाम मैं तुरंत और बेखटके ले सकता हूँ, वह है पशु-पक्षियों पर डालकर रचा हुआ कहानी - साहित्य, जिसकी देन भारत ने संसार को दी हैं ।"[1]

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि पंचतन्त्र की कथाओं का स्त्रोत भारतीय साहित्य में, भारतीय लोक कथाओं में निहित है । इसके अतिरिक्त अन्य कथायें सम्भवत: लेखक की स्वरचित हैं ।

---

1. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, आमुख, पृष्ठ 5, पंचतन्त्र-अनुवाद [डा० मोती चन्द] राजकमल प्रकाशन, बम्बई ।

पिछले पृष्ठ से -

1. Dr. Winternitz : Geschichte der indischen Literature: III: P.266
2. संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्गम एवं विकास - पृष्ठ सं0 126, डा० प्रभाकर नारायण कवठेकर ।

तृतीय - अध्याय पृ०सं० 103-120

पंचतन्त्र का मूल रूप और रूपांतर

विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र का, जो रूप आज हमारे समक्ष है वास्तव में यह उसका परिवर्द्धित एवं संशोधित रूप ही प्रतीत होता है। असली पंचतंत्र को नष्ट होने से पूर्व ही सीरियन में अनूदित कर लिया गया था। आज वह अनुवाद अनुपलब्ध है, किन्तु उसके अनेक संस्करणों की सहायता से विभिन्न पाश्चात्य विद्वान पंचतंत्र के मूलरूप की कुछ कल्पना करते हैं। जिसमें एडजर्टन एवं हर्टेल का स्तुत्य प्रयास संस्कृत साहित्य कभी नहीं भुला सकता है। इनकी सम्भावनाएं मूल पंचतंत्र के लिये इस प्रकार है। पंचतंत्र के अनेक परिवर्द्धित रूपान्तरों एवं संस्करणों के माध्यम से यह निश्चित पता चलता है कि ये सभी किसी आदर्शभूत एक साहित्यिक ग्रन्थ से निकले हैं पाश्चात्य विद्वान् एडजर्टन महोदय ने पंचतंत्र के विभिन्न रूपान्तरों को जो सम्प्रति उपलब्ध हैं, चार भागों में विभक्त करके पंचतंत्र के मूलरूप तक पहुँचने का प्रयास किया है-

1- (क) तन्त्राख्यायिक

(ख) किसी जैन द्वारा रचित सरलग्रन्थ

(ग) पूर्णभद्र द्वारा निर्मित पंचतंत्र

2- (क) दक्षिणी पंचतंत्र

(ख) नेपाली पंचतंत्र

(ग) हितोपदेश

3- क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी और सोमदेव के कथासरित्सागर में प्रयुक्त पंचतंत्र का पाठ।

4- पहलवी रूपान्तर

एडजर्टन के मतानुसार इस वर्गीकरण को अधोलिखित रेखाचित्र की सहायता से समझा जा सकता है-

इस प्रकार इस वर्गीकरण के द्वारा दोनों पाश्चात्य विद्वानों के कथन में पर्याप्त अंतर प्रतीत होता है, जो अधोलिखित इस प्रकार है-

प्रो0 हर्टेल महोदय ने पंचतन्त्र के रूपान्तरों की 4 धाराओं को स्वीकार न करके केवल 2 ही मुख्य धाराओं को स्वीकार किया है और पुनः इन्हीं से अन्य रूपान्तरों की उत्पत्ति माना है । इसके अनुसार वर्गीकरण निम्नलिखित हैं -
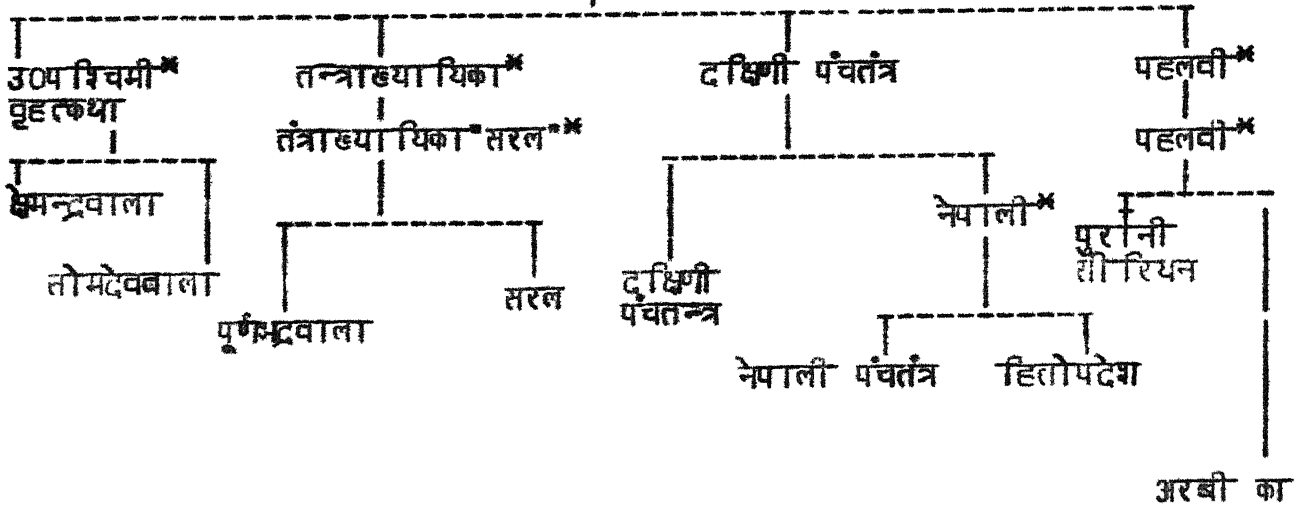
---
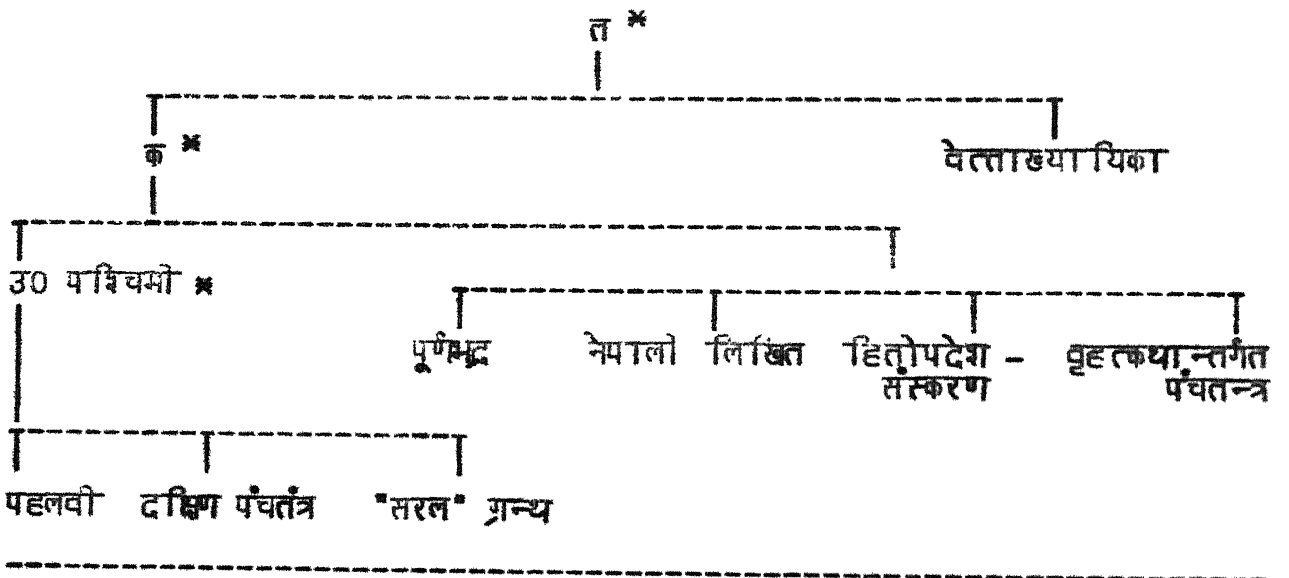
* यह चिन्ह काल्पनिक संस्करण सूचित करता है ।

।1। हर्टैल का विचार है कि एक दूषित आदर्शभूत ग्रन्थ ही सम्पूर्ण परिवर्धित एवं संशोधित रूपान्तरों का मूल है। इसी को सारिणी में त नाम की संज्ञा दी है किन्तु एडजर्टन महोदय इसको मात्र कल्पना ही समझते हैं।

।2। एडजर्टन हर्टैल के इस मत को मात्र कल्पना ही मानते हैं कि तंत्राख्यायिका के अतिरिक्त अन्य समस्त रूपान्तरों का मूलाधार क नामक एक आदर्शभूत ग्रन्थ है। हर्टैल के अनुसार, "कोई पद्य या गद्य खण्ड तभी असली माना जासकता है जब कि तंत्राख्यायिका में और क के एक अंश में मिले।" किन्तु एडजर्टन के मतानुसार कोई भी अंश दो स्वतंत्र धाराओं में मिल जाए और यदि तन्त्राख्यायिका में न भी मिले तो भी हम इस अंश को असली स्वीकार कर लेंगे।

।3। हर्टैल महोदय उत्तर पश्चिमीय एक रूपान्तर को स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि इसी संस्करण के आधार पर दक्षिणी पंचतंत्र, पहलवी पंचतंत्र एवं सरल पंचतंत्र बने हैं परन्तु यह मत वास्तव में उचित नहीं प्रतीत होता है। इसके तुलनात्मक पाठ से यह प्रतीत होता है कि इन दोनों में भेद है और ये पंचतंत्र की तीन स्वतंत्र धाराओं से निकले हैं। इनके मतानुसार सरल पंचतंत्र और तन्त्राख्यायिका में सरल पंचतंत्र और पूर्णभद्रीय पंचतंत्र में जितनी समानता हो सकती हो उसकी अपेक्षा पहलवी और सरल पंचतंत्र में अधिक समानता होनी चाहिये। इसी प्रकार हितोपदेश और दक्षिणी पंचतंत्र में जितनी समानता हो उसकी अपेक्षा पूर्णभद्रीय पंचतंत्र और हितोपदेश में अधिक समानता होनी चाहिये परन्तु ऐसा नहीं दिखाई देता है। इस प्रकार हर्टैल महोदय का मत अनुचित ही प्रतीत होता है।

पंचतंत्र के स्वरूप को प्रस्तुत करने वाले विभिन्न रूपान्तरों के विषयवस्तु का विवेचन अधोलिखित इस प्रकार है-

1- <u>तन्त्राख्यायिका</u>-

तन्त्राख्यायिका[1] पंचतंत्र का ही एकरूप है। हर्टैल महोदय तन्त्राख्यायिका को ही मूल ग्रन्थ के काफी समीप होने के कारण उसे प्रथम स्थान प्रदान करते हैं। सम्प्रति

1- Edited by J. Hertel, Berlin, 1910 Trans. Leepzige 1909

जो ग्रन्थ हमारे समक्ष है वह तन्त्राख्यायिका के ही अत्यधिक समीप है। वे इस ग्रन्थ की रचना दो सौ ईसा पूर्व मानते हैं। हर्टैल महोदय ने तन्त्राख्यायिका की एक हस्तलिखित प्रति कश्मीर से प्राप्त की जिसके दो उपरूप मिलते हैं। इन दोनों उपरूपों को हर्टैल महोदय ने अ तथा ब नाम की संज्ञा दी है। हर्टैल अ को अधिक मौलिक मानते हैं जबकि एजर्टेन महोदय ब को। हर्टैल महोदय का विश्वास है कि तन्त्राख्यायिका ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो पंचतंत्र के अत्यधिक समीप है। कथाओं की वृद्धि एवं विस्तार के ही कारण तन्त्राख्यायिका एवं पंचतंत्र में भेद हो गया है। कथाओं को छोड़ने तथा कम करने का प्रयास कुछ कम ही हुआ है। इसमें नीलवर्ण श्रृगाल की कथा ‡1/8‡एक सियार द्वारा एकऊँट तथा सिंह को मूर्ख बनाए जाने की कथा ‡1/13‡ सोमलिकजुलाहे की कथा ‡2/8‡, राजा शिवि की कथा ‡3/7‡ वृद्ध हंस की कथा ‡3X11‡ प्याज के चोर को दण्ड देने की कथा ‡4/1‡ कुटिल कुट्टिनी ‡3/5‡ तथा बनावटी सिपाही की कथा स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है और ब पाठ में सियार और होशियार लोमड़ी की कथा ‡3/11‡ और बनावटी सिपाही ‡4/3‡ की कथाएं भी बाद की हैं। इनमें से कुछ कहानियों में लुङ् लकार का पुनरुक्त प्रयोग प्राप्त होता है तथा इसी के द्वारा इनका प्रक्षिप्त होना स्पष्ट होता है। हर्टैल ब पाठ का मूल क स्रोत के प्रयोग से परिप्लावित होना मानते हैं। इसी से अ पाठ के मूल के अतिरिक्त अन्य समस्त पाठ निकले हैं। तन्त्राख्यायिका की भाषा में परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होने पर भी तथा ग्रन्थ की मौलिकता होने पर भी मूल क स्रोत को स्थापित करने के उनके प्रमाणों को मान लेना असम्भव ही नहीं वरन् उस पाठ के सर्वश्रेष्ठ होने में भी पूर्ण संदेह प्रतीत होता है। अ पाठ में कतिपय गद्य लययुक्त हैंकिन्तु अन्य पाठों में इस प्रकार के पाठों की अनुपलब्धता है। अतः इस प्रकार तंत्राख्यायिका ही मूलग्रन्थ के समीपतम है। हर्टैल महोदय का यह कथन अनुचित ही नहीं वरन् ठोस एवं सही तर्क न होने के कारण निराधार प्रतीत होता है।

ब– सरल ग्रन्थ–

यह पाठ एक जैन लेखक द्वारा पश्चिमी भारत में किसी [illegible] में रचा गया था। इसकी रूपरेखा एवं विषयवस्तु दोनों में ही परिवर्तन पाया जाता है। ऐसा

प्रतीत होता है कि इस सरल पंचतंत्र की रचना पूर्णभद्र ‖ 1199‖ से पूर्व एवं रुद्रभट्ट के पश्चात् की है। सरल पंचतंत्र का पाठ तन्त्राख्यायिका के पाठसे काफी मिलता-जुलता है। इसमें माघ की रचनाओं के कतिपय पद्य मिलते हैं। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इसका अत्यधिक परिवर्द्धित रूप ही हमारे समक्ष आता है।पाँचों तन्त्रों का आकार एक जैसा होने के साथ ही साथ मूल पंचतंत्र के तृतीय तंत्र की अनेक कथाएं चतुर्थ तन्त्र में कतिपय नवीन परिवर्द्धनोंके आधार पर बढ़ी हुई मिलती हैं। स्वरूप की दृष्टि से तृतीय एवं पंचम तन्त्र में भी अत्याधिक परिवर्तन आया है। पंचम तन्त्र की क्षपणकों को मारनेवाली नाई की कथा को प्रमुख बनाकर नेवले वाली नवीन कथा बाद में जोड़ी गई सी प्रतीतहोती है। कतिपय नयी कथाएं प्रथमतंत्र में जोड़ी गई हैं। बाद की जोड़ी हुई कहानियों में सात लोक-कथाएं भी जोड़ी गई हैं। प्रथम तन्त्र की पंचम कथा अत्यन्त रोचक है। इसका निष्पादन किसी जैन द्वारा हुआ भी संभव हो सकता है। कारण यह है कि इस संस्करण में ब्राह्मण ऋषि मुनियों के स्थान पर जैन क्षपणकों के उल्लेख एवं क्षपणक , दिगम्बर, नग्नक, व्यन्तर एवं धर्मदेशना जैसे शब्दों का प्रयोग अधिक है। लेखक को एक अच्छी रचना रचने में कुशल माना जा सकता है कि इसमें मूल पंचतंत्र के लगभग एक तिहाई श्लोक आ गए हैं। नीलवर्ण सियार, सिंह को मूर्ख बनाने की कथा एवं सोमिलक जुलाहे की कथा पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इस सरल पंचतंत्र का रूप तन्त्राख्यायिका से मिलता-जुलता होगा।

3- पूर्णभद्र द्वारा निष्पादित पंचतंत्र-

1179 ई0 में एक जैन मुनि पूर्णभद्र द्वारा रचित यह पंचाख्यानक नामक पंचतंत्र का दूसरा जैन संस्करण है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार तन्त्राख्यायिका एवं सरल पंचतंत्र को सामने रखकर पूर्णभद्र ने पंचाख्यानक की रचना की है। पूर्णभद्र ने पंचाख्यानक के अंत में स्वरचित ग्रन्थ के विषय में जो कुछ भी निवेदन किया है वह

दृष्टव्य है।[1] अन्य कथनों के माध्यमों से भी प्रस्तुत ग्रन्थ के ऊपर प्रकाश पड़ता है। पूर्णभद्र के काल तक विष्णुशर्मा का पंचतंत्र अशुद्ध अवस्था में परिणत हो चुकने के कारण उसको संशोधित करना आवश्यक था। यह संशुद्धि पूर्णभद्र द्वारा की गई। इस कार्य को पूर्णभद्र ने अत्यन्त सावधानी के साथ प्रत्येक अक्षर, पद-वाक्य, कथा एवं श्लोक को ध्यान में रखते हुए किया। इसके द्वारा एक और बात का भी संकेत मिलता है कि मध्ययुग में पंचतंत्र के अन्य रूपान्तर विभिन्न धर्मों के सम्प्रदायों में प्रचलित होने के कारण उसमें अनेक पाठ एवं अशुद्धियाँ प्राप्त होने लगी थीं। अंत में पूर्णभद्र ने स्वयं इस महान् कार्य को करके अपनी नम्रता का परिचय देते हुए कहा है कि यह ग्रन्थ मानों जीर्णोद्धार सा है।

1- श्री सोम मंत्रिवचनेन विशीर्णवर्णम्
आलोक्य शास्त्रमखिलं खलु पंचतंत्रम्।
श्री पूर्णभद्रगुरुणा। गुरुणादरेण
संशोधितं नृपति-नीति-विवेचनाय ।। 2 ।।
प्रत्यक्षरंप्रतिपदं प्रतिवाक्यं प्रतिकथं प्रतिश्लोकम्।
श्री पूर्णभद्र सूरविशोधयामास शास्त्र मिदम्।। 3 ।।
यदभूत् किंचित् क्वचिदपि मया नेह सम्यक् प्रयुक्तम्।
तत् क्षन्तव्यं निपुणधिषणैः क्षान्तिमन्तो हि सन्ति ।
श्री श्रीचन्द्रप्रभुपरिवृढः पातु मां पातकेभ्यो
यस्याद्यापि भ्रमति भुवने कीर्तिगंगाप्रवाहः।। 4।।
ख्यातै वचः क्वचन यत् समयोपयोगि
प्रोक्तं समस्तविदुषां तददूषणीयम् ।
सोमस्य मन्मथविलास विशेषकस्य
किं नाम लांछनमृगः कुरुते न लक्ष्मीम्।। 5 ।।
प्रत्यन्तरं न पुनरस्त्यमुना क्रमेण
क्वापि किंचन जगत्यपि निश्चयो मे ।
किन्त्वध सत्क विपदाक्षतबीमसुष्टिः
सिक्तामया मति जलेन जगाम वृद्धिम्। 6 ।।
चत्वारीह सहस्राणि तत्परं षट्शतानि च।
ग्रन्थस्यास्य मया मानं गणितं श्लोक संख्यया।। 7 ।।
शरबाणतरणि वर्षे रविकर वदि फाल्गुने तृतीयायाम्।
जीर्णोद्धारश्चासौ प्रतिष्ठितोऽधिष्ठितो विबुधैः ।। 8 ।।

इस ग्रन्थ के रूपान्तर में इक्कीस नई कथाएं जोड़ दी गई हैं। इसमें पशुओं की कृतज्ञता की कथा एवं मनुष्य की कृतघ्नता की कथा, कबूतर एवं शिकारी की कथा महाभारत की कथाओं पर आधारित प्रतीत होती हैं। कथा-लेखन में पूर्णभद्र को विशेष कुशलता प्राप्त थी। पंचाख्यानक की भाषा में रूखापन होने का एकमात्र कारण उसमें गुजराती एवं प्राकृत दोनों शब्दों का प्रयोग हैं। "मेघविजय" एवं "पंचाख्यानोद्धार" नामक रूपान्तर भी इसी से निकले हैं।

4- दक्षिणी पंचतन्त्र-

यह पंचतंत्र दक्षिण भारत में प्रचलित था तथा पाँच रूपों में उपलब्ध होता है। इन पाँचों में अत्यधिक संक्षिप्त में वर्णन प्राप्त होता है। एडजर्टन के अनुसार इसमें असली पंचतंत्र के गद्य का तीन चौथाई तथा पद्यों का लगभग दो तिहाई भाग सुरक्षित है। संभव है कियह पंचतंत्र कालिदासके पश्चात् का हो क्योंकि कालिदास का एक पद्य इसमें आया है। कालिदास के स्थितिकाल के संबंध में पाश्चात्य तथा एतद्देशीय विद्वानों के विभिन्न मत हैं। सर विलियम मानियर कालिदास को ईसा की दूसरी से चौथी शताब्दी के मध्य ठहराते हैं। डा०एस०के० डे महोदय भी इनका स्थितिकाल गुप्तकाल ही मानते हैं। कुछ विद्वानों ने ईसा की छठी शताब्दी भी माना है। श्री एम०पी० चटर्जी डा० भाऊदाजी, आर कृष्णमाचारियर भी इसी मत के अनुयायी हैं। इतना ही नहीं कुछ अन्य मत भी हैं, डा० मैक्डानल ने वत्सभट्टि (जिनका काल 473 ई० है) तथा कालिदास की भाषा में समानता परिलक्षित करके इनका समय पाँचवी शताब्दी माना है। डा० हार्नले आदि विद्वानों के अनुसार कालिदास का समय पाँचवी या छठी शताब्दी है क्योंकि कालिदास गुप्तवंशीय शासकों के आभारी प्रतीत होते हैं। डा० राजबली पाण्डेय, प्रो०जी०सी० झाला, प्रो० चट्टोपाध्याय , राय बहादुर चिन्तामणि आदिविद्वानों ने कालिदास को ईसापूर्व प्रथम शताब्दी का स्वीकार किया है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कालिदास का निश्चित समय नहीं ज्ञात चलता वरन् उनका स्थितिकाल अभी तक विवादास्पद प्रतीत होता है।

जैनों द्वारा निष्पादित संस्करणों की अपेक्षा इसमें मौलिक अंश अधिक है। इसका मूल पाँच सौ ई0 से अधिक नहीं हो सकता है। इस संस्करण में प्राप्त अनेक प्रक्षिप्त कथाएं जैसे ग्वालिन तथा उसके प्रेमियों की कथा अमौलिक है। दक्षिणी पंचतंत्र का आधार वह असली ग्रन्थ है जो हितोपदेश एवं नेपाली पंचतंत्र का आधार है। इस पंचतंत्र का एक अधिक विस्तृत रूपान्तर अंशतः तमिल स्रोतों पर आधारित है तथा इसमें कुल सत्रह कहानियाँ हैं। का ॥1726॥ मुख्यतः इसी से लिया गया है।[1]

5- नेपाली पंचतन्त्र-

इस पंचतंत्र की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। एक हस्तलिखित प्रति में तो मात्र पद्य ही हैं इसी में प्राप्त एक गद्यखण्ड है वह मूल से लिया हुआ प्रतीत होता है। अन्य हस्तलिखित प्रतियों में पद्य के साथ ही साथ संस्कृत या नेपाली भाषा में गद्य उपलब्ध है। रचयिता ने दूसरे या तीसरे तन्त्र का क्रम परिवर्तन कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि हितोपदेश एवं यह रूपान्तर दोनों ही एक ही मूल से निकले हैं। इसके रचनाकाल को कोई निश्चित ठोस प्रमाण नहीं है तथापि कालिदास का पद्य इसमें सुरक्षित रहने के कारण यह कहा जा सकता है कि इसकी रचना कालिदास के बाद हुई होगी ।

6- हितोपदेश-

हितोपदेश भी पंचतंत्र से निकला हुआ एक संस्करण है। लेखक ने इसमें अपना नाम नारायण दिया है[2] तथा बंगाल के राजा धवलचन्द्र का आश्रित बताया है। लेखक ने

1-

2- प्रालेयाद्रेः सुतायाः प्रणयनिवसतिश्चन्द्रमौलिः स यावत्
धावल्लक्ष्मीर्मुरारेर्जलद इव तडिन्मानसे विस्फुरन्ती।
यावत् स्वर्णाचलो यं दवदहनसमो यस्य सूर्यः स्फुलिंग
स्तावन्नारायणेन प्रचरतु रचितः संग्रहो यं कथानाम्-- हितोपदेश 4/132
अर्थात्- जब तक चन्द्रशेखर महादेव जी हिमाचल की कन्या पार्वती जी के साथ स्नेहयुक्त बसें, जब तक मेघ में बिजली के समान श्री विष्णु भगवान के हृदय में लक्ष्मी निवास करें

धूर्णटि, चन्द्रार्ध, चूड़ामणि एवं चन्द्रमौलि को प्रणाम किया है। हितोपदेश का प्रथमभाग शिव के अनुग्रह की कामना करने वाले आशीर्वचन से समाप्त होता है।[1] उपर्युक्त दोनों ही कारणों से सिद्ध होता है कि लेखक शैव मतानुयायी था।

हितोपदेश के लेखक ने स्वयं इस ग्रन्थ की भूमिका के नवें पद्य में स्वयं स्वीकार किया है कि लेखक द्वारा पंचतंत्र तथा कोई अन्य पुस्तक का प्रयोग हितोपदेश को रचने में किया गया है। अन्य ग्रन्थ का नाम अज्ञात है। इस ग्रन्थ में कामन्दकीय नीतिशास्त्र, माघ, मनुस्मृतिएवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनेक पद्यों का विवरण प्राप्त होता है।

काल की दृष्टि से हितोपदेश की रचना चौदहवीं शताब्दी की प्रतीत होती है। यह भीसंभव है कि इसकी रचना कामन्दकीय नीतिशास्त्र एवं माघ के बाद की हो क्योंकि इन दोनों ग्रन्थों के कुछ पद्य इसमें मिलते हैं। "कपट मित्रम्" नामक कथा में प्रयुक्त "भट्टारकवार" शब्द जो हिन्दी में रविवार का सूचक है हितोपदेश की रचना इससे नौ सौ ईस्वी केपश्चात् की मालूम पड़ती है। इसके पूर्व इस शब्द का प्रयोग उपलब्ध नहीं है। इतना ही नहीं यह ग्रन्थ शुक सप्तति एवं वेताल पंचविंशतिका का भी ऋणी है। जिसमें अपनी चतुरता से पुत्र को दण्डनायक से एवम् इन दोनों को अपने पति से बचाया। यह कथा शुक सप्तति से तथा वीरवर की कथा वेतालपंचविंशतिका से सम्भवत: ली गई है। नीति सम्बन्धी उपजीव्य के रूप में कामन्दकीय नीतिसार को माना जा सकता है। उपरोक्त तथ्यों के अनुसार हितोपदेश का रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी के आसपास का ही ठहरता है।

1- मित्रं प्राप्नुत सज्जना जनपदैर्लक्ष्मी: समासाद्यतां
भूपाला: परिपालयन्तु वसुधां शश्वत्स्वधर्मे स्थिता:
आस्तां मानसतुष्टये सुकृतिनां नीतिर्नवोढेव व:
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवांश्चन्द्रार्ध चूड़ामणि:।।- वही, 1/216

अर्थात्- सज्जन लोग मित्र को पावें नगर निवासी लक्ष्मी को पावें, राजा लोग सदा अपने धर्म में रहकर पृथ्वी का रक्षण करें, आपको नीति नवयौवन स्त्री के समान पण्डितों के चित्र को प्रसन्न करे और भगवान महादेव जी आपका कल्याण करें।

हितोपदेश भी पंचतंत्र की ही भाँति एक नीति का ज्ञान देने वाला ग्रन्थ है। चूँकि यह कोमलमति के बालकों को शिक्षा प्रदान करने हेतु रचा गया था इसीलिये इसमें सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। जो पद्य लेखक द्वारा स्वयं रचे गए हैं उनमें तो सरलता एवं प्रवाह है किन्तु जो श्लोक रचयिता ने किसी अन्य ग्रन्थ से ग्रहण किया है वे कुछ कठिन हैं। हितोपदेश को पढ़ने से ऐसा भी प्रतीत होता है कि मूल पंचतंत्र का अनुसरण लेखक करना चाहता है। हितोपदेश में तिङन्त क्रियापदों के स्थान पर कृदन्तीय क्रियापद एवं कर्तरि प्रयोग के स्थान पर कर्मणि प्रयोग का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है।

हितोपदेश में अनेक स्थलों पर रचयिता ने असामान्य वाक्य रचना के अप्रयोग एवं कर्मवाच्य या भाववाच्य के प्रति अधिक उदारता का परिचय दिया है। इसके कारण अनेक स्थलों पर अरोचकता भी उत्पन्न हो गई है। यद्यपि ग्रन्थ की उपादेयता देखते हुए यह क्षम्य है यथा-

जिनके साथ मीठे वचन बोले जा चुके हैं और मिथ्या उपचारों से जिनको वश में कर लिया गया है, जो आशायुक्त और श्रद्धावान हैं ऐसे याचकों को ठगना क्या उचित है।[1]

कुछ स्थल ऐसे भी जहाँ पर विशेष रूप से सुन्दर नीति-वचनों की रचना का भी दर्शन मिलता है-

मृत्यु के विचार से ही मनुष्य को जो दुख होता है, उसके अनुमान मात्र से अपने शत्रु को भी उससे रक्षा करनी चाहिये।[2]

- -

1- संलापितानां मधुरैर्वचोभि-
मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम्।
आशावतां श्रद्दधतां च लोके
किमर्थिनां वंचयितव्यमस्ति ?- हितोपदेश

2- मर्त्तव्यमिति यद् दुखं पुरुषस्योपजायते।
शक्यस्तेनानुमानेन परोऽपि परिरक्षितुम्।। वही

और भी-

दुर्जन मनुष्य धर्मशास्त्र पढ़ता है या वेदाध्ययन करता है इसलिये उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये। इस विषय में तो स्वभाव ही सबसे बढ़कर है जैसे गाय का दूध स्वभाव से ही मधुर होता है।[1]

पंचतंत्र के प्रथमएवं द्वितीय तंत्र के क्रम-विपर्यय का मूलकारण लेखक द्वारा हितोपदेश में कलात्मकता उत्पन्न करना प्रतीत होता है। हितोपदेश के तृतीय एवं चतुर्थ भाग को संधि एवं विग्रह दो भागों में विभक्त कियाहै तथा कतिपय नवीन कथाएं भी जोड़ दी हैं पंचतंत्र के पंचम तंत्र का पूर्णरपेण परित्याग कर दिया गया है। चतुर्थ भाग अर्थात् संधि में एक नवीन कथा का समावेश कर दिया गया है। पंचतंत्र की प्रथम व तृतीय तंत्र की अनेक कथाएं इसी चतुर्थ अध्याय में जोड़ी गई है। इस प्रकार से पंचतंत्र के गद्य का 2/5 भाग तथा पद्यों का 1/3 भाग हितोपदेश में प्राप्त होता है। अन्य कथाएं,गद्य तथा पद्य का भाग कहाँ से लिया गया है इसका उल्लेख हितोपदेश में नहीं है और यह अस्पष्ट भी है तथापि इतना स्पष्ट है कि पंचतंत्र की कथाओं से ली गई कथाओं के अतिरिक्त सत्रह अन्य कथाओं के उपजीव्य की विशेष जानकारी नहीं है। इन सत्रह कथाओं में मात्र दो हीकथाएं ऐसी हैं जिनसे आचार की शिक्षा प्राप्त होती है। शेष पन्द्रह कथाओं में से सात जीव-जन्तुओं से संबंधित कथाएँहैं। पाँच प्रेम से सम्बन्धित तथा तीन वीर्यकर्म से सम्बन्धित हैं। चूहे की कथा जो क्रमशः बिल्ली कुत्ता तथाचूहा बन गया तथाऋषि को ही खाने दौड़ा जिसके फलस्वरूप उसे पुनः चूहा बनना पड़ा, सम्भवतः यह कथा महाभारत से गृहीत है। महाभारत की कुत्ते की कथा को ही संशोधित करके हितोपदेश में लिखा गया है। एक स्त्री की कथा 2/6 जो दण्डनायक के पुत्र के साथ गलत कार्य करती थी

1- न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः।। -हितोपदेश

इसमें अनेक पद्यों का एक ही स्थान पर समावेश करने के कारण दोष उत्पन्न हो गया है। कहीं-कहीं कठिन क्रिया रूपों एवं कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के अधिक प्रयोग से भाषा अरोचक हो गई है हितोपदेश का प्रचार मात्र बंगाल में ही नहीं अपितु संपूर्ण भारत में हुआ। इतना ही नहीं अपितु इसका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी हुआ। हितोपदेश ने पंचतंत्र के काफी स्वरूप को अपने अन्दर निहित कर रखा है। हितोपदेश के गद्यों में पंचतंत्र के पद्यों की अपेक्षा अधिक सरलता है। इसकी सरसता एवं सरलता का आभास इसमें वर्णित कुछ श्लोकों से हो जाता है।

पण्डित को पराये उपकार के लिए अपना धन एवं प्राणों को भी छोड़ देना चाहिये क्योंकि विनाश तो अवश्य होगा, इसलिये अच्छे पुरुषों के लिये प्राण त्यागना अच्छा है।[1]

दुष्ट स्त्री धूर्त मित्र, उत्तर देने वाला सेवक, सर्प वाले घर में रहना मानों साक्षात् मृत्यु ही है, इसमें सन्देह नहीं है।[2]

7- उत्तर-पश्चिमीय रूपान्तर-

सम्भवतः पंचतंत्र के उत्तर-पश्चिमीय रूपान्तर का प्रयोग गुणाढ्य की बृहत्कथा में नहीं होगा। किन्तु पंचतंत्र का यह रूपान्तर बृहत्कथामंजरी तथा कथासरित्सागर में आया हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों को जिन लेखकों ने प्रणीत किया है उनके सम्मुख पंचतंत्र मूल आदर्श के एक भाग के रूप में उपलब्ध था। जिसे रचयिताओं ने अपनी कथाओं का आधार बनाया था। क्षेमेन्द्र ने तंत्राख्यायिका के ब रूप का भी प्रयोग किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस रूपान्तर से उन्होंने पाँच प्रक्षिप्त कहानियाँ

1- धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति ।। 1/44।। हितोपदेश

2- दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः।। 3/12।।- वही

ग्रहण किया था। सम्भवतः क्रमबद्ध योजना भी वहीं से ली गई थी। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी अत्यन्त संक्षिप्त है जो उसके महत्त्व को घटा देती है। इसकी अपेक्षा सोमदेव का वर्णन प्रभावोत्पादक है। इसका कारण यह है कि सोमदेव ने स्वेच्छा से पंचतंत्र की अनेक असली कथाओं को जोड़ दिया है। अधिक तो नहीं किन्तु पंचतंत्र का किंचित् रूप दोनों ग्रन्थों में दिखाई देता है।

8- पहलवी रूपान्तर-

पाँच सौ पचास ई0 में खुशरो अनोशेखाँ के शासनकालमें हकीम बुर्जोई के प्रयास से पंचतंत्र का पहलवी रूपान्तर प्रस्तुत हुआ। यह रूपान्तर जीवकथा साहित्य हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण था।[1] एक संस्करण का नाम करटक[2] एवं दूसरे का नामदमनक[3] था। ये दोनों ही पंचतंत्र के पथम तंत्र के दो सियारों के नाम हैं। तन्त्राख्यायिका को देखने से पता चलता है कि यह रूपान्तर अनुपलब्ध है। पाँच सौ सत्तर ई0 में बूद नामक एक विद्वान द्वारा इस पहलवी रूपान्तर का अनुवाद सारियन भाषा में किया गया। सात सौ पचास ई0 के आसपास अब्दुल्ला इब्नअल-मोकफ्फा ने इसकाअनुवाद अरबी भाषा में किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं अनुवादों की सहायतासे पंचतंत्र के पश्चिमी रूपान्तर निकले। अरबी रूपान्तर का विस्तार पहलवी मूल के आधार पर किया गया। कलिलह दिमनह जो करटक एवं दमनक का रूपान्तरण है, अरबी का नाम है। यह अरबी रूपान्तर पाश्चात्य रूपान्तरों के उपजीव्य के रूप में होने के कारण एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस रूपान्तर में ही पंचतंत्र के समान पाँच भागों का होना प्रतीत होता है। इतना ही नहीं वरन् यह भी प्रतीत होता है कि उसमें पाच या आठ अन्य भाग भी थे जो कि अन्य स्रोतों से लिये गए थे।संभव है कि तीन महाभारत से लिये गए है, एक किसी कूपगत मनुष्य की कहानी तथा एक सिंह और सियार की कथा है जो बौद्ध कथा प्रतीत होती है। एक कृतज्ञ पशु एवं अकृतज्ञ मनुष्य की कथा, चार मित्रों

1- हर्टेल, दास पंचतंत्र (1914)
2-3- ये दोनों नामपंचतंत्र के प्रथम तंत्र के दो श्रृगालों करटकव दमनक के रूपान्तर हैं।

की कथा चूहों के राजा और उसके मंत्री की कहानी भारतीय भावना से ओतप्रोत है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इन रूपान्तरों का पंचतंत्र के मूल रूप को प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण स्थान है ।

विभिन्न भाषाओं में अनुवाद-

पंचतंत्र का अनेक भाषाओं में अनुवाद किया गया। सबसे पहला प्रयास (531-79) में खुसरो अनोशेखाँ के आश्रित हकीम बुर्जोई ने किया था।[1] यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय होने पर भी आज अप्राप्त है किन्तु 570 ई0 तक में बूद द्वारा इसकाअनुवाद सीरियन में कर लिया गयाथा। इसके पश्चात् 750 ई0 के आसपास अब्दुल इब्नअल मोकफ्फा ने इसका एकअरबी रूपान्तर किया। इसी रूपान्तर से पंचतंत्र के पश्चिमी रूपान्तर निकले हैं।

पंचतंत्र का प्रभाव सिन्दबाद की कहानियों पर भी पड़ा। अरबी ऐतिहासिक मसूदी नेकिताब एल सिन्दबाद की भारतीय उत्पत्ति बताई है। इसी पुस्तक का फारसी सिन्दिबादनामह, सीरियाई सिन्दबान, अरेबियन नाइट्स, सात वजीरों की दास्तान हिब्रू सन्दबाद, ग्रीक Syntipas और यूरोपीय कथाओं के बहुत बड़े समुदाय से जुड़ी है। इस पुस्तक की योजना पंचतंत्र से ली गई है।

अरबी रूपान्तर ~~एक~~ एक नया सीरियाई अनुवाद दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग हुआ ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में Seth के पुत्र Siemon का ग्रीक रूपान्तर हुआ जिसने Giulio Nuti के 1583 ई0 के एक इटैलियन रूपान्तर को, दो लैटिन और एक जर्मन रूपान्तरों को तथा अनेक स्लाव (Slav) अनुवादों को जन्म दिया।

1- Hertel - Das Panchtantra (1914); ZDMG, lxxii, 65 ff; 95 ff; lxxv 129 ff

लगभग 1100 ई० में Rabbi Joel द्वारा किया गया हिब्रू रूपान्तर का विशेष महत्व है, 1263 और 1278 ई० के मध्य जॉन आफ कैपुआ ने Liber Kelilacet, Dimnae, Dirpturium Vitae humanae की रचना की, जिसके दो मुद्रित संस्करण 1480 ई० में प्रकाशित हुए। Anthonius Von Pfarr द्वारा हस्तलिखित पोथी से उसका जर्मन अनुवाद Das buch der byspel deralten wysen नाम से किया गया, यह 1485 ई० के बाद बार-बार छपता रहा। जर्मन साहित्य का आइसलैण्डिक और डच में भी अनुवाद किया गया। इसी पर आधारित एक स्पेनिश रूपान्तर 1493 ई० में और इटेलियन रूपान्तर 1546 ई० में Agnolo Firenzuola द्वारा प्रकाशित हुआ। इसी का 1556 ई० में फ्रेंच अनुवाद किया गया। 1552 ई० में प्रकाशित इटेलियन संस्करण के प्रथम भाग का सर टॉमस नार्थ ने Morall Philosophie of Doni के नाम से 1570 ई० में अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया।[1]

1152 अथवा 1121 ई० में अबुल-मआली नसरल्ला इब्न मोहम्मद इब्न अब्दुल-हमीद द्वारा इसका अरबी में अनुवाद किया गया। पूर्वी भाषाओं में भी अनेक अनुवाद किये गए। इसका अनुवाद फिर शीघ्र ही अंग्रेजी, जर्मन और स्वीडिश भाषाओं में किया गया। इतना ही नहीं 1512 एवं 1520 ई० के मध्य फारसीमूल का अनुवाद अली बिन सालिह ने तुर्की भाषा में किया एवं उसका अनुवाद Galland और Cardonne ने फ्रेन्च भाषा में किया। इस फ्रेन्च रूपान्तर का अनुवाद जर्मन, डच एवं हंगेरियन भाषा में भी हुआ।

13वीं शताब्दी में Jacob ben Eleazer द्वारा किया गया हिब्रू रूपान्तर केवल अन्शतः सुरक्षित है। 1251 के लगभग Liber de dina et Kalika पुस्तक तैयार की गई। बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में इटेलियन Baldo ने अपनी पुस्तक Novus Esopus के लिये किसी रूपान्तर का प्रयोग किया था। ला

1- Some Problems of Indian Literature by M. Winternitz

फान्टेन 1678 ई0 में प्रकाशित अपनी पुस्तक Fables के द्वितीय संस्करण में यह स्पष्टतया कहता है कि उसकी नवीन सामग्री का अधिकांश भाग भारतीय महात्मा पिल्पे। Pilpay। से गृहीत है।

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि पंचतंत्र की उपदेशात्मक कथाओं ने पाश्चात्य देशों में प्रवेश कर अनेक भाषाओं को प्रभावित किया। संलग्न सारिणी के द्वारा पंचतंत्र का जिन भाषाओं में अनुवाद हुआ इसका पता चल सकता है।[1]

इन रूपान्तरों को देखने से पता चलता है कि इनमें आपस में पर्याप्त अन्तर है। पंचतंत्र के विभिन्न तंत्रों एवं कथाओं में भी क्रम विपर्यय दृष्टिगोचर होता है। तंत्राख्यायिका में मात्र चार तंत्र ही उपलब्ध हैं। पाश्चात्य विद्वान हर्टेल के अनुसार यह ग्रन्थ मूल पंचतंत्र के काफी निकट है तथापि यह ग्रन्थ भी पंचतंत्र के मूलरूप को पूर्णरूप से व्यक्त नहीं करता है। तंत्राख्यायिका नामक ग्रन्थ के अंतर्गत पंचतंत्र की वास्तविक कथाओं को रखा है। यह हर्टेल महोदय का मत उचित नहीं प्रतीत होता है। विभिन्न रूपान्तरों की कथाओं की विषयवस्तु में भी साम्य एवं वैषम्य प्रतीत होता है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल पंचतंत्र की मूल सामग्री के साथ-साथ विभिन्न रूपान्तरों में अनेक कथाएं समयानुसार कटाई व बढ़ाई गई हैं। आज पंचतंत्र के नाम से प्रसिद्ध अनेक ग्रन्थों में जो कथाएं प्राप्त होती हैं वे अनेक विभिन्न रूपान्तरों में किसी में प्रत्यक्ष एवं किसी में परोक्ष रूप से वास्तविक मानी जाती हैं। इन समस्त विभिन्नताओं के आधार पर मूल पंचतंत्र का बिल्कुल सही रूप सामने रखना असम्भव सा प्रतीत होता है। तथापि उपर्युक्त रूपान्तरों की सहायता से पंचतंत्र के मूलरूप को स्पष्ट करने का विभिन्न विद्वानों ने पूर्णरूपेण प्रयास किया है।

====

1- द्रष्टव्य-संस्कृत साहित्य का इतिहास- प्रो0 हंसराज अग्रवाल- 262-269

पंचतन्त्र का पश्चिम में प्रवेश सूचित करने वाली सारिणी
(समस्त नामों की संख्या 32)
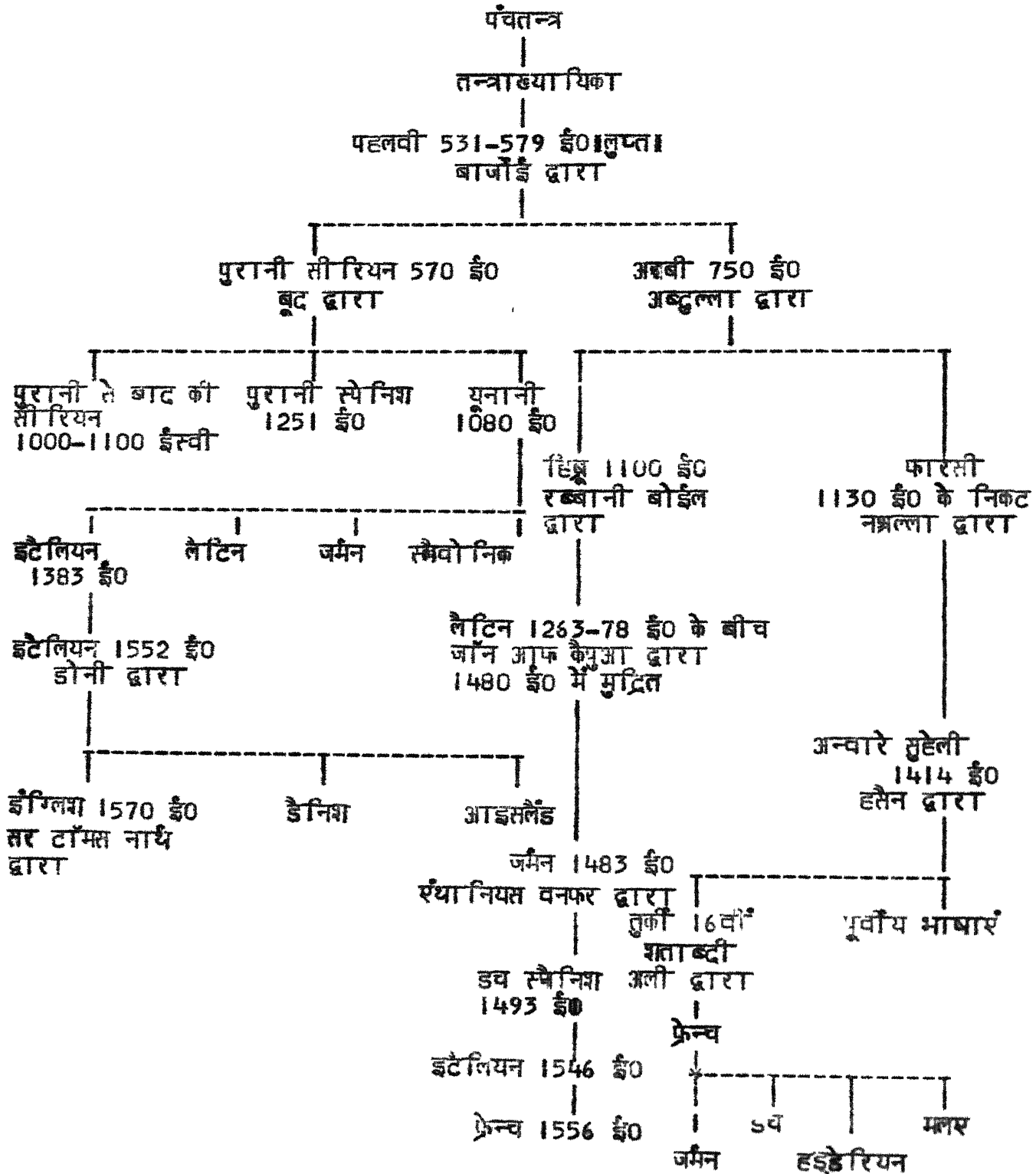
चतुर्थ - अध्याय

पृ०सं० 121 - 135

हितोपदेश का रचयिता एवं रचनाकाल

चतुर्थ अध्याय

हितोपदेश का रचयिता एवम् रचनाकाल

रचयिता का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसकी कृति में झलकता है । भले ही वह उसे दिखाना चाहे अथवा न दिखाना चाहे । उसकी रचना ही उसके व्यक्तित्व का दर्पण होती है । प्रणेता की कृति के द्वारा उसके स्वभाव का बड़ी सरलता से अनुमान हो जाता है किन्तु यदि रचनाकार अपने मूल स्वभाव से हटकर किसी ग्रन्थ का प्रणयन करता है तो वह रचना निश्चय ही अधम कोटि की होगी । चिरप्राचीन काल में राजमहलों में गाई जाने वाली रचनाओं में कवि अपने मूल स्वभाव से दूर हटकर राजाओं की प्रशंसा के गीत गाया करते थे, यही कारण है कि ये रचनाएँ तथा रचनाकार अधिक कीर्तिलब्ध न हो सके, वे मात्र अपने आश्रयदाताओं को झूठी प्रशंसा अथवा अपने पांडित्य प्रदर्शन में ही लीन रहे ।

हितोपदेश के रचयिता नारायण पण्डित ने अपने विषय में भले ही कुछ स्पष्ट नहीं लिखा है, किन्तु रचना के माध्यम से उनके व्यक्तित्व का न्यूनाधिक अनुमान किया जा सकता है । नारायण पण्डित का नाम इतिहास में अन्यत्र नहीं मिलता है । उनके नाम का उल्लेख न किसी शिलालेख पर और न किसी प्राचीन [illegible] पर खुदा है । उनके नाम की चर्चा कथा - साहित्य में अवश्य सुनने को मिलती है ।

पंचतन्त्र से निःसृत अनेक संस्करणों में हितोपदेश भी एक संस्करण है, जिसकी रचना नारायण पण्डित ने की । उनके जन्मस्थान के विषय में अधिकांश विद्वानों की यही धारणा है कि सम्भवतः ये बंगाल प्रान्त के निवासी थे और उनके आश्रयदाता राजा धवलचन्द्र थे ।

पाण्डित्य :-

यूँ तो हितोपदेश पशुपक्षियों, मानव तथा अन्य मानवेत्तर जाति के लोगों की कथाओं से भरा पड़ा है, किन्तु ग्रन्थ की सूक्ष्म समीक्षा करने समय ग्रन्थकार नारायण

पण्डित के अदम्य उत्साह की कथा मिल ही जाती है ।

नीति शिक्षा प्रदान करने के लिये नारायण पण्डित ने सीधी सादी सरल शैली का प्रयोग किया है । गद्य की रचना सम्भवतः रचयिता द्वारा ही की गई है । पद्य की रचना जहाँ-जहाँ रचयिता द्वारा की गई है, वहाँ-वहाँ पद्य भी सरल है । अधिकांश पद्य रचयिता ने अन्य ग्रन्थों से लिये हैं, जैसा कि पाश्चात्य विद्वान् कीथ महोदय का भी कथन है - "मुख्य कठिनाइयाँ पद्यों में आती हैं, जिन्हें लेखक ने बाहर से लिया । बहुत से पद्य सम्भवतः उन्हीं के द्वारा रचे हुये हैं और यदि ऐसा है तो वे प्रवाहपूर्ण रचना के लिये प्रशंसा के पात्र हैं ।[1]

नारायण पण्डित में उदात्त कृतियों का भी गुण मिलता है । मित्रलाभ की प्रथम कथा में ही उन्होंने चित्रग्रीव के मुख से कहलाया कि -

"पण्डित को पराये उपकार के लिये अपना धन और प्राणों को भी छोड़ देना चाहिये, क्योंकि विनाश तो अवश्य होगा, अतः अच्छे पुरुषों के लिये प्राण त्यागना अच्छा है ।"[2]

"इन कबूतरों का और मेरा जाति, द्रव्य और बल समान है, तो मेरी प्रभुता का फल कहो, जो अब न होगा तो किस काल में और क्या होगा ।"[3]

"आजीविका के बिना भी ये मेरा साथ नहीं छोड़ते हैं, अतः प्राणों के बदले भी इन मेरे आश्रितों को जीवनदान दो ।"[4]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास-ए०बी०कीथ, अनुवादक डॉ०मंगलदेव पाण्डेय । 277 पृष्ठ
2. धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
   सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति ।। हितोपदेश - 1/44.
3. जातिद्रव्यगुणानां च साम्यमेषां मया सह ।
   मत्प्रभुत्वं फलं ब्रूहि कदा किं तद्भविष्यति ।। वही - 1/45.
4. विना वर्तनमेवैते न त्यजन्ति ममान्तिकम् ।
   तन्मे प्राणव्ययेनापि जीवयैतान्ममाश्रितान् ।। वही -1/46.

हे मित्र! माँस, मल, मूत्र तथा हड्डी से बने हुये इस विनाशी शरीर में आस्था को छोड़ कर मेरे यश को बढ़ाओ ।[1]

जो अनित्य और मल-मूत्र से भरे हुये शरीर से निर्मल और नित्य यश मिले तो क्या नहीं मिला ? अर्थात् सब कुछ मिल गया ।[2]

शरीर तथा दयादि गुणों में बड़ा अन्तर है, शरीर तो क्षणभंगुर है, और गुण कल्प के अन्त तक रहने वाले हैं ।[3]

रचयिता ने कर्मवाच्य एवं भाववाच्य का कहीं कहीं पर अधिक प्रयोग किया है जिसके कारण किन्हीं स्थानों पर अरोचकता सी उत्पन्न होती है । ऐसा रचयिता द्वारा स्वयं रचे गये पद्यों में ही है । तथापि उनकी अद्भुत रचना शैली के धोतक कतिपय पद्य वास्तव में द्रष्टव्य हैं -

जिनके साथ मीठे शब्द बोले जा चुके हैं और मिथ्या उपचारों से जिनको वश में कर लिया गया है जो आशायुक्त और श्रद्धावान हैं ऐसे याचकों को ठगना क्या उचित है ?[4]

कतिपय स्थलों पर रचयिता का व्याकरण के प्रति लगाव कुछ दिखाई देता है तथापि नीतिवचनों की रचना की निपुणता में कोई कमी नहीं आई है -

इतना ही नहीं रचयिता तो मात्र अध्ययन से ही सन्तुष्ट नहीं होते हैं, उन्होंने तो स्वभाव को ही व्यक्ति का विशिष्ट गुण माना है -

---

1. मांसमूत्रपुरीषास्थिनिर्मितेऽस्मिन्कलेवरे ।
   विनश्वरे विहायास्थां यशः पालय मित्र! मे ।। हितोपदेश - 1/47.
2. यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मलवाहिना ।
   यशः कायेन लभ्येत तन्न लब्धं भवेन्नु किम् ? ।। वही - 1/48.
3. शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
   शरीरं क्षण विध्वन्सि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ।। वही - 1/49.
4. संलापितानां मधुरैर्वचोभि-
   र्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम् ।
   आशावतां श्रद्दधतां च लोके
   किमर्थिनां वंचयितव्यमस्ति ।। हितोपदेश - 1/78.

दुर्जन पुरुष धर्मशास्त्र पढ़ता है या वेद का अध्ययन करता है इसलिये उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये । इस विषय में तोस्वभाव हीसबसे बढ़ कर है, जैसे गाय का दूध स्वभाव से ही मीठा होता है ।[1]

हितोपदेश के रचयिता में कथा रचने की कुशलता विशेष रूपेण दृष्टिगोचर होती है । ग्रन्थकार पंचतन्त्र के रचयिता के समान ही कथा के आरम्भ में उस कथा से सम्बन्धित पद्य प्रस्तुत करके श्रोता के हृदय में तथा मस्तिष्क में मात्र कौतूहल ही नहीं अपितु पूरी कथा को सुनने का अदम्य उत्साह भी उत्पन्न कर देते हैं । कथा के आरम्भ हो जाने पर मात्र गद्य ही नहीं वरन् यथास्थान अनेक नीतिग्रन्थों से अत्यन्त उदारतापूर्वक लिये गये अथवा स्वकल्पित पद्यों को प्रयुक्त करके कवि ने अपनी परिपक्व काव्य प्रतिभा को तो परिचयदिया हो है, साथ ही साथ उपदेशात्मक कथाओं के शिक्षाप्रद उद्देश्य को अवि-छिन्न रूपेण बढ़ाने की कला का भी पूर्ण प्रदर्शन किया है ।

हितोपदेश का पूर्ण अवलोकन करने के पश्चात् यहभी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि रचयिता जीवन की मार्मिक, कठोर परिस्थितियों तथा मानवजीवन के विभिन्न रूपों से पूर्णतया परिचित था । समाज के प्रत्येक छोटे-बड़े सभी प्रकार के का वर्णन ग्रन्थकार ने जिस कुशलता के साथ किया है, इससे उनके मानवीय जीवन की पूर्ण भावनाओं के ज्ञान की भी स्पष्ट झलक मिल जाती है ।

हितोपदेश की शैली सरल और सरस है । पद्य साधारणतया सरल और उपदेशात्मक हैं । कहीं कहीं पद्यों की संख्याअधिक हो जाने से अरुचि होती है । सरल संस्कृत होने के कारण पंचतन्त्र से अधिक हितोपदेश का भारतवर्ष में अधिक प्रचार हुआ है । भाव, भाषा, कथा-प्रवाह, रोचकता आदि सभी गुण इसकी अधिकता से प्राप्त होती हैं । अधिकांश स्थल

---

1. न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं,
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः ।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते,
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ।। -1/17- हितोपदेश

सुबोध हैं । ग्रन्थकार का भाषा पर असाधारण अधिकार है । कुछ स्थल ऐसे भी हैं, जहाँ पर मधुर पदावली की छटा भी देखने को मिलती है । रचयिता ने अनेक स्थानों पर प्रकृति का वर्णन करके अपने भाषा कौशल का भरपूर प्रदर्शन किया है । नारायण पण्डित का अलंकारों के प्रति भी स्नेह दिखाई देता है, क्योंकि इस ग्रन्थ में विभिन्न अलंकारों की मनोरम कान्ति यत्र तत्र देखने को मिल ही जाती है ।इनकी कथाओं में वर्णनों का मधुरता, कल्पना की मनोज्ञता की अनुपम छटा समन्वित है । अनेक स्थलों पर लम्बे समास होने पर भी दुर्बोधता नहीं हैं । रचयिता की बहुज्ञता पग-पग पर प्रकट होती है । वेद, व्याकरण, नीति, राजनीति, पुराण, कामशास्त्र आदि अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन उनके द्वारा वर्णित कथाओं से परिलक्षित होता है ।

पंचतन्त्र रचयिता की भाँति हितोपदेश प्रणेता ने भी ग्रन्थ में मनोरंजन का तत्व पर्याप्त मात्रा में रखा है, फिर भी उनका पर्याप्त उद्देश्य रोचक कथाओं द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की व्याख्या करना है। उनका प्रतिपाद्य विषय सदाचार, राजनीति और व्यवहारिक ज्ञान है । दैनिक जीवन में सफलता और उन्नति प्राप्त करने के लिये जिन बातों का पग-पग पर ध्यान रखना आवश्यक है और जिनके न जानने से मनुष्य अनायास ही धूर्तों के चक्करमें फँसा सकता है, उन्हीं बातों का उपदेश नारायण पंडित ने इस ग्रन्थ में दिया है । पशु-पक्षियों की रोचक कथाओं के रूप में सदाचार और राजनीति के गूढ़ सिद्धान्त बड़ी सरलता से समझा दिये गये हैं । इन मनोरंजक कथाओं की सहायता से सुकुमारमति बालक भी अनायास ही इन सिद्धान्तों को हृदयंगम कर सकते हैं । हितोपदेश में प्रणेता ने पशुपक्षियों को मनुष्यों की भाँति न केवल बुलवाया है और परस्पर व्यवहार करते दिखाया है, वरन् मनुष्यों के समान ही आपस में प्रेम, कलह, युद्ध या सन्धि करते हुये भी दर्शाया है । ये नीतिकथायें जहाँ नीतिशास्त्र का ज्ञान कराती हैं, वहाँ ये संस्कृत भाषा की सरल एवं रोचक शैली का आदर्श भी प्रस्तुत करती हैं । जब कोई पात्र

किसी गम्भीर बात को कहता है तो उस पर बल देने हेतु वह पद्य का प्रयोग करता है । ग्रन्थकार ने चुभते हुये मुहावरे, अनूठी लोकोक्तियाँ और रोचक दृष्टान्तों का भरपूर प्रयोग किया है । इसमें एक प्रमुख कथा के अन्तर्गत कई गौण कथाओ का भी समावेश किया गया है । मुख्य कथा के पात्रों ने अपनी बात के समर्थन में बीच-बीच में अनेक उपकथायें भी कहीं हैं ।

नारायण पण्डित ने हितोपदेश में अतिथि को सर्वदेवमय बताकर इस बात पर विशेष बल दिया है कि अतिथि सत्कार अवश्य करना चाहिये, क्योंकि उनके अनुसार अभ्यागत सबका पूज्य है -

कुशा का आसन, बैठने की भूमि, जल और चौथी सत्य और मीठी वाणी इनका सज्जनों के घर में कभी टोटा नही होता है ।[1]

जिसके घर से अतिथि विमुख लौट जाता है, वह अतिथि अपने पाप को देकर और उस गृहस्थ का पुण्य लेकर चला जाता है ।[2]

उत्तम वर्ण के घर नीच वर्ण का भी अतिथि आवे तो उसका यथोचित सत्कार करना चाहिये, क्योंकि अतिथि सर्वदेवमय है ।[3]

बालक, बूढ़ा तथा युवा इनमें से कोई भी घर पर आया हो उसका आदर-सत्कार करना चाहिये, क्योंकि अभ्यागत सबका पूज्य है ।[4]

---

1. तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
   एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।। हितोपदेश - 1/60
2. अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
   स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति।। हितोपदेश - 1/62
3. उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः।
   पूजनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथिः ।। हितोपदेश - 1/63
4. बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः ।
   तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।। हितोपदेश - 1/107

ब्राह्मणों को अग्नि, चारो वर्णों को ब्राह्मण, स्त्रियों को पति और सबको अभ्यागत सदा पूजनीय है ।[1]

रचयिता ने पुरुषार्थ का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान बताया है । उद्यमी पुरुषों के लिये देश अथवा विदेश, कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते हैं, वे तो अपने बाहुबल से सब कुछ अपना बनालेते हैं । हितोपदेश में वर्णित एक स्थल पर नारायण पण्डित के उद्यमी व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप मिलती है -

सिंह, सज्जन पुरुष और हाथी ये स्थान को छोड़ कर जाते हैं । और काक, कायर पुरुष और मृग ये वहाँ ही नाश होते हैं ।[2] और भी -

वीर और उद्योगी पुरुषों को देश और विदेश क्या है? वे तो जिस देश में रहते है, उसी को अपने बाहुबल से जीत लेते हैं । जैसे सिंह जिस वन में दाँत, नख तथा पूँछ से प्रहार करता हुआ फिरता है, उसी वन में मारे हुये हाथियों के रुधिर से अपनी प्यास बुझाता है ।[3]

---

1. गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
   पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यगतो गुरुः ।। हितोपदेश - 1/108.
2. स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः ।
   तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः ।। वही - 1/174.
3. को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः, को वा विदेशास्तथा ।
   यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
   यद्दंष्ट्रानखलाङ्गूल प्रहरणः सिंहो वनं गाहते
   तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ।। हितोपदेश - 1/175.

और जैसे मण्डूक कूप के पास के गड्ढे में और पक्षी भरे हुये सरोवर को आते हैं, वैसे ही सब सम्पत्तियाँ परवश होकर उद्योगी पुरुष के पास आती हैं ।[1] और दूसरे - उत्साही तथा आलस्यहीन, कार्य की रीति को जानने वाला, द्यूतक्रीड़ा आदि व्यसन से रहित, शूर, उपकार को मानने वाला और पक्की मित्रता वाला ऐसे पुरुष के पास रहने के लिये ।[2]

पंचतन्त्र रचयिता के समान ही नारायण पण्डित भी स्त्रियों से अप्रसन्न दिखाई देते हैं । सम्पूर्ण ग्रन्थ में उन्होंने यत्र-तत्र स्त्रियों के वर्णन में मात्र उनकी निन्दा ही की है तथा उनसे सावधान रहने के लिये भी संकेत किया है । वे स्त्रियों के चरित्र के प्रति अत्यन्त संदिग्ध हैं । उनके अनुसार स्त्रियों का कोई प्रिय अथवा अप्रिय नही है, जैसे वन में गायें नई-नई घास खोजती हैं, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी नवीन पुरुष चाहती हैं । इतना ही नहीं रचयिता तो यहाँ तक कहते हैं कि जैसे काठ से अग्नि तृप्त नहीं होती है, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी पुरुषों से तृप्त नहीं होती हैं । मित्रलाभ की एक कथा में वृद्ध चन्दनदास की युवा पत्नी ने कितनी चालाकी प्रति के सम्मुख झूठा प्रेम प्रदर्शन करके अपने जार को भी भगा दिया तथा पति को भी प्रसन्न कर दिया ।

---

1. निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः ।।
   सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्वसंपदः ।। हितोपदेश - 1/176.
2. उत्साहं सम्पन्नमदीर्घसूत्रं
   क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तं ।
   शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च
   लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ।। वही - 1/178.

इस कथा में स्त्री चरित्र का वर्णन रचयिता ने बहुत अच्छी तरह किया है ।[1] इस ग्रन्थ में रचयिता ने स्त्री चरित्र का वर्णन विभिन्न स्थलों पर किया है, कतिपय स्थल द्रष्टव्य है -

जैसे पाले से मरे हुओं का चित्र चन्द्रमा में और धूप से दु:खियों का सूरज में नहीं लगता है, उसी प्रकार स्त्रियों का मन शिथिल इन्द्रियों वाले पति में नही लगता है ।[2]

---

1. अस्ति गौडीये कौशाम्बी नाम नगरी । तस्यां चन्दनदासनामा वणिग्महाधनो निवसति । तेन पश्चिमे वयसि वर्तमानेव कामाधिष्ठितचेतसा धनदपल्लीलावती नाम वणिक्पुत्री परिणीता । सा च मकरकेतोर्विजयवैजयन्तीव यौवनवती बभूव । सच वृद्धपतिस्तस्या: संतोषाय नाभवत् । सच वृद्धपतिस्तस्यामतीवानुरागवान् । अथ सा लीलावती यौवनदर्पादतिक्रान्तकुल मर्यादा केनापि वणिक्पुत्रेण सहानुरागवती बभूव ।

   एकदा सा लीलावती रत्नावली किरणकर्बुरे पर्यंके तेन वणिक्पुत्रेण सह विश्रम्भालापै: सुखासीना तमलक्षितोपस्थितं पतिमवलोक्य सहसोत्थाय केशेष्वाकृष्य गाढमालिंग्य चुम्बितवती । तेनावसरेण जारश्च पलायित: ।

   तदालिंगनमवलोक्य समीपवर्तिनी कुटन्यचिन्तयत् - "अकस्मादियमेनमुपगूढवती" इति ततस्तया कुटन्या तत्कारणं परिज्ञाय सा लीलावती गुप्तेनं दण्डिता: । - मित्रलाभ ॥हितोपदेश:॥

2. शशिनीव हिमार्तानां घर्मार्तानां रवाविव ।
   मनो न रमते स्त्रीणां जराजीर्णेन्द्रिये पतौ ।। हितोपदेश - 1/110.

जब बाल श्वेत हो गये हों तब पुरुष को काम की योग्यता कहाँ, क्योंकि जिन स्त्रियों का हृदय, अन्य पुरुषों से लग रहा है, वे [ऐसे पति को] औषध के समान समझती हैं ।[1]

इतना ही नहीं स्त्रियों के चरित्र को नाश होने के भी कुछ कारण बताये हैं- स्वतन्त्रता, पिता के घर में [अधिक समय तक] रहना, यात्रा आदि उत्सव में किसी का संग, पुरुष के साथ गप लड़ाना, नियम में न रहना, परदेश में रहना, व्यभिचारिणी स्त्रियों के सहवास में रहना, बार-बार अपने सच्चरित्र का खोना, पति का बूढ़ा होना ईर्ष्या करना और स्वामी का परदेश में रहना - ये स्त्रियों के नाश के कारण हैं ।[2]

और दूसरे - मद्यपान दुष्ट लोगों का सहवास, पति का विरह, इधर-उधर घूमते रहना, दूसरे के घर रहना या सोना - ये छः स्त्रियों के दूषण हैं ।[3] और भी -

हे नारद! [व्यभिचार हेतु] एकान्त स्थान, मौका और प्रार्थना करने वाला पुरुष इनके

---

1. पलितेषु हि दृष्टेषु पुंसः का नाम कामिता? ।
   भैषज्यमिव मन्यन्ते यदन्यमनसः स्त्रियः ।। [हितोपदेश - 1/111]
2. स्वातन्त्र्यं पितृमन्दिरे निवसतिर्यात्रोत्सवे संगतिः -
   गोष्ठी पुरुषसंनिधावनियमो वासो विदेशे तथा ।
   संसर्गः सह, पुंश्चलीभिरसकृद्वृत्तेर्निजायाः क्षतिः ।
   पत्युर्वार्धकमीर्षितं प्रवसनं नाशस्य हेतुः स्त्रियः ।। वही - 1/114,
3. पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
   स्वप्नश्चान्यगृहे वासो नारीणां दूषणानि षट् ।। वही - 1/115.

न रहने से स्त्रियों का पातिव्रत-धर्म रहता है ।[1] और स्त्री घी के घड़े के समान है[2] और पुरुष जलते हुये अंगार के समान है । इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि घी और अग्नि कोपास न रखे । स्त्रियों को पतिव्रत रखने में न लज्जा, न विनय, न चतुरता और न भय कारण हैं ।

शिक्षा चूँकि राजपुत्रों को दी जा रही थी, अतः यह आवश्यक था कि उन्हें युद्ध कला में भी प्रवीण बनाया जाय । अतः किले के महत्त्व को समझाते हुये रचयिता ने कहा कि - किले पर बैठा हुआ एक धनुषधारी सैकड़ों मनुष्यों से युद्ध कर सकता है और सैकड़ों मनुष्य एक लाख मनुष्यों से लड़ाई में भिड़ सकते हैं । इसलिये गढ़ अधिक हैं अर्थात् युद्ध में वह एक बलवन्तर साधन माना गया है ।[3]

गढ़ से रहित राजा किसी शत्रु के पराजय का विषय नहीं होता है, अर्थात् बिना गढ़ के एवं आश्रय शून्य राजा सहज ही में जीता जा सकता है । अतः गढ़ के बिना आश्रयहीन राजा नाव से गिरे हुये निराधार वृक्षवत् है ।[4]

---

1. स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
   तेन नारद! नारीणां सतीत्वमुपजायते ।। हितोपदेश - 1/116.

2. घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान् ।
   तस्माद्घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद्बुधः ।। वही - 1/118.

3. एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
   शतं शतसहस्त्राणि तस्माद्दुर्गम् विशिष्यते ।। 3/50.

4. अदुर्गो विषयः कस्य नारेः परिभवास्पदम् ।
   अदुर्गो नाश्रयो राजा पोतच्युतमनुष्यवत् ।। 3/51.

पहाड़ नदी, निर्जन प्रदेश और गहरे वन के पास बड़ी खाई और ऊँचे पर-कोटे से युक्त और तोप, गोले तथा बारूद और जल इनसे युक्त किला बनाना चाहिये ।[1]

गढ़ बनाने हेतु प्रयोग में आने वाली सामग्रियों का भी रचयिता को अच्छी तरह ज्ञान था । लम्बा, चौड़ा, ऊँचा-नीचा, जल, अन्न और ईंधन इनका संग्रह और जाने आने का मार्ग, ये गढ़ की सात प्रधान सामग्रियाँ हैं ।[2]

इससे यह पता चलता है कि ग्रन्थकार को युद्ध सम्बन्धी विधा का भी अच्छा ज्ञान था ।

रचयिता ने ग्रन्थ में कुल 4 मुख्य कथायें 39 उप-कथायें तथा 726 श्लोकों का वर्णन करके रचना की है ।

रचयिता ने कतिपय स्थलों पर व्रत, उपवास का भी वर्णन कियाहै, मित्रलाभ की एक कथा में चान्द्रायण व्रत का वर्णन किया है ।[3]

---

1. दुर्गं कुर्यान्महाखातमुच्चप्राकारसंयुतम् ।
   सयन्त्रं सजलं शैलसरिन्मरुवनाश्रयम् ।। 3/52.
2. विस्तीर्णता तिवैषम्यं रसधान्येध्यसंग्रहः ।
   प्रवेशश्चापसारश्च सप्तैता दुर्गसम्पदः ।। 3/53.
3. "अहमत्र गंगातीरे नित्यस्नायी निरामिषाशी ब्रह्मचारी चान्द्रायणव्रतमाचरंस्तिष्ठा
   अन्य भी,
   "मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं दुष्करं व्रतं चान्द्रायणमध्यवसितम्*"
   अर्थात् - मैं यहाँ पर गंगा जी के किनारे नित्य स्नान करता हूँ । माँस का भक्षण न करने वाला ब्रह्मचारी और चान्द्रायण व्रत करना हूँ ।
   "मैंने धर्मशास्त्र सुनकर और विषयवासना को छोड़ यह कठिन चान्द्रायण व्रत किया

हितोपदेश का रचनाकाल :-

हितोपदेश के रचयिता नारायण पंडित ने अपने इस ग्रन्थ की रचना बंगाल में की ।[1] पंचतन्त्र का यह प्रस्थान भारत तथा यूरोप में सर्वाधिक विख्यात हुआ । इस ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में पंचतन्त्र के समान अधिक विवाद नही हैं । ऐसा देखने में आया है कि सभी रचनाकार भले ही अपनी रचना में आत्मविवरण न दें अथवा रचना काल न वर्णित करें तथापि कुछ न कुछ ऐसी झलक उनकी कृतियों में मिल ही जाती है, जिससे उनके काल, विद्वता, कुल, वंश, रचना स्थान का किंचित् अनुमान कर लिया जाता है । हितोपदेश का अध्ययन कर कुछ इसी प्रकार के अनुमान के द्वारा इस ग्रन्थ के रचनाकाल एवं स्थान को जाना जा सकता है ।

पाश्चात्य विद्वान् विण्टरनित्ज के अनुसार हितोपदेश की रचना नवीं तथा चौदहवीं शती के मध्य हुई थी, हितोपदेश में शब्द आया है भट्टारकवार अर्थात् "स्वामी का दिन" रविवार के लिये इस नाम का प्रयोग पाँचवी शताब्दी से पहले की किसी भारतीय शिलालेख में नहीं हुआ था तथा नवीं सदी में इसका इस अर्थ में प्रयोग साधारण

---

1. हितोपदेश के प्रथम भाग की 7वीं कथा में गौरी की पूजा कुमारिकाओं के साथ की जाती थी । इससे यह पता चलता है कि तान्त्रिकों का शक्ति सम्प्रदाय अवश्य ही पूर्ववर्ती रहा होगा । इस कथन की स्पष्टता काथ महोदय ने भी की है, उनके अनुसार "नारायण ने हितोपदेश के रचनाकाल में की, इस बात की सम्भावना उस कहानी से होती है, जिसमें इन्होंने अन्य पुरुष की पुरुष की स्त्री के साथ सम्बन्ध को गौरी-पूजा में एक संस्कार के एक भाग के रूप में निर्दिष्ट किया है । यह निंदनीय कर्म बंगाल के तान्त्रिकों द्वारा समर्थित था ।
(संस्कृत साहित्य का इतिहास - कीथ, पृ०सं० 313, अनुवादक - मंगलदेव शास्त्री)

हो गया ।[1]

फ्लीट महोदय ने इस ग्रन्थ का रचनाकाल नवीं शताब्दी माना है ।[2]

कीथ महोदय के अनुसार इस ग्रन्थ की हस्त-लिखित पोथी की तिथि 1373 ई0 होने के कारण लेखक इसके पहले का रहा होगा । नारायण नें भट्टारकवार (रविवार) का ऐसे दिन के रूप में उल्लेख किया है, जिस दिन काम नहीं किया जाना चाहिये । इस उल्लेख के कारण इनका काल बहुत पहले नहीं माना जा सकता है क्योंकि 900 ई0 तक उस शब्द के प्रयोग का रिवाज नहीं था । फ्लीट महोदय के कथन का समर्थन करते हुये कीथ महोदय भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इस ग्रन्थ की रचना नवीं शताब्दी के पश्चात् तथा चौदहवीं शती के पूर्व ही हुई होगी ।[3]

उपर्युक्त विद्वानों के मतानुसार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हितोपदेश की रचना नवीं शताब्दी और चौदहवीं शताब्दी के ही मध्य हुई होगी । क्योंकि ये माघ तथा कामन्दकि के पश्चात् हुये हैं और इन दोनों ही रचनाओं का नारायण पण्डित ने अत्यन्त उदारता के साथ प्रयोग किया है ।

---

1. भारतीय साहित्य का इतिहास - विण्टरनित्ज फुट नोट, पृ0सं0 377
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कीथ, अनुवादक - मंगलदेव शास्त्री, पृ0सं0 313
3. वही.

पंचम - अध्याय पृ०सं० 136-154

हितोपदेश का मूल-स्रोत

मानव के जन्म के साथ ही कथा का जन्म प्रारम्भ होता है । छोटे - छोटे बच्चों का अपनी दादी - नानी के पास बैठकर शिक्षाप्रद कथाओं [कहानियों] को सुनने की परम्परा चिरप्राचीन काल से ही चली आ रही है । कथायें तो वास्तव में आबालवृद्ध सभी को सद्-असद् का उपदेश देने वाली होती हैं । पंचतन्त्र की कथाओं का मुख्य उद्देश्य राजपुत्रों को मनोरंजनात्मक ढंग से शिक्षा प्रदान करना था । पंचतन्त्र रचयिता ने इस कार्य को कुशलतापूर्वक किया, इसका ज्ञान उनके रचे हुये ग्रन्थ के अनेक अनुवादों तथा संस्करणों से स्पष्ट ज्ञात होता है । हितोपदेश पंचतन्त्र के ही अनेक प्रस्थानों में से एक है । इसमें अनेक उपदेशात्मक कथायें भरी पड़ी हैं । इन कथाओं के मूल स्त्रोत अर्थात् ये कथायें रचयिता ने कहाँ से ग्रहण की है , कुछ कथायें जो उनकी स्वरचित हैं, क्या वे तात्कालिक प्रसिद्ध लोक कथायें थीं अथवा इसका वास्तविक स्त्रोत क्या है, इसकी किंचित् जानकारी इसके अध्ययन के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती हैं ।

हितोपदेश के रचयिता नारायण पण्डितने विष्णुशर्मा के समान[1] ईशवन्दना करते हुये कोई भी ऐसा संकेत नहीं दिया है, जिसके द्वारा हितोपदेश के स्त्रोत का सही ज्ञान हो सके । तथापि प्रस्ताविका के एक श्लोक[2] में कृतिकार ने यह स्पष्ट लिखा है

---

1. मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय ससुताय ।
चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्रकर्तृभ्य: ।। पंचतन्त्र/कथामुखम्/2 ।।

सिद्धि साध्येसतामस्तु प्रसादात्तस्य धूर्जटे: ।
जाह्नवीफेनलेखेव यन्मूर्ध्नि शशिन: कला ।। हितोपदेश/प्रस्ताविका/1 ।।

2. मित्रलाभ: सुहृद्भेदो विग्रह: सन्धिरेव च ।
पंचतन्त्रात्तथा न्यस्मादग्रन्थादाकृष्य लिख्यते ।।

अर्थात् पंचतन्त्र तथा अन्य अन्य नीतिशास्त्र के ग्रन्थों से आशयलेकर -
1. मित्रलाभ, 2. सुहृद्भेद, 3. विग्रह और 4. सन्धि, में चार भाग बनाये जाते है ।

कि पंचतन्त्र तथा अन्य नीतिशास्त्र के ग्रन्थों से आश्रय लेकर मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह तथा सन्धि - ये चार भाग बनाये जाते हैं । इस श्लोक द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थकार ने पंचतन्त्र का पूर्णरूपेण प्रयोग किया है तथा हितोपदेश रचयिता पंचतन्त्र के रचयिता विष्णुशर्मा के ऋणी हैं । उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की पूरी की पूरी छाप हितोपदेश पर पड़ी है । इसके अतिरिक्त उन्होंने नीतिशास्त्र के अन्य ग्रंथों का भी प्रयोग अत्यन्त उदारतापूर्वक किया है, किन्तु इन ग्रन्थों का नाम उल्लेख न होने के कारण वास्तविक स्त्रोत का सही-सही ज्ञान नहीं हो पाता है तथापि इसके स्त्रोतों तक पहुँचने का प्रयास हम करेंगें ।

अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसके स्त्रोतों तक पहुँचने का प्रयास किया है --

कीथ महोदय ने हितोपदेशके स्त्रोत के रूप में पंचतन्त्र तथा किसी अन्य अनिर्दिष्टनाम ग्रन्थ का निर्देश किया है । इसमें पंचतन्त्र की राजनीतिक रोचकता का पूर्णरूपेण निर्वाह किया गया है, क्योंकि यद्यपि नारायण पंडित अपने ग्रन्थ में पर्याप्त नवीन बातें जोड़ते हैं तो भी कामन्दकीय नीतिसार से विस्तृत अंशों को एकत्रित करने में उनका विशेष अनुराग है । नारायण द्वारा उक्त दूसरा ग्रन्थ कामन्दकीय नीतिसार नहीं है, वह स्पष्टतया कहानी की कोई पुस्तक है, क्योंकि नारायण के ग्रन्थ में अनेक नवीन कहानियाँ हैं ।[1] कीथ महोदय ने हितोपदेश का आधार पंचतन्त्र एवम् कामन्दकीय नीतिसार माना है, किन्तु विण्टरनित्ज महोदय की विचारधारा किंचित् भिन्न ही प्रतीत होती है । उनके अनुसार भारत और यूरोप में

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास : कीथ - अनु0 मं0 दे0 शा0 : पृ0सं0 313

यही ।हितोपदेश प्रस्थान सर्वाधिक विख्यात रहा है । वास्तव में यह एक ऐसी सर्वथा नवीन रचना है, जिसका आधार तन्त्राख्यायिका का उत्तर-पश्चिम देशीय पाठ रहा है ।[1]

पाश्चात्य विद्वान् हर्टेल महोदय विण्टरनित्ज के उपर्युक्त कथन से सहमत नहीं हैं । वे हितोपदेश का आधार तन्त्राख्यायिका का उत्तर-पश्चिम देशीय पाठ नहीं स्वीकार करते हैं । उन्होंने विण्टरनित्ज महोदय का ध्यान विशेष रूप से इस ओर आकृष्ट किया था कि नारायण के हितोपदेश में जो तन्त्रों का क्रम-विपर्यय हुआ है, वह वास्तव में आदर्शभूत नेपाल प्रस्थान में ही हुआ था ।[2]

अनेक भारतीय विद्वानों ने हितोपदेश का मुख्य स्रोत पंचतन्त्र स्वीकार किया है । इसके अतिरिक्त यह भी माना गया है कि नारायण पंडित ने कतिपय नीतिग्रन्थों कथाग्रन्थों आदि का भी लाभ उठाया होगा ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से अधोलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं :-

1. हितोपदेश का मुख्य आधार पंचतन्त्र है । जैसा कि कृतिकार ने स्वयं अपनी कृति में स्वीकार किया है ।

2. सम्भवतः कुछ नीतिशास्त्र के ग्रन्थों जैसे - महाभारत, कामन्दकीय नीति-

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - विण्टरनित्ज - अनुवादक - सुभद्र झा, पृष्ठ संख्या 376-77.

2. हर्टेल - - पृ0 संख्या 37 पृ0 ।

शार, नारदस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, शुक्रस्मृति, अर्थशास्त्र, वेताल पंचविंशतिका सिंहासन द्वात्रिंशिका, शुकसप्तति तथा सिन्दबाद की पुस्तक से भी कथायें एवं नीतिपूर्ण वाक्यों के संग्रह रचयिता ने मुक्त रूप से किये होंगे ।

3. नारायण स्वयं नीतिशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे । अतः अनुमानतः कतिपय कथाओं की रचना उनके द्वारा भी की गई होंगी ।

4. कतिपय कथायें उस काल में प्रसिद्ध होंगी और इस प्रकार की लोक कथाओं का भी संग्रह नारायण ने अपनी कृति में किया होगा ।

पंचतन्त्र - हितोपदेश का स्त्रोत :-

अनेक शिक्षाप्रद कथाओं की दृष्टि से कथा-साहित्य में पंचतन्त्र का विशेष स्थान रहा है । जीवन में प्रयोग में आने वाले अनेक व्यवहारों एवं पुरुषार्थ चतुष्टय के ज्ञान हेतु इस ग्रन्थ में सुगम एवं सरल अनेक कथायें लिखीं गई हैं । इसी पंचतन्त्र से अनेक कथायें हितोपदेश में भी ग्रहण कर ली गईं ।

हितोपदेश रचयिता पंचतन्त्ररचयिता के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ मालूम पड़ते हैं । उन्होंने पंचतन्त्र को ही अपनी रचना हितोपदेश के लियेमुख्य उपजीव्य बनाया, अतः हितोपदेश में पंचतन्त्र की अनेक कथायें हैं जो किंचित् रूप परिवर्तित करके प्रस्तुत की गई हैं, यद्यपि उनका प्रयोजन एक ही है । कथाओं का यह रूप परिवर्तन अनेक कारणों से हुआ है । जिस प्रकार एक ग्रन्थ की भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा व्याख्या की जाये तो उसमें जिस प्रकार का अन्तर आ जाता है, ठीक उतना ही अन्तर हितोपदेश

का उपजीव्य पंचतन्त्र होने के कारण दोनों में हैं ।

नारायण पंडित ने पंचतन्त्र के प्रथम तथा द्वितीय तन्त्रों का क्रम विपर्यय कर दिया है, अर्थात् हितोपदेश का आरम्भ मित्रलाभ से होता है तथा इसका दूसरा भाग सुहृद्भेद है । कथाओं की दृष्टि से दोनों ही ग्रन्थों में बहुत निकटता है । पंचतन्त्र के तृतीय तन्त्र को दो भागों में विभक्त करके तृतीय तथा चतुर्थ भाग का निर्माण किया । हितोपदेश के चतुर्थ भाग की अंगी कथा की रचना सम्भवतः रचयिता ने स्वयं की है , तथा पंचतन्त्र के अन्तिम पंचम तन्त्र की अनेक कथाओं को अपनी रचना के तृतीय एवम् चतुर्थ भाग में रख लिया है । चतुर्थ तन्त्र को रचयिता ने पूर्णरूपेण त्याग दिया है । हितोपदेश के चतुर्थ भाग में पंचतन्त्र की अनेक रचनायें हैं । कीथ महोदय के अनुसार - "हितोपदेश में पंचतन्त्र के गद्य का 2/5 भाग और पद्यों का 1/3 भाग प्राप्त होता है । चारो भागों की पंचतन्त्र के समान एक एक अंगी कथा है और उस अंगी कथा से अन्य कथाओं की कड़ी बँधी है । हितोपदेश में कुल 41 कथायें हैं ।[1]

पंचतन्त्र के प्रथम तन्त्र की कीलोत्पाटिवानर कथा हितोपदेश के द्वितीय भाग की अनधिकृत चेष्टा करने वाले वानरकी मृत्यु की कहानी से अत्यधिक मिलती जुलती है । पंचतन्त्र की कथा इस प्रकार है -

"किसी बनिये ने नगर के समीप एक वन में एक देवमन्दिर का निर्माण आरम्भ किया । उसमें कार्यरत शिल्पी दोपहर के समय भोजन करने के लिये नगर में चले जाया करते थे । एक दिन अकस्मात् वानरों का झुण्ड इधर उधर घूमता हुआ उस वन में आ पहुँचा ।

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कीथ - पृष्ठ संख्या -314

उन शिल्पियों में से किसी एक ने आधे चीरे हुये अर्जुन वृक्ष के एक खम्भे के मध्य खैर का एक खूँटा गाड़ कर छोड़ दिया । वानरों ने वहाँ पहुँच कर वृक्षों, भवनों, लकड़ियों एवं खम्भों आदि पर स्वच्छन्द खेलना प्रारम्भ किया ।

उन वानरों में से कोई एक मृत्यु के सन्निकट आ जाने के कारण उस आधे चीरे हुये खम्भे पर अपने दोनों हाथों से उसमें गड़े खदिर के खूँटे को उखाड़ने लगा । उस खूँटे को पकड़कर हिलाने के कारण उसके निकल जाने से खम्भे के मध्य में लटका हुआ उसका अण्डकोष दब गया तथा उसकी मृत्यु हो गई ।"

हितोपदेश की कथा भी ठीक इसी उद्देश्य को लेकर चली है, किन्तु किंचित् अन्तर है । दोनों कथाओं में जो बिना कार्य के कार्य करने की इच्छा करता है, वह विनाश को प्राप्त होता है, ऐसी शिक्षा दी गई है । कथा के सार श्लोक की प्रथम पंक्ति में तो अक्षरशः साम्यता है, किन्तु दूसरी पंक्ति को सम्भवतः नारायण पंडित ने स्वयं रचा है । पंचतन्त्र का श्लोक इस प्रकार है -

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्तुमिच्छति ।
स एव निधनं याति कीलोत्पाटीववानरः ।।[1]

किन्तु हितोपदेश का श्लोक इस प्रकार है :-

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्तुमिच्छति ।
स भूमौ निहतः शेते कीलोत्पाटीव वानरः ।।[2]

---

1. पंचतन्त्र - प्रथम तन्त्र - कीलोत्पाटिवानरः ।
2. हितोपदेश - सुहृद्भेद कथा सं0 2

हितोपदेश के प्रथम भाग की अंगी कथा पंचतन्त्र के द्वितीय तन्त्र की अंगीकथा से मिलती जुलती है - दोनों में ही काक, कूर्म, मृग तथा चूहे को कथा है ।

हितोपदेश की दूरदर्शी मच्छ और यद्भविष्य मच्छ की कहानी महाभारत, जातक, पंचतन्त्र - तीनों में ही मिलते हैं । यह कहना कठिन है कि रचयिता ने यह कथा महाभारत या पंचतन्त्र से ग्रहण की अथवा जातक से तथापि अनुमानतः पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की इस कथा में समानता अधिक होने के कारण यह प्रतीत होता है कि कथा पंचतन्त्र से ही ग्रहण की गई होगी । हितोपदेश की कथा इस प्रकार है[1]-

"पहले इसी सरोवर पर जब ऐसे ही धीवर आये थे तब तीन मछलियों ने विचार किया और उनमें से एक अनागतविधाता नामक मच्छ था । उसने विचार किया, "मैं तो दूसरे सरोवर को जाता हूँ ।" इस प्रकार कह कर वह दूसरे सरोवर को चला गया । फिर दूसरे प्रत्युत्पन्नमति नामक मच्छ ने कहा, "होने वाले काम में निश्चय न होने से मैं कहाँ जाऊँ । अतः मैं काम आ पड़ने पर जैसा होगा वैसा करूँगा" । यद्भविष्य ने कहा "जो होनहार नहीं है, वह कभी नहीं होगा और जो होनहार है, उससे उल्टा कभी नही होगा, अर्थात् होनहार अवश्य होगा । यह चिन्तारूपी विष का नाश करने वाली औषधि क्यों नहीं पीते हो ।"

फिर प्रातः जाल से बँधकर प्रत्युत्पन्नमति अपने को मरे के समानदिखा कर बैठा रहा । फिर जाल से बाहर निकाला हुआ अपनी शक्ति के अनुसार उछलकर गहरे जल में घुस गया तथा यद्भविष्य को धीवरों ने पकड़ लिया और मार डाला । यह कथा पंचतन्त्र में भी महाभारत का प्रभाव परिलक्षित करती हुई है । इससे यह प्रतीत

---

1. हितोपदेश - सन्धिभाग ।

होता है कि यह कथा पहले महाभारत फिर पंचतन्त्र तदुपरान्त हितोपदेश में आई है, किन्तु इस कथा का सीधा स्त्रोत पंचतन्त्र ही समझ में आता है । इसी प्रकार की एक और कथा है,[1] जिसमें नील कुण्ड में गिरे श्रृंगाल का वर्णन है -

---

1. हितोपदेश विग्रह कथा संख्या 8

अस्त्यरण्ये कश्चिच्छृंगालः स्वेच्छया नगरोपान्ते भ्राम्यन्नीलीभाण्डे पतितः । पश्चात्तत उत्थातुमसमर्थः प्रातरात्मानं मृतवत्संदर्श्य स्थितः । अथ नीलभाण्डस्वामिना मृत इति ज्ञात्वा तस्मात्समुत्थाप्य दूरे नीत्वापसारितस्तस्मात्पलायितः । ततोऽसौ वनं गत्वा स्वकीयमात्मानं नीलवर्णमवलोक्याचिन्तयत् - "अहमिदानीमुत्तमवर्णः । तदाऽहं स्वकीयोत्कर्षं किं न साधयामि ? इत्यालोच्य श्रृगालानाहूय तेनोक्तम् - अहं भगवत्या वनदेवतया स्वहस्तेनारण्यराज्ये सर्वौषधिरसेनाभिषिक्तः तदद्यारभ्यारण्येऽस्मदाज्ञया व्यवहारः कार्यः । श्रृंगालश्च तं विशिष्ट वर्णमवलोक्य साष्टांगपातं प्रणम्योचुः - "यथाज्ञापयति देवः ।" इत्यनेनैव क्रमेण सर्वेष्वरण्यवासिष्वाधिपत्यं तस्य बभूव । ततस्तेन स्वज्ञातिभिरावृतेनाधिक्यं साधितम् । ततस्तेन व्याघ्रसिंहादीनुत्तम परिजनान्प्राप्य सदसि श्रृंगालानवलोक्य लज्जमानेनावज्ञया स्वज्ञातयः सर्वे दूरीकृताः।ततो विषण्णाञ्छृंगालानवलोक्य केनचिद्वृद्धश्रृंगालेनैतत्प्रतिज्ञातम् - "मा विषीदत । यदनेनानभिज्ञेन नीतिविदो मर्मज्ञा वयं स्वसमीपात्परिभूतास्तद्यथा यं नश्यति तथा विधेयम् । यतो मी व्याघ्रादयो वर्णमात्रविप्रलब्धाः श्रृंगालमज्ञात्वा राजानमिमं मन्यन्ते । तद्यथायं परिचितो भवति तथा कुरुत । तत्र चैवमनुष्टेयम् - यतः सर्वे संध्यासमये संनिधाने महारावमेकदैव करिष्यथ । तत्रस्तं शब्दमाकर्ण्य जातिस्वभावात्तेनापि शब्दः कर्तव्यः ।" ततस्तथानुष्ठिते सति तद्वृत्तम् ।

किसी समय वन में रहने वाला कोई श्रृंगाल नगर के समीप घूमते-घूमते नील के हौज में गिर गया और न निकल सकने के कारण उसमें मृतवत् पड़ा रहा । प्रातः नीलकुण्ड के स्वामी ने उसे मृत जान कर दूर फेंक दिया । वन में जाकर श्रृंगाल ने अपने शरीर को जब नीलवर्ण का पाया तो उसने अपने साथियों यहाँ तक कि सिंह आदि के ऊपर भी प्रभुता दिखाना आरम्भ कर दिया । धीरे धीरे उसका राज्य फैलता गया तब उसने अपनी जाति के अन्य सभी लोगों को दूर भगा दिया । प्रभुता में मदमत्त उस नील वर्ण श्रृंगाल से विकल अन्य सभी श्रृंगालों में एक वृद्ध श्रृंगाल ने भेद नीति अपनाई । सन्ध्या काल में सभी श्रृंगाल एक साथ चिल्लाये । अपनी जाति के स्वभाव के कारण नील वर्ण श्रृंगाल भी उच्च स्वर में चिल्लाने लगा । स्वर द्वारा उसे अन्य पशुओं ने पहचान लिया तथा मार डाला । पंचतन्त्र का भी कथानक इसी प्रकार है, किन्तु कथा में बीच बीच में कुछ विस्तार करने की भावना दिखाई देती है । तथापि यह निश्चित है कि यह कथा नारायण पण्डित ने पंचतन्त्र से ही ग्रहण किया ।

पंचतन्त्र से नारायण पण्डित ने अनेक कथायें, नीतिवाक्य, श्लोक आदि ग्रहण किये ।

महाभारत में हितोपदेश के स्रोत :-

महाभारत हमारे संस्कृत साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । यद्यपि इसका मुख्य कथानक कुरुवंश के महान युद्ध से सम्बन्धित है तथापि इसमें बीच-बीच में अनेक अवान्तर कथायें हैं जो पौराणिक गाथाओं के रूप में हिन्दुओं के समाज

---

1. पंचतन्त्र - मित्रभेद ।

एवम् जीवन में अत्यधिक लोकप्रिय है । महाभारत में पशु-पक्षियों के अनेक आख्यान दिये गये हैं, उनका उद्देश्य भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण मूल्यों को अत्यन्त कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना है । शान्ति पर्व के अन्तर्गत "कपोतलुब्धकोपाख्यानम्" में जहाँ एक ओर "अतिथि देवो भव" का आदर्श एक कपोत द्वारा चरितार्थ करके दिखाया गया है, वहीं दूसरी ओर पतिव्रता नारी का महान आदर्श कपोती ने प्रस्तुत किया है ।

वास्तव में महाभारत आख्यान, नीति, धर्म और सांस्कृतिक तथ्यों का आकर-ग्रन्थ है । महाभारत की सरसता, सरलता, रोचकता व विद्वत्ता ने परकालीन साहित्यकारों को इतना प्रभावितकिया कि वे महाभारत को अपना प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ मानने लगे । किसी ने आख्यान लिया तो किसी ने धार्मिक तत्वों को, किसी ने सांस्कृतिक तो किसी ने चरित्र चित्रण । इस प्रकार यह सर्वप्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ हो गया ।

महाभारत में बढ़ता हुआ परिग्रह परिलक्षित होता है, दुर्योधन सुई की नोक बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं हैं, वैवाहिक जीवन, पारिवारिक जीवन, विवाह पद्धति सभी में पतन दृष्टिगोचर होता है । ऐसे समय में लोगों में धर्म और आदर्श को बनाये रखने हेतु आख्यान साहित्य ने विशेष योगदान प्रस्तुत किया । महाभारत की अनेक छोटी-छोटी शिक्षाप्रद कथायें पंचतन्त्र में ग्रहण कर ली गईं और पंचतन्त्र से हितोपदेश में ।

महाभारत में जहाँ राजधर्म का उपदेश दिये जाने का प्रसंग आया, वहीं नीतिकथा का उपयोग कर लिया गया । धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चारो ही जीवन के लक्ष्य बन चुके थे । इसी से धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र तथा मोक्षशास्त्र का ग्रहण महाभारत में हो गया । महाभारत में कनिकनीति, विदुरनीति तथा भीष्म द्वारा प्रदत्त राजनीति के उपदेशों का वर्णन है । महाभारतकालीन दण्डनीति तथा प्रशासनशास्त्र के नियम तो हमें महाभारत में देखने को मिलते ही हैं । मानव का इतिकर्त्तव्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है । राज्य के छः अंग होते हैं । शत्रु से साम, दाम, दण्ड, भेद तथा उपदेश से व्यवहार करना श्रेयस्कर है । पंचवर्ग में अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल तथा कोश आते हैं । इनके अतिरिक्त रथ आदि सैन्यांगों उपायों, शत्रु, मित्र एवं उदासीन लोगों, व्यूहों तथा युद्ध विधाओं का वर्णन मिलता है । राजा किस प्रकार आचरण करे और अपना राज्य सुरक्षित रखे, इस विषय में बड़ा विचार किया गया है । उद्योग पर्व में विदुरनीति सुप्रसिद्ध है । इसमें विदुर ने धृतराष्ट्र को राजधर्म का उपदेश दिया है ।[1]

हितोपदेश रचयिता नारायण पंडित ने भी कुछ इसी प्रकार उपदेश अपने ग्रन्थ में दिये हैं । सम्भवतः उन्होंने महाभारत से कथायें न ग्रहण करके राजनीति सम्बन्धित उपदेश ही अपने ग्रन्थ हेतु ग्रहण किये होंगे । विग्रह पाठ में चकवे द्वारा अपने राजा को दी गई मन्त्रणा के मूल में निश्चय ही महाभारत में वर्णित युद्ध उपायों की झलक दिखाई पड़ती है ।[2] अचानक यात्रा करना और वह भी बिना विचार के

---

1. उद्योग पर्व, प्रजागर पर्व, अध्याय 33-40
2. हितोपदेश - विग्रह, श्लोक 50-56, 69-94.

युद्ध हेतु जाना इसके लिये गिद्ध ने राजा को नीतिपूर्ण वचनों को सुनाकर रोक लिया । इस प्रकार के नीतिपूर्ण वचन सम्भवत: महाभारत में ही लिये गये होंगे । इस प्रकार स्पष्ट है कि महाभारत भी हितोपदेश के लिये एक उपजीव्य ग्रन्थ था ।

शुकसप्तति :-

शुक सप्तति चिन्तामणि भट्ट नामक एक ब्राह्मण की रचना मानी गई है । यह पंचतन्त्र के पूर्णभद्रकृत संस्करण से बहुत साम्य रखती है । ऐसा समझा जाता है कि इसका साधारण संस्करण एक श्वेताम्बर जैन की रचना है । यह अत्यन्त मनोरंजनात्मक ढंग से लिखी गई है । इसका काल-निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है, किन्तु इसका विश्वविख्यात अनुवाद तूतीनामा चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में हो हो चुका था, अत: निश्चित रूप से यह रचना चौदहवीं शती से बहुत पहले की होगी, क्योंकि प्रसिद्धि पाने के पश्चात ही इसका अनुवाद भी हुआ होगा । हितोपदेश इसके बाद की रचना है, अत: सम्भव है कि रचयिता ने शुकसप्तति से भी कुछ ग्रहण किया हो । विण्टरनित्ज महोदय के अनुसार ग्राम के अधिकारी के पुत्र से आकृष्ट उस स्त्री की कथा ॥2/6॥ जो अपने प्रणयी के पिता के समक्ष जो स्वयं उसका प्रणयी है, और पति के समक्ष अपने प्रणयी का चालाकी से समर्थन करती है, निश्चय ही शुकसप्तति से ग्रहण की गई होगी ।[1]

---

1. भारतीय साहित्य का इतिहास - विण्टरनित्ज - फुटनोट, पृ०सं० 378

वेतालपंचविंशतिका :-

यह ग्रन्थ अपने मूलरूप में क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मंजरी तथा सोमदेव के कथासरित्सागर में है, इससे यह ज्ञात होता है कि इसकी रचना हितोपदेश से पूर्व ही हो गई होगी । इसकी समस्त कथायें धर्म एवं सम्प्रदाय की भावना से भरी पड़ी हैं । पाश्चात्य विद्वान् विण्टरनित्ज महोदय के अनुसार हितोपदेश की वीरवर कथा[1] प्राय: वेतालपंचविंशतिका से ली गई है ।[2]

हितोपदेश की कथा इस प्रकार है -

"पहले मैं शूद्रक नामक राजा के क्रीड़ा-सरोवर कर्पूर-केलि नामक राजहंस की पुत्री कर्पूरमंजरी के साथ अनुरक्त हो गया था । वहाँ वीरवर नामक महाराज कुमार किसी देश से आया और राजा की ड्योढ़ी पर आकर द्वारपाल से बोला, "मैं राजपुत्र हूँ, नौकरी चाहता हूँ । राजा के दर्शन कराओ । फिर इसने उसे राजा का दर्शन कराया और बोला, "महाराज,। जो मुझ सेवक का प्रयोजन हो तो मुझे नौकर रखिये ।" शूद्रक बोला - "तुम कितना वेतन चाहते हो?" वीरवर बोला - "नित्य पाँच सौ मोहरें दीजिये ।" राजा ने कहा, "तेरे पास क्या-क्या सामग्री है?" वीरवर ने कहा, "दो बाँहें और तीसरा खड्ग।" राजा ने कहा, "यह बात नहीं हो सकती ।" यह सुनकर जब बीरवर जाने लगा तो राजा के मन्त्रियों ने सलाह दी कि चार दिन का वेतन देकर इसकी उपयोगिता जान लीजिये । फिर राजा ने वीरवर को बुला कर उसका काम उसे समझा दिया तथा पाँच सौ मोहरें भी दे दीं । राजा ने चुपचाप बैठकर, उसके काम का निरीक्षण

---

1. हितोपदेश - 3/4
2. भारतीय साहित्य का इतिहास, फुटनोट, पृ०सं० 378

किया । वीरवर ने उस धन का आधा देवों को और ब्राह्मणों को, बचे हुये धन का आधा दुखियों को अर्पण कर दिया तथा उससे भी बचे हुए धन का आधा भोजन तथा विलास में व्यय कर दिया । इस कार्य को वीरवर नित्य करता था तथा खड्ग लेकर रात-दिन राजा की सेवा करता था और उसकी आज्ञा लेकर ही जाता था ।

एक रात को राजा ने किसी के रोने का स्वर सुनकर वीरवर से उसका पता लगाने की आज्ञा दी । जब वीरवर चला गया तो राजा भी यह सोचकर कि बाहर अँधेरा है और वीरवर को अकेला नहीं छोड़ना चाहिये, स्वयं भी उसके पीछे-पीछे गया । वीरवर ने रोती हुई स्त्री से कारण पूछा तो उसने कहा, "मैं इस शूद्रक की राजलक्ष्मी हूँ । बहुत दिनों तक इसकी भुजाओं की छाया में बड़े सुख से विश्राम करती थी, अब अन्यत्र जाऊँगी । वीरवर ने राजलक्ष्मी के पुनः वहीं ठहरने का उपाय पूछा तो उन्होंने बताया कि यदि वीरवर अपने पुत्र शक्तिधर सर्वमंगला देवी को भेंट करे तभी वह बहुत दिनों तक फिर वहीं रह सकती है, यह कहकर वह अन्तर्धान हो गई ।

घर जाकर वीरवर ने अपनी पत्नी तथा पुत्र को सब कुछ बता दिया । पुत्र बलि हेतु सहर्ष तैयार हो गया । वीरवर ने पुत्र की बलि देने के पश्चात् बिना पुत्र के अपना जीवन निरर्थक समझकर अपना भी सिर काट दिया । उसकी पत्नी ने पति व पुत्र के शोक में अपना सिर काट दिया । यह सबकुछ देखकर आश्चर्यचकित एवं दुखी राजा ने जैसे ही अपना सिर काटने हेतु तलवार उठाई राजलक्ष्मी प्रकट

होकर बोलीं, "मैं तुझपर प्रसन्न हूँ । मरने के बाद भी तेरा राज्य भंग न होगा ।" राजा ने देवी से अपनी शेष आयु के स्थान पर वीरवर, उसकी पत्नी तथा पुत्र को पुनः जीवित करने का साष्टांग दण्डवत् कर निवेदन किया । देवी ने उन तीनों को यह कह कर कि मैं तुम्हारे उत्साह, सेवा एवं स्नेह से प्रसन्न हूँ, जीवित कर दिया ।

<u>कामन्दकीय नीतिसार</u> :-

आचार्य कामन्दक ने 400 ई0 के लगभग नीतिसार नामक एक ग्रन्थ लिखा था जो कि आचार्य शुक्र के "शुक्र नीतिसार" पर आधारित था । वर्तमान कामन्दकीय नीतिसार उसी ग्रन्थ का 17वीं शती में किया गया पुनः संस्करण समझा जाता है ।

यद्यपि कामन्दक का नीतिसार ग्रन्थ राजाओं के लिये ही लिखा गया है। तथापि उसमें सामान्य और जनसाधारण के लिये बहुत उपदेश मिलते हैं । हितोपदेश के लेखक ने इस ग्रन्थ से बहुत सी बातें ली है । यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन तो नहीं है परन्तु कब लिखा गया, यह भी ठीक निश्चित नहीं है । इसका आधार कौटिल्यीय अर्थशास्त्र है । रचयिता ने हितोपदेश के स्रोत के रूप में पंचतन्त्र तथा किसी अनिर्दिष्ट नाम ग्रन्थ का निर्देश किया है, क्योंकि नारायण ने यद्यपि अपने ग्रन्थ में पर्याप्त नये विषयों को जोड़ा है तो भी कामन्दकीय नीतिसार से विस्तृत अंशों को एकत्रित करने में उनका विशेष अनुराग दिखाई पड़ता है ।

चाणक्य की रचनाओं में हितोपदेश के स्त्रोत :-

चाणक्य रचित ग्रन्थों के विषय वर्णन में बहुरूपता है । यद्यपि इन ग्रन्थों में "राजनीति" साधारण रूप से लगा हुआ है । शासन के सम्बन्ध में कुछ ही वाक्य हैं, जबकि इनमें आचरण सम्बन्धी नियम अधिक हैं । मानव स्वभाव, उसके जीवन से सम्बन्धित अनेक बातों के साथ सम्पत्ति, दरिद्रता, भाग्य, मानव आचरण तथा स्त्रियों के सम्बन्ध में अनेक उपदेश प्रस्तुत किये गये हैं । हितोपदेश में भी चाणक्य के नीतिसंग्रह के किंचित् श्लोक ग्रहण किये गये हैं -

जिस स्थान पर जीविका, रक्षा, नम्रता, उदारता और दानशीलता न लभ्य हो, उस ओर मनुष्य को पाँव भी नहीं उठाना चाहिये ।[1]

सिन्दबाद की पुस्तक :-

कथा साहित्य में सिन्दबाद की पुस्तक एक अतिपरिचित ग्रन्थ है । ऐसा समझा जाता है कि इस पुस्तक का मूल कोई भारतीय ग्रन्थ था जो अब अनुपलब्ध है । अरबी ऐतिहासिक मसूदी ने, जिनकी मृत्यु 956 ई0 में हुई, किताब एक सिन्दबाद की भारतीय उत्पत्ति स्पष्टतया बताई है । इस पुस्तक की योजना पंचतन्त्र से ग्रहण की गई है । हितोपदेश रचयिता नारायण पंडित के इस ग्रन्थ पर सिन्दबाद की पुस्तक की किंचित् झलक दिखाई देती है । चतुर कुट्टिनी की कथा सिन्दबाद की पुस्तक में भी है ।[2]

---

1. चाणक्यनीतिसंग्रह - 4/11.
2. हितोपदेश - 1/7.

लोक कथाएं :-

संस्कृत साहित्य में कथा साहित्य का दूसरा रूप लोककथा माना गया है। दोनों में तो लगभग समान रूप से उपदेश दिये गये हैं। लोककथाएं तो चिरप्राचीन काल में मानवजन्म के साथ ही समाज में आईं। पहले तो ये काव्यों एवं नाटकों में निबद्ध रहती थीं, किन्तु बाद में ये कथाएं स्वतन्त्र रूप से रची जाने लगीं। भारतीय लोककथाओं में चिरप्राचीन सुप्रसिद्ध पैशाची भाषा में रचित गुणाढ्यकृत बृहत्कथा है। यद्यपि इसका मूल रूप आज अनुपलब्ध है तथापि समय समय पर इसके अनुवाद होते रहे हैं। दण्डी ने काव्यादर्श में गुणाढ्य की चर्चा की है। लोककथाओं के पात्र पशु-पक्षी न होकर प्रायः मानव ही होते हैं। नारायण पंडित ने इसी प्रकार की लोक कथाओं का वर्णन किया है, अपनी रचना हितोपदेश में।

600 नीतिपूर्ण वाक्य में जो कि आख्यान पद्य अथवा मंगल वाक्य भी नहीं हैं, 273 राजनीति से सम्बन्धित, 222 साधारण व्यवहार का ज्ञान देने वाले एवं 105 आचार विषयक एवं धर्म विषयक हैं। हितोपदेश के अनेक महत्वपूर्ण अनुवाद भारतीय भाषाओं में हो चुके हैं, ये भाषायें हैं - बंगला, ब्रजभाषा, गुजराती, हिन्दी, हिन्दुस्तानी, मराठी तथा मेवाड़ी। हितोपदेश में कुल 43 कथाओं में से 10 कथायें नई हैं। जिनमें 7 पशु कथायें, 3 लोककथायें, 2 शिक्षाप्रद कथायें तथा 5 षड्यन्त्र कथायें हैं। हितोपदेश में पंचतन्त्र का 2/3 भाग पद्य भाग तथा 2/5 गद्य भाग मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नारायण पण्डित परवर्ती कथाकार हैं। पंचतन्त्र तथा अन्य पूर्वोक्त रचनायें पूर्ववर्ती हैं। इनके रचयिता भी पूर्ववर्ती हैं। परवर्ती रचनाकार पूर्ववर्ती रचनाओं का पूरा का पूरा लाभ उठाते रहे हैं। बिम्बग्रहण, छायाग्रहण, विचारों की आदान-प्रदान परम्परा साहित्य में पुरातन है। नारायण पण्डित में समस्त पूर्ववर्ती रचनाओं का लाभ उठाते हुये समस्त ग्रन्थों का मन्थन कर अपनी प्रखर बुद्धि और कुशल कल्पना के बल पर हितोपदेश रूपी नवनीत बनाकर पाठकों को समर्पित किया। परवर्ती रचनाकार होने के कारण पूर्ववर्ती रचनाकारों के प्रति कृतज्ञ होना स्वाभाविक है। ऐसा भी सम्भव है कि कतिपय कथायें लोककथा के रूप में प्रचलित रहीं हो, उनको भी रचयिता ने ग्रहण कर लिया हो। यह भी हो सकता है कि अपनी प्रबल प्रतिभा के बल पर कतिपय कथाओं को जन्म दिया हो। इस प्रकार जो कुछ भी हो हितोपदेश जैसी रचना ने चिरकाल से बच्चे, बड़े, बूढ़ों, सबका मनोरंजन कर नीतिज्ञान व्यवहार आदि का उपदेश देकर समाज को नई दिशा दी। समाज नारायण पण्डित का चिरऋणी रहेगा।

षष्ठ - अध्याय

पृ०सं० 155-167

पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की योजना में भेद एवम् प्रयोजन

षष्ठ अध्याय

पंचतन्त्र एवम् हितोपदेश की योजना में भेद एवं प्रयोजन

चिरप्राचीन काल से ही भारतवर्ष में शिक्षाप्रद साहित्य के रूप में पंचतन्त्र एवम् हितोपदेश की कथाओं का भण्डार रहा है । जो हमारे देश की सुसंस्कृति एवं सभ्यता दोनों का ही परिचायक है । भारत भूमि ही कथासाहित्य की जन्मदात्री है - ऐसा इसके साहित्य से स्पष्ट होताहै । यहीं से यह साहित्य शनैः-शनैः सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित हुआ तथा विश्वसाहित्य केनाम से जाना जाने लगा ।

पंचतन्त्र एवं हितोपदेश दोनों का ही कथासाहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट-स्थान है । शिक्षाप्रद होने पर भी इनके उपदेश वेद की कठोर-आज्ञाओं के समान अरोचक नहीं थे । इन दोनों ही ग्रन्थों की कथाओं में प्रमुख विशेषता यह है कि ये धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, पुरुषार्थ चतुष्टय आदि समस्त ज्ञान प्रदान करने वाली है, यद्यपि इनकी रचना राजपुत्रों को शिक्षित करने हेतु की गई थी, तथापि ये मात्र राजकुल से ही सम्बन्धित नहीं हैं, इनकी कथायें तो आज अनेक शताब्दियों के बीत जाने पर भी साधारण सामाजिक को भी ज्ञान प्रदान करने वाली है । इन्हीं विशिष्ट-ताओं के आधार पर ये विभिन्न धर्मों तथा विभिन्न भाषाओं में सम्पूर्ण विश्वसाहित्य में व्याप्त हैं ।

इन दोनों ही ग्रन्थों में मानव जीवन का प्रयोजन भौतिक तथा नैसर्गिक सहज प्रवृत्तियों और वासनाओं की पूर्ति तथा उनसे उत्पन्न होने वाले क्षणिक सुख अथवा काम को प्राप्त करने के साधन, जिनमें अर्थ, सम्पत्ति, ऋद्धि, जिनके द्वारा काम विषयो

की प्राप्ति होती, नहीं स्वीकार किये गये हैं । मात्र धर्म, अर्थ, काम ही इन दोनों ग्रन्थों में जीवन के प्रयोजन एवम् उद्देश्य माने गये हैं ।

पंचतन्त्र एवं हितोपदेश दोनों में ही मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य स्वीकार किया गया है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों को ही मानव जीवन का मूल्य माना है, जिसे पुरुषार्थ चतुष्टय के नाम से जाना जाता है, जहाँ विष्णुशर्मा ने जीवन की मार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित सुप्त कल्पना के जागृत हो उठने पर मानव द्वारा अपनी अभिव्यंजना की मूल मनोवृत्ति के कारण अपने उद्गारों को एवं अपने हृदय की तीव्र भावनाओं को सरल व स्वाभाविकढंग से अभिव्यक्त कर उसमें अपनी सौन्दर्य-प्रेम-प्रवणता के कारण कल्पना का रंग भर कर चमत्कारिता उत्पन्न की है, वहीं हितोपदेश प्रणेता नारायण पण्डित ने भी तत्कालीन युग-प्रभाव को ग्रहण कर तत्कालीन परिस्थितियों एवं लोकभावनाओं का परिचायक होने के कारण अपना महत्वपूर्ण विशिष्ट स्थान बनाया है ।

इन ग्रन्थों ने तत्कालीन आचार-विचार, धार्मिक मत, नैतिकता, शिक्षा प्रणाली एवं शासन-व्यवस्था आदि के निखरे रूप का हमारे सामने सजीव चित्रण उपस्थित कियाहै । ये ग्रन्थ किसी एक वर्ग के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव-जाति के जीवन को दृष्टि में रख कर उसकी झाँकी प्रस्तुत करते हैं ।

कथानक की दृष्टि से वैशिष्ट्य-साम्य होने पर भी हितोपदेश कहीं - कहीं पर उपकथाओं की भरमार से मूल कथा विच्छिन्न होती हुई सी प्रतीत होती है, जैसा कि कीथ महोदय के संकेत से भी स्पष्ट जान पड़ता है --

"यह तथ्य कि लेखक सम्भवत: एक मौलिक रचना तैयार कर रहा था, निश्चय ही पंचतन्त्र में पाये जाने वाले विभिन्न दोषों का कारण है । इन दोषों में से पंचतन्त्र के परवर्ती संस्करणों के सम्पादक केवल कुछ ही निराकरण कर पाये हैं । एक ही लक्ष्य के लिये अनावश्यक संख्या में नीतिवचनों को संग्रहीत करने का प्रयत्न मौलिक रचना में भी प्रतीत होता है । कभी-कभी कहानियों की संगति भी अच्छी तरह नहीं बैठती । इससे लक्षित होता है कि लेखक कहानी को, उसके समाविष्ट करने का कोई प्रभावोत्पादक प्रकार दिखाई न पड़ने पर भी ग्रन्थ में समाविष्ट करना चाहता था । पंचतन्त्र के ही समान हितोपदेश के पद्यों को भी परिमार्जित किया गया है । दोनों में ही प्रयुक्त नीतिवाक्य कोरी रूढ़िवादिता के पक्ष में नहीं हैं । इनके प्रसंग नैतिक शिक्षा के हैं तथा धर्म से सम्बन्धित हैं । प्राय: ये वाक्य रचयिताओं के दीर्घकालीन व्यक्तिगत अनुभव के ही प्रणिाम प्रतीत होते हैं । इनकी अभिव्यक्तियों में मानव-जीवन का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं दिखाई देता है ।[1]

इन दोनों ग्रन्थों की योजना में बहुत बड़ा भेद तन्त्रों के क्रम विपर्यय से हो गया है। हितोपदेश का प्रारम्भिक भाग मित्रलाभ है और दूसरा सुहृदभेद, जबकि पंचतन्त्र का प्रथम तन्त्र मित्रभेद और दूसरा मित्रसम्प्राप्ति है । हितोपदेश रचयिता ने पंचतन्त्र के तृतीय तन्त्र को दो भागों में विभक्त करके हितोपदेश के तृतीय एवं चतुर्थ भागों की रचना की है । इसके अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होताहै कि ये प्रथम एवं द्वितीय भागों में प्रयुक्त विरोधी द्वन्द्वों के मात्र विस्तृत रूप ही है । पंचतन्त्र के चतुर्थ तन्त्र को नारायण पण्डित ने पूर्णरूपेण त्याग दिया है, जबकि पंचमतन्त्र

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कीथ - अनुवादक, मंगलदेव शास्त्री, पृ० 306

को हितोपदेश के तृतीय एवं चतुर्थ भागों में विभाजित कर दिया है । प्रणेता ने हितोपदेश में एक नवीन अंगीकथा को चतुर्थ खण्ड में रख दिया है ।

पंचतन्त्र में राजा अमरशक्ति के तीनों पुत्रों का नाम स्पष्ट रूप से लिखा गया है तथा राजा के सभी गुणों का भी विस्तृत वर्णन किया है :-

"दक्षिण के किसी राज्य में महिलारोप्य नामक एक नगर था । उसमें समस्त याचकों के लिये कल्पवृक्ष के समान अत्यन्त उदार, राजाओं में नरपतियों के मुकुटमणियों की कान्ति रूपी मंजरियों द्वारा पूजित और सम्पूर्ण कलानिपुण अमरशक्ति नाम का एक राजा शासन करता था । उसके बहुशक्ति, उग्रशक्ति तथा अनन्तशक्ति नाम के तीन पुत्र थे ।[1] किन्तु हितोपदेश रचयिता ने अत्यन्त सरल भाषा में राजा का सूक्ष्म परिचय दे दिया तथा पुत्रों के नाम से भी अवगत नहीं कराया है -

"गंगा किनारे पटना नामक एक नगर है। वहाँ राजा के सम्पूर्ण गुणों से शोभायमान, सुदर्शन नामक एक राजा रहता था ।"[2]

"इन दोनों श्लोकों को सुनकर, वह राजा, शास्त्र के न पढ़ने वाले तथा प्रतिदिन कुमार्ग पर चलने वाले अपने पुत्रों को शास्त्र न पढ़ने से व्याकुलमनवाला हो कर सोचने लगा ।"[3]

इससे यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि पंचतन्त्र में राजपुत्रों की संख्या

---

1. पंचतन्त्र - कथामुखम्
2. हितोपदेश - कथामुखम्
3. वही

तीन है, किन्तु हितोपदेश में ऐसा {संख्या सम्बन्धी} संकेत कहीं भी प्राप्त नही होता है ।

इतना ही नहीं पंचतन्त्र का राजा जहाँ विष्णु शर्मा को गुरुदक्षिणा स्वरूप छः गाँव भेंटस्वरूप देने की घोषणा करते हैं, वहीं हितोपदेश का राजा इस विषय में मौन है तथा अपने गुरुदक्षिणा जैसा कोई भी वचन न देकर अपने पुत्रों को आचार्य के हाथों सौंप दिया -

भाषा की दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो यह ज्ञात होता है कि पंचतन्त्र की अपेक्षा हितोपदेश के कथानक छोटे, सरल तथा भाषा की दृष्टि से कहीं-कहीं पर अधिक सुगम्य हैं । पंचतन्त्र की चण्डरव-श्रृंगाल[1] कथा हितोपदेश की नील में

---

1. कस्मिंश्चिद्वनप्रदेशे चण्डरवो नाम श्रृंगालः प्रतिवसति स्म । स कदाचित्क्षुधाविष्टो जिह्वालौल्यान्नगरान्तरेऽनुप्रविष्टः । अथ तं नगरवासिनः सारमेया अवलोक्य सर्वतः शब्दायमानाः परिधाव्य तीक्ष्णदंष्ट्राग्रैर्भक्षितुमारब्धः । सोऽपि तैर्भक्ष्यमाणः प्राणभयात् प्रत्यासन्नं रजकगृहं प्रविष्टः । तत्र च नीलीरसपरिपूर्णं महाभाण्डं सज्जीकृतमासीत् । तत्र सारमेयैराक्रान्तो भाण्डमध्ये पतितः ।

अथ यावन्निष्क्रान्तस्तावन्नीलवर्णः संजातः । तत्रापरे सारमेयास्तं श्रृंगालमजानन्तो यथाभीष्टां दिशं जग्मुः । चण्डरवोऽपि दूरतरं प्रदेशमासाद्य काननाभिमुखं प्रतस्थे । नच नीलवर्णेन कदाचिन्निजरंगस्त्यज्यते । उक्तंच -

वज्रलेपस्य मूर्खस्य नारीणां कर्कटस्य च ।
एको ग्रहस्तु मीनानां नीलीमद्यपयोरपि ।।

अथ तं हरगल गरलतमालसमप्रभमपूर्व सत्त्वमवलोक्य, सर्वे सिंहव्याघ्रद्वीपिवृकवानरप्रभृतयोऽरण्यनिवासिनो भयव्याकुलचित्ताः समन्तात्पलायनक्रियां कुर्वन्ति । कथयन्ति च - "न ज्ञायतेऽस्य कीदृग् विचेष्टितं, पौरुषं च । तद् दूरतरं गच्छामः ।

रंगे हुये गीदड़ की मृत्यु[1] नामक कहानी से अपेक्षाकृत छोटी है, यद्यपि दोनों ही

पिछले पृष्ठ से -

उक्तंच - न यस्य चेष्टितं विद्यान्न कुलं न पराक्रमम् ।
न तस्य विश्वसेत्प्राज्ञो यदीच्छेच्छ्रियमात्मनः ।।

चण्डरवोऽपि तान्भयव्याकुलितान्विज्ञायेदमाह - "भो भोः श्वापदाः । किं यूयं मां दृष्ट्वैव सन्त्रस्ता व्रजथ ? तन्न भेतव्यम् । अहं ब्राह्मणाऽद्य स्वयमेव सृष्ट्वाऽभिहितः - यच्छ्वापदानां मध्ये कश्चिद्राजा नास्ति । तत्त्वं मयाद्य सर्वश्वापदप्रभुत्वेऽभिषिक्तः ककुद्द्रुमाभिधः, ततो गत्वा क्षितितले तान् सर्वान् परिपालय" इति । ततोऽहमत्रागतः । तन्मम छत्रच्छायायां सर्वैरेव श्वापदैर्वर्तितव्यम् । अहं ककुद्द्रुमो नाम राजा त्रैलोक्येऽपि संजातः ।"

तच्छ्रुत्वा सिंहव्याघ्रपुरःसराः श्वापदाः -"स्वामिन् ! प्रभो ! समादिश" इति वदन्तस्तं परिवव्रुः । अथ तेन सिंहस्याऽमात्यपदवी प्रदत्ता । व्याघ्रस्य शय्यापालकत्वम् । द्वीपिनस्ताम्बूलाधिकारः । वृकस्य द्वारपालकत्वम् । ये ये चात्मीयाः श्रृंगालास्तैः सहालापमात्रमपि न करोति । श्रृंगालाः सर्वेऽप्यर्धचन्द्रं दत्त्वा निःसारिताः । एवं तस्य राज्यक्रियायां वर्त्तमानस्य ते सिंहादयो मृगान् व्यापाद्य तत्पुरतः प्रक्षिपन्ति । सोऽपि प्रभुधर्मेण सर्वेषां तान् प्रविभाज्य प्रयच्छति ।

एवं गच्छति काले कदाचित्तेन सभागतेन दूरदेशे शब्दायमानस्य श्रृंगालवृन्दस्य कोलाहलोऽश्रावि । तं शब्दं श्रुत्वा पुलकिततनुरानन्दाश्रुपरिपूर्णनयन उत्थाय, तारस्वरेण विरोतुमारब्धवान् ।

अथ ते सिंहादयस्तं तारस्वरमाकर्ण्य "श्रृंगालोऽयमि"ति मत्वा सलज्जमधोमुखाः क्षणमेकं स्थित्वा मिथः प्रोचुः -"भो, वाहिता वयमनेन क्षुद्रश्रृंगालेन, तद्वध्यताम्" इति ।

पंचतन्त्र - चण्डरवश्रृंगालकथा ।

1. अस्त्यरण्ये कश्चिच्छृंगालः स्वेच्छया नगरोपान्ते भ्राम्यन्नीलीभाण्डे निपतितः ।

कथाओं का उद्देश्य समान है । इन कथाओं में इस बात का उपदेश दिया गया है

पिछले पृष्ठ से -

पश्चात्तत उत्थातुमसमर्थः प्रातरात्मानं मृतवत्संदर्श्य स्थितः । अथ नीलीभाण्ड स्वामिना मृत इति ज्ञात्वा तस्मात्समुत्थाय दूरे नीत्वापसारितस्तस्मात्पलायितः । ततोऽसौ वनं गत्वा स्वकीयमात्मानं नीलवर्णमवलोक्याचिन्तयत् - "अथमिदानीमुत्तमवर्णः । तदाऽहं स्वकीयोत्कर्षं किं न साधयामि ?" इत्यालोच्य श्रृंगालानाहूय तेनोक्तम् - "अहं भगवत्या वनदेवतया स्वहस्तेनारण्यराज्ये सर्वौषधिरसेनाभिषिक्तः । तदद्यारभ्यारण्येऽस्मदाज्ञया व्यवहारः कार्यः ।" श्रृंगालाश्च तं विशिष्ट वर्णमवलोक्य साष्टांगपातं प्रणम्योचुः - "यथाज्ञापयति देवः ।" इत्यनेनैव क्रमेण सर्वेष्वरण्यवासिष्वाधिपत्यं तस्य बभूव । ततस्तेन स्वज्ञातिभिरावृत्तेनाधिक्यं साधितम् । ततस्तेन व्याघ्रसिंहादीनुत्तमपरिजनान्प्राप्य सदसि श्रृंगालानवलोक्य लज्जमानेनावज्ञया स्वज्ञातयः सर्वे दूरीकृताः । ततो विषण्णाञ्श्रृंगालानवलोक्य, केनचिद्वृद्धश्रृंगालेनेतत्प्रतिज्ञातम् - "मा विषीदत" । यदनेनानभिज्ञेन नीतिविदो मर्मज्ञा वयं स्वसमीपात्परिभूतास्तद्यथा यं नश्यति तथा विधेयम् यतोऽमी व्याघ्रादयो वर्णमात्रविप्रलब्धाः श्रृंगालमज्ञात्वा राजानमिमम् मन्यन्ते । तद्यथायं परिचितो भवति तथा कुरुत । तत्र चैवमनुष्ठेयम् - यत् सर्वे सन्ध्यासमये संनिधाने महारावमेकदैव करिष्यथ । ततस्तं शब्दमाकर्ण्य जातिस्वभावोत्तेनापि शब्दः कर्त्तव्यः । ततस्तथानुष्ठिते सति तद्वृत्तम् । यतः -

> यः स्वभावो हि यस्यास्ति स नित्यं दुरतिक्रमः ।
>
> श्वा यदि क्रियते राजा स किं नाश्नात्युपानहम् ?
>
> ततः शब्दादभिज्ञाय स व्याघ्रेण हतः ।

हितोपदेशः - विग्रहः - कथा सं0 8

कि जो अपने अन्तरंग जनों को छोड़कर अन्य लोगों के बीच जाता है, वह स्वजनों द्वारा तो त्याग ही दिया जाता है, इसके अतिरिक्त कष्टकर मृत्यु को भी प्राप्त होता है । यही नीति समझाने के लिये गीदड़ की कथा दोनों ग्रन्थों में रखी गई है । दोनों का उद्देश्य समान होने पर भी हितोपदेश में यही कथा पंचतन्त्र की अपेक्षा कम वाक्यों में कह दी गई है । पंचतन्त्र में अपना भाव को स्पष्ट करने हेतु अनेक श्लोक भी प्रस्तुत किये गये हैं ।

हितोपदेश के सन्धि पाठ में एक कथा है,[1] जिसमें तीन मत्स्य का वर्णन है । इसका कथानक पंचतन्त्र की मित्रभेद में वर्णित मत्स्यत्रय[2] नामक कथा से ग्रहण किया गया है । दोनों कथाओं का कथानक समान होने पर भी कुछ अन्तर है - पंचतन्त्र की यह कथा मित्रभेद नामक तन्त्र में है, जबकि हितोपदेश में यही कथा सन्धि पाठ में कही गई है । प्रयोजन समान है - भविष्य में घटने वाली बात को पहले से ही सोचने वाला तथा अवसर जान कर उसी के अनुसार कार्य करने वाला, इन्हीं दोनों ने आनन्द भोगा है और यद्भविष्य मारा गया ।

हितोपदेश की रचना का आधारमात्र दो श्लोक हैं - एक बार राजा सुदर्शन ने किसी को दो श्लोक पढ़ते हुये सुना ।[3]

---

1. हितोपदेश: - सन्धिपाठ - कथा सं0 3
2. पंचतन्त्र - मत्स्यत्रयकथा
3. अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
   सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव स: ।। 10 ।। प्रस्ताविका
   यौवनं धनसम्पत्ति: प्रभुत्वमविवेकिता ।
   एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्? ।। ।। ।। वही

अनेक सन्देहों को दूर करने वाला और छिपे हुये अर्थ को दिखाने वाला शास्त्र, सब का नेत्र है, ज्ञानरूपी जिसके पास वह नेत्र नही है, वह अन्धा है ।

यौवन, धन, प्रभुता और अविचारिता, इनमें से एक भी हो तो अनर्थ करने वाली है और जिसमें ये चारो हो, वहाँ क्या ठीक है ।

ये श्लोक सुनकर अपने कोमलमति पुत्रों के प्रति राजा व्याकुल हो उठा और उसने पण्डितों की एक सभा बुलाकर पण्डित विष्णुशर्मा के पास अपने पुत्रों को विद्याध्ययन हेतु भेज दिया । पंचतन्त्र की रचना में ऐसा कोई भी बात नही है । पंचतन्त्र में वर्णित अमरशक्ति नामक राजा पहले से ही बहुत जागरूक था उसको अपने पुत्रों के अशिक्षित एवं अविनीत होने का आभास पहले से ही था -

राजा ने उन्हें अशिक्षित समझकर अपने मन्त्रियों को बुलाकर उनसे कहा ....[1]

कतिपय स्थलों पर पंचतन्त्र रचयिता ने बहुत बड़े - बड़े समासों से युक्त भाषा का प्रयोग किया है, जबकि नारायण पण्डित ने छोटे - छोटे पदों का प्रयोग किया है । विष्णुशर्मा ने कहीं कहीं पर समास के रूप में समुद्भूत विशेषणों से समन्वित वाक्यों की रचना में अपनी विशेष रुचि प्रदर्शित की है तथा ऐसे स्थलों पर वे एक विभक्तियुक्त भाषा के समस्त लाभों का तिरस्कार कर देते हैं । इस दृष्टि से पंचतन्त्र के तृतीय अंक की मूषिका विवाह कथा का प्रारम्भ देखने योग्य है -

---

1. पंचतन्त्रम् - कथामुखम् ।

"विषम शिलाखण्डों से गिरने वाले जलप्रवाह से उत्पन्न निर्घोष को सुन कर भयभीत हो उठने वाली मछलियों के उलटने-पलटने से निष्पन्न श्वेत फेनों द्वारा विचित्र वर्ण की लगने वाली तरंगों से युक्त गंगा के तट पर जप, नियम, तप स्वाध्याय, उपवास एवं योगक्रियाओं में लगे हुये पवित्र परिमित जल को पीकर और कन्द, मूल, फल एवं शैवाल आदि को खाकर अपने शरीर को सुखा डालने वाले तथा वल्कल आदि निर्मित कौपीन मात्र से अपने शरीर को ढकने वाले तपस्वियों से परिपूर्ण एक आश्रम था।"[1]

हितोपदेश की सुहृद्भेद की टिटहरी का जोड़ा और समुद्र की कहानी नामक कथा पंचतन्त्र की टिटिट्टिभ-समुद्र कथा से अत्यन्त छोटी है। पंचतन्त्र की यह कथा अपने उद्देश्य की पूर्ति इसी कथा में आई हुई तीन उपकथाओं द्वारा करती है, जबकि हितोपदेश की कथा का कथानक स्वतन्त्र है और वह थोड़े शब्दों में ही अपने उद्देश्य की पूर्ति कर लेता है। इस प्रकार हितोपदेश की यह कथा द्रष्टव्य है।

दक्षिण में समुद्र तट पर टिटहरी का एक जोड़ा निवास करता था। एक दिन आसन्नप्रसवा टिटहरी ने अपने पति से अण्डे सुरक्षित रखने के लिये एकान्त स्थान ढूँढने को कहा। टिटहरे ने समुद्रतट पर ही अण्डे रखने की सलाह दी, किन्तु टिटहरी

---

1. अस्ति विषमशिलातलस्खलिताम्बुनिर्घोषश्रवणसन्त्रस्तमत्स्यपरिवर्तन संजनितश्वेतफेनशबलतरंगाया गंगायास्तटे जपनियमतपःस्वाध्यायोपवासयोगक्रियानुष्ठानपरायणैः परिपूतपरिमितजलजिघृक्षुभिः कन्दमूलफलशैवालाभ्यवहार [illegible] कर्शितशरीरैर्वल्कलकृतकौपीनमात्रप्रच्छादनैस्तपस्विभिराकीर्णमाश्रमपदम्।

– पंचतन्त्र – तृतीयतन्त्र – मूषिकाविवाह कथा

ने न मानते हुये कहा कि यहाँ पर समुद्र की तरंगे आ जाया करती हैं । इस पर टिटहरे ने जब ने आपको समुद्र से अधिक बलशाली बताया तो टिटहरी हँस पड़ी । किन्तु अत्यन्त कष्ट से पति की बात मानती हुई टिटहरी ने वहीं पर अपने अण्डे दिये । समुद्र टिटहरे के बल की परीक्षा लेने हेतु उसके अण्डे बहा ले गया । इस पर टिटहरी [illegible] इस बात को [illegible] पाकर वह टिटहरा पक्षियों ने धैर्य बँधा कर भगवान् गरुड़ के समीप पहुँचा और सारा समाचार निवेदन कर दिया । भगवान् गरुड़ ने सम्पूर्ण वृत्तान्त भगवान् नारायण से कह डाला । भगवान् नारायण ने समुद्र को अण्डे लौटा देने की आज्ञा दी और इस प्रकार समुद्र ने टिटहरी को उसके अण्डे लौटा दिये ।[1]

पंचतन्त्र में यही कथा कुछ विस्तृत रूप में दी गई है ।[2]

इसी प्रकार से हितोपदेश की अनधिकृत चेष्टा करने वाले बन्दर की कहानी

---

1. हितोपदेशः - सुहृद्भेदः - कथा सं० 9
2. पंचतन्त्र - मित्रभेद - टिट्टिभ-समुद्र-कथा
3. अस्ति मगधदेशे धर्मारण्यसंनिहितवसुधायां शुभदत्तनाम्ना कायस्थेन विहारः कर्तुमारब्धः । तत्र करपत्रदार्यमाणैकस्तम्भस्य कियद्दूरस्फाटितस्य काष्ठखण्ड-द्वयमध्ये कीलकः सूत्रधारेण निहितः । तत्र बलवान् वानरयूथः क्रीडन्नागतः । एको वानरः कालप्रेरित इव तं कीलकं हस्ताभ्यां धृत्वोपविष्टः । तत्र तस्य मुष्कद्वयं लम्बमानं काष्ठखण्डद्वयाभ्यन्तरे प्रविष्टम् । अनन्तरं स च सहजचपलतया महता प्रयत्नेन तं कीलकमाकृष्टवान् । आकृष्टे च कीलके चूर्णिताण्डद्वयः पंचत्वं गतः ।

हितोपदेश - सुहृद्भेदः ।

में नारायण पंडित ने कथानक तो पंचतन्त्र का ही रखा है। किन्तु भाषा परिवर्तन कर दी है । दोनों ग्रन्थों में उपर्युक्त वर्णित कुछ भेद होने पर भी दोनों ही ग्रन्थों का प्रयोजन एक है । इनमें प्रयोग किये गये नीतिवाक्य रूढ़िवादी उपदेशवाक्य नहीं हैं । इनके प्रसंग नैतिक शिक्षा के हैं अथवा धर्म से सम्बन्धित हैं । दोनों ग्रन्थों में प्रयोग की गई भाषा भी अत्यधिक शुद्ध है । प्रायः ये वाक्य व्यक्तिगत परिणाम की अभिव्यक्ति हैं । दोनों ही रचयिताओं ने धर्म को आधार मान कर ही नीति की शिक्षा दी । दोनों ही ग्रन्थों में अपने प्रयोजन की पूर्ति हेतु सुभाषित वाक्यों तथा श्लोकों का भरपूर प्रयोग किया है । मानव जीवन के आसपास घटित होने वाली समस्त घटनाओं का वर्णन पंचतन्त्र तथा हितोपदेश दोनों में ही भली प्रकार से किया गया है । आचार्य विष्णुशर्मा तथा नारायण पंडित की बहुज्ञता अपने-अपने ग्रन्थों में पग-पग पर प्रकट होती है । प्रयोजन को ध्यान में रखकर ही दोनों ग्रन्थों की रचना की गई है ।

---

1. कस्मिंश्चिन्नगराभ्याशे केनापि वणिक्पुत्रेण तरुषण्ड मध्ये देवायतनं कर्तुमारब्धम् । तत्र च ये कर्मकराः स्थपत्यादयस्ते मध्यान्हवेलायामाहारार्थं नगरमध्ये गच्छन्ति । अथ कदाचिदानुषंगिकं वानरयूथमितश्चेतश्च परिभ्रमदागतम् । तत्रैकस्य कस्यचिच्छि-ल्पिनोऽर्धस्फाटितो ऽर्जुनवृक्षदारुमयः स्तम्भः खदिरकीलकेन मध्यनिहितेन तिष्ठति । एतस्मिन्नन्तरे ते वानरास्तरुशिखरप्रासादशृंगदारुपर्यन्तेषु यथेच्छया क्रीडितुमा-रब्धाः । एकश्च तेषां प्रत्यासन्नमृत्युश्चापल्यात्तस्मिन्नर्धस्फाटितस्तम्भे उपविश्य पाणिभ्यां कीलकं संगृह्य यावदुत्पाटयितुमारेभे, तावत्तस्य स्तम्भमध्यगतवृषणस्य स्वस्थाच्चलित कीलकेन यद्वृत्तं तत्प्रागेव निवेदितम् ।

--- पंचतन्त्र - मित्रभेद -
कीलोत्पाटिवानर कथा ।

प्राचीन शिक्षण पद्धतियों में जन्तुकथा का स्थान एवं महत्त्व

प्राचीन काल के विज्ञ आचार्य जीवन के अनेक पहलुओं को भलीभाँति समझ कर जीवन की उस गहराई तक पहुँच गये थे जहाँ से वे अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त कर सके। जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति हेतु यह अत्यन्त आवश्यक था कि शिक्षा ग्रहण की जाये। शिक्षा की पद्धति उस काल में मात्र रटने रटानेकी ही थी। वेद के मन्त्रों को कण्ठस्थ कर उसी के बताये हुए आदर्शों पर अमल करना एक कठिन कार्य था। अतः इन आचार्यों ने मानव जीवन के अनेक उपयोगी प्रयोजनों को सिद्ध करने हेतु नवीन शिक्षण पद्धति की योजना बनाई। इस योजना में कथा के द्वारा शिक्षा प्रदान की जाने वाली थी। अतः कथा में कुछ विशेष पात्रों का आयोजन किया गया - ये था साधारण वनचारी जीव-जन्तुओं का समूह। इस पद्धति से एक लाभ यह हुआ कि इन कथाओं ने वैदिक युग से चली आ रही उस रूढ़िवादी, कठोर एवं स्वामित्व प्रदर्शनकारी रीति को मूल से ही झकझोर दिया। इस प्रकार नवीन स्वरूप प्राप्त यह शिक्षण पद्धति रोचक, मनोरंजक, सुलभता से ग्रहण करने योग्य ही नहीं अपितु जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र का ज्ञान कराने वाली भी सिद्ध हुई।

वैसे तो जन्तु कथा का प्रयोजन है उपदेश देना तथा रसानुभूति उसका आनु-षंगिक प्रयोजन है। वरन् यह कहना अधिक समीचीन होगा कि जन्तुकथा का प्रयोजन है सरस उपदेश देना। जीव-जन्तुओं पर आधारित कथाओं में अन्ततोगत्वा रसाभिव्यक्ति के साथ-साथ सहृदय सामाजिक पाठकों को क्षण भर के लिये मात्र मनःतुष्टि ही नहीं अपितु मानव जीवन के उन अलौकिक आदर्शों की प्राप्ति भी होती थी जो अन्य किसी शिक्षण पद्धति से असम्भव थी।

वास्तव में यह कार्य अत्यन्त दुष्कर था, क्योंकि विषयवस्तु की रोचकता निरन्तर बनी रहे और वक्ता अपने उद्देश्य से किंचित्मात्र भी विचलित न हो । वह जिस लक्ष्य को लेकर उपदेश दे रहा है वह लक्ष्य भी पूर्ण होना चाहिये ।

इस शिक्षण पद्धति में इस बात का ध्यान दिया जाता था कि कथा के मानवेतर प्राणी हों जो कि नायक-नायिका के रूप में श्रोता के समक्ष प्रस्तुत किये जा रहे हैं, अपने व्यवहार ज्ञान, नीति-कौशल द्वारा ही मानव जीवन को लक्ष्य करके उपदेश का माध्यम बनें । श्रोता इस शिक्षण प्रणाली के द्वारा मित्रवत् प्रदान किये जाने वाले उपदेश का आनन्द लेते हुये सुन्दर तथा नवीन ढंग से विचारों को ग्रहण कर लेता था । इतना ही नहीं बल्कि श्रोता अथवा पाठकगण इन पात्रों पर घटित घटना के साथ अपने को इस तरह जोड़ लेते थे कि उनके हर्ष, विषाद, करुणा, क्रोध जैसे संवेगात्मक तथा भावनात्मक तत्त्व उसके अपने हो जाते थे तथा कथा-यात्रा में पग-पग पर प्राप्त हुये उपदेशों से इसी निष्कर्ष पर पहुँच जाते थे कि किस कार्य का कौन सा फल होता है तथा उसे वे कार्य कदापि नहीं करने चाहिये जिन कार्यों द्वारा कथा में वर्णित पात्रों को कष्ट का सामना करना पड़ा था ।

नवीन शिक्षण प्रणाली को बनाने का सम्भवतः एक यह उद्देश्य भी रहा होगा कि वेदादि द्वारा प्रदत्त शिक्षा का कठोर प्रभाव सीधे मस्तिष्क पर होता है, जिसको अहंकारी अथवा कोमलमति बालकों के लिये समझ सकना दुष्कर होता है, दूसरी ओर कथा हृदयग्राही होती है वह अपनी सरलता के कारण ही श्रोता अथवा पाठक के हृदय में अत्यन्त सुगमता से प्रवेश कर मस्तिष्क में भी स्थान बना लेती है । उसमें वर्णित समस्त उपदेशों को अहंकारी अथवा सुकुमारमति बालक सुगमता से कब ग्रहण कर लेता है,

इसका आभास तो उसे स्वयं भी नहीं रहता है । इस प्रकार यह अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विधि है ।

इसी मनोवैज्ञानिक विधि का ही वर्णन पंचतन्त्र तथा हितोपदेश में भी प्राप्त होता है, जिसमें वनचारी जीव -जन्तुओं पर आधारित अनेक ऐसी उपदेशात्मक कथाएं हैं जो विभिन्न प्रकार की शिक्षाओं से परिपूर्ण हैं । इन कथाओं में ऐसा नहीं है कि कथा का निष्कर्षमात्र ही शिक्षात्मक हो अपितु प्रत्येक स्थानपर एक पात्र का दूसरे पात्र से होने वाला वार्तालाप भी अत्यन्त शिक्षात्मक है । प्रत्येक कथा विभिन्न प्रकार के उपदेशों से भरा पड़ा है ।

इस प्रकार इस शिक्षण प्रणाली पर रचे गये पंचतन्त्र तथा हितोपदेश की महान् सफलता ही जन्तुकथा के महत्वपूर्ण स्थान का दुन्दुभिनाद करती है ।

<u>प्राचीन शिक्षण पद्धति में जन्तु कथा</u> :-

वर्तमान की जड़ अतीत में होती है । किसी भी साहित्य का अतीत उसकी वर्तमान एवं भावी प्रेरणा का मूलस्रोत होताहै । प्राचीन भारत की यह विशेषता थी कि इसका निर्माण राजनैतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक क्षेत्र में न होकर धर्म-क्षेत्र में हुआ था । जीवन के प्रायः सभी अंगों में धर्म का प्राधान्य था । हमारे पूर्वजों ने जीवन की जो व्याख्या की तथा अपने कर्त्तव्यों का जो विश्लेषण किया, वह सभी उनके बृहत्तर आध्यात्म ज्ञान की ओर संकेत करता है । उनकी राजनैतिक तथा सामाजिक वास्तविकताएं केवल भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत ही बँधकर नहीं रह गई, वरन् उन्होंने जीवन को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा और "सर्वभूतहिते रतः" होना ही अपना कर्तव्य

समझा । प्राचीन भारतीय साहित्य एक प्रकार से धर्म का वाहन है, जैसा कि मैकडॉनल ने कहा है कि प्राचीनतम वैदिक काव्य के सृजन-काल से ही हम भारतीय साहित्य पर एक प्रकार से लगभग एक हजार वर्ष तक धार्मिक छाप लगी हुई पाते हैं, यहाँ तक कि वैदिक काल के वे अन्तिम ग्रन्थ, जिन्हें हम धार्मिक नहीं कह सकते, अपना धर्म प्रसार का उद्देश्य रखते हैं यह वास्तव में "वैदिक" शब्द से प्रकट होता है, क्योंकि "वेद" का अर्थ ज्ञान "विद" मूल धातु से होता है तथा सम्पूर्ण पवित्र ज्ञान का साहित्य की शाखा के रूप में बोध कराता है ।"[1]

वेदकालीन शिक्षण पद्धति :-

प्राचीन काल में विद्यार्थी इस जगत के सम्पूर्ण विप्लव और विद्रोह से परे प्रकृति की रमणीय गोद में अपने गुरु के चरणों में बैठकर जीवन की समस्याओं का श्रवण, मनन और चिन्तन करता था । पर्वत पर पड़ी हुई प्रथम हिमकणिकाओं की भाँति उसका जीवन पवित्र था । सम्पूर्ण जीवन ही उसके लिये प्रयोगशाला थी । इस काल की शिक्षण प्रणाली की एक यह विशेषता थी कि शिक्षा जीवनोपयोगी थी । गुरु-गृह में रहते हुए विद्यार्थी समाज के सम्पर्क में आता था ।

प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त में पक्षियों के जागने से पूर्व ही विद्यार्थी वेद पाठ प्रारम्भ करते थे । इस युग में मन्त्र-गान ललित कला के रूप में विकसित हो गया था । इसमें शब्दों, पदों तथा अक्षरों के शुद्ध उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाता था । श्लोक की रचना पदों से तथा पदों के अक्षरों से होती थी । वैदिक ज्ञानशिक्षक के द्वारा

---

1. Macdonell: Sanskrit Literature.

एक निश्चित व नियन्त्रित उच्चारण के साथ शिष्य को प्रदान किया जाता था, जिसे शिष्य कंठाग्र कर लिया करता था । गुरु के अधरों से प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही शुद्ध समझा जाता था, इससे यह प्रतीत होता है कि उस काल में मौखिक पद्धति ही थी । सम्भवतः वर्णमाला व लेखन कला का अभी तक विकास नहीं हुआ था । ऐसा भी कहा गया है कि श्रुति अर्थात् वेद चक्षुओं को नहीं अपितु कानों को रुचिकर होना चाहिए । महाभारत तो ऐसे व्यक्तियों को नरक जाने का दण्ड देता है जो वेद को लिखने का प्रयास करें ।[1] गुरु अपने निर्देशन में शिष्यों को वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करवाते थे, प्रत्येक पाठ के आरम्भ में छात्र गुरु का चरण स्पर्श करते थे और उससे पाठ प्रारम्भ करने की प्रार्थना करते थे । यह प्रथा पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में भी परिलक्षित होती है ।[2] गुरु गम्भीर वाणी में मन्त्रों का उच्चारण करते थे और छात्र उसका अनुसरण करते थे । गुरु उच्चारण किये गये मन्त्रों की व्याख्या भी करते थे । वैदिक काल में शिक्षा की प्रणाली वैयक्तिक थी । इस सम्बन्ध में मिरडेल ने लिखा है - "हिन्दू धर्म की सीमा में शिक्षा की पद्धति वैयक्तिक थी, क्योंकि प्रत्येक गुरु के अपने स्वयं के शिष्य होते थे ।"[3] ऋग्वेद में कुछ ऐसे आख्यान, उदाहरण अथवा दृष्टान्त हैं[4] जिनके द्वारा नीतिकथा का पूर्वरूप देखा जा सकता है । वेदकालीन शिक्षा धर्म प्रधान थी । उस युग में प्रकृति की गोद में ही पलकर बड़े हुए लोग अधिकांशतः प्रकृति का ही उदाहरण दिया करते

---

1. वेदनां लेखकाश्चैव ते वै नित्य गामिनः - महाभारत आ० पर्व 106/92
2. पंचतन्त्र एवं हितोपदेश - प्रत्येक खण्ड का प्रारम्भ
3. The method of Education with in the bounds of Hinduism was individualistic; each guru had his personal disciples. Gunnar Myrdal: Asian Drama: Vol.III
4. ऋ०सं० - 8,34,3, 1-10-4, इत्यादि ।

थे ।[1] अपनेकथन की पुष्टि हेतु कतिपय आख्यानों का भी प्रयोग किया गया । उपदेश देने हेतु जन्तुओं की कथाएं कहने की आवश्यकता वैदिक ऋषियों को नहीं पड़ी । जंतुओं का मात्र दृष्टान्त देकर ही उन्होंने अपने कथन की पुष्टि की । जो कुछ कथाएं जंतुओं प्राप्त भी होती हैं, जैसे सरमापणि आख्यान आदि तो वे कथाएं शिक्षा देने के उद्देश्य से नहीं कही गई थीं वे वास्तव में सम्वाद आख्यान हैं । तथापि इस कथा से दूत के सद्गुणों की शिक्षा भी प्राप्त होती है । अतः उसे जन्तु कथा का पूर्वरूप तो कहा ही जा सकता है । उसी जन्तुकथा का विकास आगे चलकर महाभारत पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में हुआ । परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि तत्कालीन शिक्षा पद्धति में उनका कोई विशेष स्थान रहा होगा ।

उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा :-

वैदिक युग में शिक्षा-क्षेत्र में पुरोहितवाद का प्रभाव बहुत बढ़ गया था और यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान का अत्यन्त विस्तार हो गया था । किन्तु ऐसे जिज्ञासु भी थे जो जीवन के ऊपर रहस्यमयी दृष्टि रखते थे और ईश्वर, आत्मा, जीव और सृष्टि इत्यादि गम्भीर तत्वों पर चिन्तन करते थे । उत्तर वैदिक युग में यह प्रवृत्ति अधिक वेगवती हो गई । दार्शनिकों के अनुभवों का प्रकटीकरण "ब्राह्मण" तथा "आरण्यक" नामक रचनाओं के रूप में हुआ । उत्तर वैदिक शिक्षा का ज्ञान ब्राह्मण, आरण्यक तथा

---

1. ऋ०सं० 4,26,4
   प्र सुषविभ्यो मारुतो विरस्तु प्रश्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ।"
2. वही - 4,27,1
   गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
   शतं मा पुरआयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ।।

उपनिषद् के माध्यम से ज्ञात होता है । इस काल की शिक्षा का प्रसार शाखा, चरण, परिषद्, कुल और गोत्र इत्यादि संस्थाओं द्वारा हुआ ।

वेदकालीन शिक्षण पद्धति में शिष्य को ज्ञान सीधा प्रदान किया जाता था । इसमें गुरु का प्रमुख स्थान था । किन्तु उत्तर वैदिक काल की शिक्षण पद्धति में शिष्य को मुख्य स्थान प्राप्त था । गुरु एवं शिष्य दोनों के मध्य प्रश्नोत्तर होते थे । समस्याओं के समाधान एवं प्रश्नोत्तर के माध्यम से ज्ञानवर्द्धन कराया जाता था ।

उपनिषद् काल की शिक्षण पद्धति-

उपनिषद् काल की शिक्षण पद्धति तो मुख्य रूप से वाद-विवाद पर ही आधारित थी । ऋग्वेद की ही भाँति शिक्षा अधिकतर वाणी के माध्यम से प्रदान की जाती थी ।

वृहदारण्यकोपनिषद् में तीन प्रमुख पद्धतियाँ उल्लिखित हैं[1] -

1. श्रवण
2. मनन
3. निदिध्यासन

श्रवण को छः भागों में विभाजित किया गया है -

1. उपक्रम
2. अभ्यास
3. अपूर्णता
4. फल
5. अर्थवाद
6. उपपत्ति

मनन द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जाता था । योग व तपस्या से भी परमज्ञान प्राप्त किया जाता था ।

---

1. वृहदारण्यकोपनिषद् :

इस युग में ऐतरेय ब्राह्मण में कतिपय पशु-पक्षियों को स्थान मिल गया था। इस तथ्य का प्रबल प्रमाण सौपर्णाख्यान[1] है। इस काल की शिक्षण पद्धति में जन्तुकथा सम्बन्धी बीज पाये जाने लगे थे। जन्तु कथाओं में मनुष्यवत् व्यवहार करने वाले जीवों का उल्लेख भी वृद्धि पर था यद्यपि इसका सूत्रपात ऋग्वेद की सरमापणि कथा में ही हो चुका था एवं परिपक्व रूप पंचतन्त्र ही नहीं वरन् हितोपदेश में भी परिलक्षित हुआ। परिषदों एवं सम्मेलनों द्वारा ज्ञानवर्द्धन किया जाता था। ऋग्वेद से लेकर उपनिषद् काल तक शिक्षण पद्धति में जन्तु कथा के बीज किंचित् अंकुरित होने लगे थे। इसी का पूर्ण विकसित रूप पंचतन्त्र एवं हितोपदेश जैसे विशाल उपदेशात्मक कथासंग्रह में देखा जा सकता है।

महाकाव्य काल में शिक्षण पद्धति

रामायण :-

रामायण प्राचीन भारत का एक प्रमुख ग्रन्थ है। तत्कालीन शिक्षण पद्धति में ब्राह्मण काल की शिक्षा के समान ही कुछ नियम थे। ये नियम धर्म-सूत्र पर आधारित थे। विश्वामित्र एवं वशिष्ठ जैसे महान् गुरुओं का उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है। इस काल में भी वेदकाल से चली आ रही गुरु गृह में निवास करते हुए अध्ययन प्रणाली को भली प्रकार से अपनाया गया। इस युग में जन्तु कथा का विकास हुआ किन्तु शिक्षण पद्धति में इसे स्थान प्राप्त हुआ हो ऐसा उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। शिक्षा लगभग उसी औपचारिक ढंग से दी जाती थी जैसी परम्परा वेदकाल से चली आ रही थी।

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण - 3-13-1-2

रामायण में कतिपय स्थानों पर उपदेशार्थ जन्तु कथा का प्रयोग किया गया है, किन्तु शिक्षण पद्धति में इसके स्थान की बात स्पष्टतः नहीं प्रतीत होती है। तथापि इस काल में जन्तु कथाओं के माध्यम से अनेक व्यवहारिक एवं नीति विषयक उपदेश दिये जाते थे। इससे यह प्रतीत होता है कि शिक्षण पद्धति में जन्तु कथा के माध्यम से शिक्षा भले ही न प्रदान की जाती हो, किन्तु उपदेश का माध्यम अवश्य हो गई थी।

महाभारत काल की शिक्षण विधियों में जन्तुकथाएं :-

महाभारत काल में लौकिक अर्थ की महत्ता को ध्यानदिया जाने लगा था। नीतिशास्त्र का प्रयोग ऐहिक जीवन की सफलता हेतु माना जाता था और यह भी निश्चित था कि ऐहिक जीवन में सफल व्यक्ति परलोक में भी मोक्ष को प्राप्त होता है। इसी कारण महाभारत पर नीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का काफी प्रभाव पड़ा है। महाभारत में राजधर्म का उपदेश देने हेतु नीति कथाओं का विशेष रूप से प्रयोग किया गया। पुरुषार्थ चतुष्टय का उपदेश कथाओं के माध्यम से भी दिया जाने लगा था। दृष्टान्त के रूप में प्रयुक्त ये नीतिकथाएं अपनी प्राचीनता को सिद्ध करते हुए उस समाज की भी परिचायक हैं।

महाभारत में अनेक स्थलों पर विभिन्न नीतियों की शिक्षा देने हेतु पुराने इतिहास अथवा दृष्टान्त का उल्लेख किया गया है। शान्ति पर्व इस प्रकार के नीतिपूर्ण उपदेश देने वाली जन्तुकथाओं से विशेष रूप से भरी है।

शान्ति पर्व में एक श्वानकथा मिलती है।[1] इसके आरम्भ में भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा है कि "इस विषय में सज्जन लोग संसार में किस प्रकारका आचरण करते हैं,

1. महाभारत - शान्ति पर्व - अध्याय - 116

इसे दिखाने के लिये दृष्टान्त नामक पुराना इतिहास कहा जाता है । इसी कथा की तरह दूसरी एक और कथा मैंने तपोवन में सुनी थी । यह कथा ऋषियों ने जमदग्नि के पुत्र राम को कही थी ।" इससे ऐसी स्पष्ट प्रतीति होती है कि महाभारत के पूर्व भी नीति के उपदेश देने हेतु इस प्रकार की जन्तु कथाओं का प्रयोग किया जाने लगा था । यह तो स्पष्ट ही है कि महाभारत में नीतिकथाओं को सर्वाधिक स्थान शान्तिपर्व में ही मिला है । इसमें अनेक नैतिक आख्यान हैं तथा लगभग 13 नैतिक कथाएं हैं ।

मनुष्य की सही पहचान का उपदेश व्याघ्र-गोमायु संवाद से दिया गया है।[1] इतना ही नहीं वरन् आलस्यजन्य दोष का परिहार एक कुशल राजा को करना चाहिए यह उपदेश देकर एक आलसी ऊँट का दृष्टान्त भी दिया है जो आलस्य के कारण अपनी प्राण तक गँवा देता है ।[2] इस कथा का सारतत्व से यह स्पष्ट होता है कि आलसी आदमी का नाश अवश्यम्भावी है । भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा "तुम्हें भी आलस्य छोड़ कर इन्द्रिय-निग्रह एवं उद्योग करना चाहिये । इस कथा का पूर्ण उद्देश्य लौकिक ही है । पितामह भीष्म ने स्पष्ट शब्दों में राजा से कहा है कि -

"मैं तुम्हें कर्तव्य के विषय में मुख्य सिद्धान्त अर्थात् राजा इहलोक में किस प्रकार व्यवहार करे और उसे सुखी होने के लिए क्या करना चाहिये । इस बारे में कहूँगा ।" इसी लिए इन्होंने ऊँट का यह दृष्टान्त देकर राजा को आलस्यजन्य दोष का परिहार करने का उपदेश दिया । भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से एक श्वान सम्बन्धी[3] लघुकथा कही थी जिसके प्रारम्भ में भीष्म ने कहा है कि वह "प्राचीन इतिहास" है । इस प्रकार की कहानी तपोवन में ऋषियों ने परशुराम से कही थी । उसी कथा को भीष्म

---

1. महाभारत - शान्तिपर्व - 30-111
2. वही, शा०प० राजधर्म पर्व - अध्याय - 112
3. वही, 116-117

ने युधिष्ठिर को सुनाया । सम्भवतः पूर्व वैदिक काल में वर्णित जो आख्यान-साहित्य इतिहास के रूप में जाना जाता था, उसी काल से ही श्वान सम्बन्धी कथाएं प्रचलित रही हों और उसी का ही यह महाभारत कालीन रूप है । इस कथा में भीष्म का यह उपदेश है कि योग्यता देखकर ही राजा को किसी भृत्य को उच्च पद पर स्थापित करना चाहिए । ऐसा प्रतीत होता है कि यह आख्यान प्राचीन काल से ही लोगों में लोक-विश्वास के रूप में था कि प्राणी अपना रूप छोड़कर दूसरा रूप धारण कर लेता है । महाभारत में इसी का ऋषि की तपस्या के प्रभाव से रूपान्तर ग्रहण दिखाया गया है ।

इसी प्रकार की अनेक जन्तु कथाएं महाभारत में यत्र तत्र बिखरी हुई हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार के उपदेश दिये गए हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि उस काल में जन्तु कथाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की प्रणाली अत्यधिक विकसित हो चुकी थी और इस माध्यम से इहलोक तथा परलोक दोनों में ही सफलता प्राप्त करने के उपाय बताए जाने लगे थे । परोक्ष रूप से ये कथाएं पुरुषार्थ चतुष्टय का उपदेश देने का भी साधन बन चुकी थी ।

<u>बौद्धकाल की शिक्षण पद्धति</u> :-

बौद्ध काल से पूर्व जन्तु कथा का शिक्षण पद्धति में क्षीण अस्तित्व प्रकट होता है । बौद्ध काल में जन्तु कथाओं को उपदेश का माध्यम बनाया गया । बौद्ध शिक्षा निवृत्ति-प्रधान थी । इसका उद्देश्य जीवन में "निर्वाण" प्राप्त करना था, अतः इस काल की शिक्षा भी धर्म प्रधान थी । किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं था कि तत्-

कालीन समाज में लोग धर्म का ही अध्ययन करते थे और देश में जीवनोपयोगी शिक्षा का अभाव था । वास्तव में बौद्ध काल में लौकिक शिक्षा पर भी विशेष बल दिया गया था। बुद्धदेव ने जनता की वाणी में ही छोटी-छोटी जन्तुकथाओं के माध्यम से जनता को उपदेश दिये थे । ऐसा नहीं है कि ये सभी कथाएं बुद्धदेव द्वारा रचित ही हों, बल्कि ये कथाएं उस काल में समाज में प्रचलित थीं तथा घर में सुनी व कही जाती थीं । ये जन्तु कथाएं लोककथाएं थी, इन्हीं को दृष्टान्त स्वरूप रखकर बुद्धदेव ने जीवन के मार्मिक मूल्यों का तथ्य जनता के समक्ष प्रस्तुत किया । अपने कथन, तथ्य एवं सिद्धान्तों की पुष्टि हेतु कथाओं का आश्रय लिया गया । यद्यपि यह पद्धति प्राचीनकाल से चली आ रही थी।

बौद्धकाल में शिक्षण पद्धति में तर्क-प्रणाली का विकास और भी अधिक हो गया । मठों एवं विहारों में विभिन्न गूढ़ तत्वों पर प्रायः तर्क-वितर्क द्वारा विषयों को समझा जाता था । जन्तु कथाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की प्रवृत्ति का विकास हो चुका था। पिटकों एवं जातकों में अनेक जन्तु कथाएं भरी पड़ी हैं ।

बौद्धकाल की शिक्षण पद्धति मुख्य रूप से मौखिक थी एवं रटने पर विशेष बल दिया जाता था किन्तु रटने के बाद छात्र को कण्ठस्थ की हुई बातों पर मनन करना पड़ता था । वाद-विवाद, तर्क, विश्लेषण, व्याख्या और स्पष्टीकरण की विधियों का भी प्रयोग किया जाता था । ह्वेनसांग ने शिक्षण की अन्य विधियों के बारें में इस प्रकार लिखा है - "शिक्षक पाठ्यवस्तु का सामान्य अर्थ बताते हैं और छात्रों को सविस्तार पढ़ाते हैं । वे उन्हें परिश्रम के लिये प्रोत्साहित करते हैं और कुशलता से उन्नति के पथ पर अग्रसर करते हैं । वे क्रिया शून्य छात्रों को निर्देशित करते हैं और मन्द-बुद्धि विद्यार्थियों को ज्ञान के अर्जन के लिये उत्सुक करते हैं । यद्यपि वेद काल से लेकर

पुराणकाल तक जन्तु कथाएं पाठ्यक्रम में प्रत्यक्ष रूप से नहीं थी, किन्तु ये जन्तु कथाएं लोककथाओं के रूप में अति प्राचीन काल से समाज में स्थान प्राप्त कर चुकी थीं, अतः इनमें लोक कथाओं में वर्णित जन्तु कथाएं अनौपचारिक शिक्षा के केन्द्र के रूप में शिक्षा प्रदान करने में पूर्ण रूप से सक्षम थीं । कालान्तर में यह ज्ञात होने पर कि ये जन्तुकथाएं सुबोध एवं सुगम्य हैं, विष्णुशर्मा ने मात्र इन्हें ही शिक्षण का माध्यम बनाकर शिक्षा प्रदान की इसी परम्परा का हमें हितोपदेश में भी दर्शन होता है ।

शिक्षण पद्धति में जन्तुकथा का महत्व

1. जीवों के व्यवहार से नीति का ज्ञान
2. मनोरंजनात्मक ढंग से लौकिक व्यवहार का ज्ञान
3. कल्पना शक्ति का विकास
4. जीवन के चरमोद्देश्य की प्राप्ति
5. सुहृदसम्मित उपदेश का माध्यम
6. शिक्षा प्रदान करने का स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक माध्यम

1. जीवों के व्यवहार से नीति का ज्ञान :-

प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि चिर प्राचीनकाल से ही जन्तु कथाएं शिक्षण पद्धति में भले ही नहीं थी किन्तु लोककथाओं के रूप में समाज के मनुष्यों के मानसपटल पर शिक्षा प्रदान करने का साधन बनी हुई थीं । ऋग्वेद काल में जीवों के दृष्टान्त देकर अपनी बात को स्पष्ट करने की प्रथा थी । शनैः शनैः इस प्रथा का विकास हुआ और यह शिक्षण पद्धति के रूप में पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में परिलक्षित हुई, जीव जन्तुओं का उदाहरण देकर समझाई गई बात जनसाधारण के लिये सुगम एवं ग्राह्य थी । पशुओं को माध्यम बनाकर प्रदान किये जाने वाले उपदेश आबालवृद्ध सभी के लिये शनैः शनैः

प्रिय हो बैठे । अतः निश्चित ही इस शिक्षण पद्धति को अपनाने में विचारकों तथा शिक्षकों को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई होगी ।

कथा सुनाते समय वक्ता एवं सुनते समय श्रोता दोनों के ही मानस पटल पर कथा में वर्णित जीव अथवा जीवों के प्रति साधारणीकरण हो जाता है । यह स्थिति न केवल अशिक्षित समाज में ही अपितु शिक्षित समाज में भी थी । जनसाधारण में ये कथाएं परम्परागत प्राप्त की जाने लगीं तथा वे लौकिक कथाओं के रूप में समाज में प्रचलित होकर जनसाधारण को भी अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा प्रदान करने का साधन बनीं रही । पंचतन्त्र तथा हितोपदेश में भी इसी परम्परा को अपनाया गया है । आचार्य विष्णु शर्मा ने भी इसी परम्परा को अपनाया । बर्मा के लोक-साहित्य में प्रयुक्त "लोककथा" वास्तव में नीतिकथा ही है ।[1]

सम्भवतः प्राचीन युग में यह प्रणाली उदाहरण द्वारा व्यक्तियों को चेतावनी प्रदान करने का एक अच्छा माध्यम हुई जिसमें न सत्य की कटुता थी और न ही दुर्लभ ग्राह्यता । पंचतन्त्र की रचनाकाल तक में इस प्रणाली के प्रति समाज का लगभग सभी वर्ग यह समझ चुका था कि यह पद्धति सत्य को अनजाने ही मन में प्रविष्ट कराएगी तथा किसी को अप्रिय न लगकर सभी मनुष्यों को एक अच्छे मार्ग दर्शन भी कराएगी ।[2]

---

1. J. Gray, Burmese Proverbs and Maxims, London, 1860.
   - Introduction p.p. ix-x and pp. 1-36
2. Editor G. Meir Bussey: Fables', Introduction p. vi.
   "They appear", says an admirable writer on the subject "to have arisen

...... अगले पृष्ठ पर

पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में वर्णित अनेक कथाओं के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि नीति की शिक्षा प्रदान करने में ये जन्तु कथाएं विशेषरूप से सहयोगी हैं । सर्वप्रथम कथा को सुनाने वाला व्यक्ति कथा में वर्णित जीव के व्यवहार का भली प्रकार से अध्ययन कर लेता है, फिर जब वह श्रोता के समक्ष कथा को सुनाता है तो श्रोता के भीतर भी उस कथा में वर्णित जीव के व्यवहार को जानने की इच्छा जागृत होती है । जैसे सियार चालाक जीव होता है, अतः उसका वर्णन सर्वत्र चालाक पशु के रूप में ही होता है एवं कुत्ता स्वामिभक्त पशु है तो उसका वर्णन स्वामिभक्ति के रूप में ही किया जाता है ।

पिछले पृष्ठ से -

among a people, who as hunters or shepherds, most probably the latter had ample opportunities of observing the conduct of men to men; and when such conduct among their companions happened to come under their notice, they would naturally quote the illustration, for the sake of the instruction of reproof it conveyed. Besides, in a limited society, this method of conveying warning or reproof was perhaps the only one which could by applied without offence. It must soon have been clear to those reflective minds which have existed among all people, and in all ages, that it was desirable to adopt some form of instruction which might insinuate the truth, and bequite men into goodness, without giving just cause of offence to any. In this case, the apologue was evidently the most obvious and simple recourse; extracting from the common objects by which men were surrounded, from the animals which were familiar to them, lessons of instructions, warning and reproof".

2. मनोरंजनात्मक ढंग से लौकिक व्यवहार का ज्ञान :-

जन्तुकथाओं में मनोरंजनात्मक तत्त्व की अधिकता होती है । सम्पूर्ण कथा का ढाँचा शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ मनोरंजक भी होता है । जन्तुकथाएं मनोरंजक तो होती हैं तथापि इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि कथा कहने का मूल प्रयोजन जो कि शिक्षाप्रद है, अवश्य सिद्ध होना चाहिए । एक पाश्चात्य विद्वान ला फॉन्टेन के अनुसार - "नीतिकथा जैसी बाहर से दिखाई देती है, वैसी नहीं होती । हमारे नीति का पाठ देने वाले हैं चूहे और छोटे से हिरन । निरा उपदेश सुनने में हमें कोई रुचि नहीं होती, किन्तु बड़े चाव के साथ हम नीतिकथा की ओर आकृष्ट होते हैं और इस प्रकार मनोरंजन के साथ कुछ सीख भी लेते हैं ।"[1]

कथाएं आबालवृद्ध सभी में शिक्षा प्रदान हेतु एक अच्छा साधन मानी गई हैं । उस पर से जन्तुकथाएं जो एक संस्कार विशेष के कारण विशेष रूप से समस्त प्राणिजन के मध्य आज भी शिक्षण के एक सक्रिय साधन के रूप में हैं । कथा कहते समय इस बात का विशेष ध्यान इसीलिये रखा जाता है कि कथा में शिक्षात्मक बिन्दु के साथ-साथ मनोरंजन का भी पुट हो, क्योंकि जीवजन्तुओं की विभिन्न गतिविधियों में ही श्रोता को अंत तक रुचि रहती है, इस रुचि के अभाव में तो जन्तुकथा को कोई भी पढ़ना भी नहीं चाहेगा । जीवजन्तुओं की गतिविधियों में रुचि लेने की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही बालकों

---

1. La Fontaine:
"Fables in sooth are not what they appear; Our moralists are mice, and such small deer. We yawn at sermons, but we gladly turn to moral tales, and so amused we learn." - Encyclopaedia Britannica, Vol. 9, ed. 1954, p.21

में होती है वास्तविक जीव जन्तुओं के मध्य न रह सकने के कारण इस इच्छा की पूर्ति जीवों पर आधारित कथाओं अथवा खिलौने से खेलकर की जाती है । अन्तर यह है कि खेल में मात्र मनोरंजन होता है कोई शिक्षा नहीं मिलती है, किन्तु कथाओं के द्वारा मनोरंजनात्मक ढंग से शिक्षा प्राप्त होती है । जन्तुकथाओं में मनोरंजन का तत्व न हो कर यदि मात्र शिक्षा ही होगी तो वह वेद जैसा कठोर शिक्षा जो जाएगी । इन जन्तुकथाओं को नीतिकथाओं की संज्ञा देना अनुचित न होगा, क्योंकि जन्तुकथाओं के माध्यम से भी नीति की शिक्षा प्रदान की जाती है । कतिपय कोशकारों ने जन्तुकथाओं में वर्णित नीति की रोचकपूर्ण प्रस्तुति के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं ।[1-3]

मारिया लीच ने लोक-साहित्य-कोश में जन्तुकथाओं के इसी रूप को स्वीकारा है -
"An animal tale with a moral; a short tale in which animals appear a character, talking and acting like human beings, though as its purpose the pointing of a moral".

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जन्तुकथाओं में मनोरंजनात्मक तत्व होता है तथा इसके माध्यम से शिक्षा में रुचि उत्पन्न की जा सकती है, शिक्षण पद्धति में जन्तुकथाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना एक स्वस्थ साधन है एवं शिक्षण पद्धति में इसका विशेष स्थान है ।

---

1. Fable, a story in which non-human creatures or lifeless things behave like human beings.
   - Cassell's Encyclopaedia of Literature; Vol. 1, pt. I edited by Steinburg, London.
2. Chamber's Encyclopaedia, 'Fable'.
3. Fable, in literature; a term applied originally to every imaginative tale, but confined in modern use to short stories, either in prose or verse which are meant, to inculcate a moral lesson in a pleasant garb.
   - The New Popular Encyclopaedia, p.291.

3. कल्पना शक्ति का विकास :-

जन्तु कथाओं में कल्पना नामक तत्व का विशेष स्थान होने के कारण वक्ता एवं श्रोता दोनो के समक्ष पात्र की कल्पना स्पष्ट आ जाती है । वक्ता एवं श्रोता के ही सामने पंचतन्त्र में वर्णित अण्डों के विनष्ट हो जाने से शोकाकुल होकर विलाप करने वाली चटका अथवा हितोपदेश में वर्णित नीलकुण्ड में गिरकर रँगा हुआ श्रृगाल तुरन्त उपस्थित हो जाते हैं यद्यपि यह ज्ञात रहता है कि यह कथा काल्पनिक है तथापि कथा में वर्णित ये जीवजन्तु मनुष्यवत् व्यवहार करके अत्यन्त रोचक ढंग से शिक्षा प्रदान करते हैं एवं कल्पना शक्ति का विकास करने में सहायक होते हैं । पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की कथाओं में कल्पना तत्व की प्रधानता है इन दोनों ग्रन्थों की ख्याति का यह एक बहुत बड़ा कारण है ।

जीवजन्तुओं के व्यवहार के माध्यम से साधु एवं असाधु कार्यों का ज्ञान भली-भाँति हो जाता है । साधारण जीवों के मानववत् व्यवहार को देखकर विशेष कौतूहल उत्पन्न होता है ।कथा में वर्णित अनेक जीव जन्तु जिनका दर्शन भी पहले कभी नहीं किया होता है उसे भी अपनी कल्पना में कोई न कोई रूप प्रदान कर मानसपटल पर अंकित कर लिया जाता है जैसे जैसे कथा आगे बढ़ती जाती है वैसे वैसे कल्पना का स्वरूप भी परिवर्तित होता जाता है और इस प्रकार इस पद्धति के द्वारा कल्पना शक्ति का विकास होता है ।

4. जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति :-

जन्तु कथाओं को सुनाने का अपना एक विशेष उद्देश्य होता है । पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की रचना भी सोद्देश्य ही की गई थी । इन दोनों ही ग्रन्थों में कथाओं के

माध्यम से विभिन्न प्रकार की शिक्षाएं मनोरंजनात्मक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं । जीवन का उद्देश्य है - धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति । यह उचित शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है । त्रिवर्ग प्राप्ति के पश्चात ही मनुष्य को मानव जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है । लौकिक व्यवहार का ज्ञान भी इन कथाओं के माध्यम से प्राप्त होने वाले ज्ञान के द्वारा सम्भव है । अतः शिक्षण पद्धति में जन्तु कथा के माध्यम से प्रदान की जाने वाली शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है । कतिपय कथाएं मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी जाती हैं एवं सुनाई जाती हैं और वे अपने उद्देश्य की भी पूर्ति करती हैं ।

5. सुहृत्सम्मित उपदेश का माध्यम :-

प्रत्येक रचना का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है, बिना प्रयोजन के कोई भी रचना नहीं रची जाती है । जन्तुकथाओं का प्रयोजन मनोरंजनात्मक ढंग से शिक्षा प्रदान करना है । आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजन में सुहृत्सम्मित उपदेश का उल्लेख किया है जो इष्ट तथा अनिष्ट अर्थों के बोधक होते हैं अर्थात् जिनके उपदेश "ऐसा करना ठीक है, ऐसा ठीक नहीं" का सौहार्द्र लिये और उचितानुचित का ज्ञान कराने वाले हुआ करते हैं । वास्तव में जन्तुकथाएं अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण उपदेश प्रदान करने वाली हुआ करती हैं, इनका एक ही प्रयोजन होता है - सरसोपदेश । यह सरसोपदेश रूप प्रयोजन ऐसा प्रयोजन है जो कथा को मानव-जीवन के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध करता है । कथा में जो कुछ भी वर्णित होता है, वह अन्ततोगत्वा पाठक अथवा श्रोता को मात्र क्षणिक मनोरंजन ही नहीं प्रदान करता अपितु मानव जीवन के आदर्शों को एक अलौकिक साधनादायक भी होता है । इसके द्वारा जिन जीवनादर्शों का वर्णन किया जाता है, वह वास्तव में मनुष्य के भीतर जन्म जन्मान्तरों से पल रहे संस्कारों के रूप में होते है । वेदादि के द्वारा

प्रदान किये जाने वाले उपदेश वास्तव में आज्ञा की कठोरता से परिपूर्ण होते हैं ।

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मित तयोपदेशयुजे ।।2।।

– काव्य प्रकाश, प्रथम उल्लास ।

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि जन्तुकथाओं का विशेष महत्त्व सुहृत्सम्मित उपदेशक होने के कारण भी शिक्षण पद्धति में है ।

6. शिक्षा प्रदान करने का स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक माध्यम :-

जन्तु कथाओं द्वारा शिक्षा मनुष्य के स्वभावानुकूल एवं उसके मानसिक स्तर के अनुकूल होती है, इसी कारण यह सुग्राह्य होती है । पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में मनोवैज्ञानिक आधार पर आश्रित अनेक ऐसी जन्तुकथाएं हैं जो कि मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल अनेक शिक्षाएं प्रदान करती हैं । आज के युग में भी शिक्षा को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रदान करने के ढंग पर विशेष बल दिया जा रहा है । जन्तुकथा इसका एक अच्छा माध्यम है । पंचतन्त्र एवं हितोपदेश दोनो ने ही इस पद्धति को अपनाया । अनेक प्रकार की शिक्षाएं जन्तुकथाओं के माध्यम से दी गई हैं । कथित अर्थ को तो पशु भी समझ लेते हैं, क्योंकि इंगितों द्वारा प्रेरित घोड़े और हाथी सवार को लेकर चलते हैं । किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति अकथित अर्थ को भी समझ लेता है । वस्तुतः दूसरे के अन्तस्थ भावों को उसकी आंगिक चेष्टाओं आदि के द्वारा जान लेना ही बुद्धि का कार्य होता है ।[1]

राजा अपने सन्निकटस्थ व्यक्ति से ही प्रेम करता है, चाहे वह व्यक्ति मूर्ख, अकुलीन तथा असभ्य ही क्यों न हो । राजाओं का यह स्वभाव होता है कि वे स्त्रियों

1. उदीरितोऽर्थः पशुनाऽपि गृह्यते, हयाश्च नागाश्च वहन्ति चोदिताः ।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेंगित ज्ञानफला हि बुद्धयः ।। 1-44 ।। पंचतन्त्र ।

और लताओं की तरह सन्निकटस्थ व्यक्ति या वस्तु को ही अपना स्नेह भाजन बनाते हैं।[1]

उपर्युक्त नीतिवाक्यों द्वारा शिक्षा प्रदान की गई है और ये नीतिवाक्य भी ऐसे हैं जो कि प्रतिदिन के लौकिक जीवन में व्यवहृत होते हैं । इसी प्रकार के नीतिवाक्यों का वर्णन पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की कथाओं के बीच-बीच में हुआ है जिसके द्वारा रचयिता को कथा में वर्णित उपदेश को सिद्ध करने में सहायता मिलती है । कथाओं के माध्यम से भी अनेक शिक्षाएं अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से दी गई हैं । पंचतन्त्र के प्रथम तन्त्र में वर्णित कीलोत्पाटन के कारण मृत्यु को प्राप्त होने वाले वानर की कथा अत्यन्त मनोरंजनात्मक एवं बाल स्वभाव के अनुकूल होने के कारण अतिशीघ्र प्रभावी होती है । इसी प्रकार से तृतीय अंक की मूषिका विवाह कथा अत्यन्त मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रकट करती है । कथा इस प्रकार है - "याज्ञवलक्य ऋषि ने श्येन के मुख से छूटी हुई एक चुहिया को अपने तपोबल से कन्या के रूप में परिवर्तित कर दिया । विवाह के योग्य हो जाने पर उस अपत्यहीन ऋषि ने जो कि मूषिका से परिवर्तित हुई उस कन्या को ही अपनी सन्तान समझते थे, उस के लिये उपयुक्त वर की खोज प्रारम्भ की । मुनि ने मन्त्रों के द्वारा सूर्य का आह्वान किया किन्तु सूर्य के दाहक होने के कारण कन्या ने विवाह से इन्कार कर दिया तब सूर्य ने मेघ के विषय में बताया किन्तु कन्या ने यह कहकर कि मेघ कृष्ण वर्ण एवं जड़ात्मा है, इस विवाह के प्रति अस्वीकृति प्रकट कर दी । ऋषि ने मेघ से उससे भी प्रकृष्टतर वर पूछा तो उसे पवन के विषय में बताया । विवाह हेतु पवन के आने पर भी कन्या विवाह हेतु तैयार न हुई तो पवन ने मुनि को बताया कि चूहे उससे श्रेष्ठतर हैं क्योंकि वे अनायास ही पर्वतों को काट डालते हैं । अंत में मुनि जब मूषकराज को बुलाकर लाया तो कन्या ने प्रसन्न हो

---

1. आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं, विद्याविहीनमकुलीनमसंस्कृतं च ।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यत्पार्श्वतो भवति तत्परिवेष्टयन्ति । पंचतंत्र 1/36.

कर मुनि से निवेदन किया कि उसे पुनः मूषिका के रूप में परिवर्तित कर दे जिससे कि वह स्वजातिविहित गृहिणी धर्म का पालन कर सके । कन्या की इच्छा के अनुसार मुनि ने उसे पुनः अपने तपोबल से मूषिका के रूप में परिवर्तित कर दिया । उक्त कथा में जहाँ यह तथ्य स्पष्ट हो रहा है कि मनुष्य स्वजाति का मोह सहज नहीं छोड़ता है, वहीं यह भी परिलक्षित हो रहा है कि मनुष्य अपने स्वभाव एवं संस्कारों को भी सरलता से नहीं छोड़ता है, यहीं पर इस कथा का मनोवैज्ञानिक तथ्य भी झलकता है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में जन्तुकथाओं का अस्तित्व चिरप्राचीन काल से था । पहले ये जीवनजन्तु मात्र दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत किये जाते थे, किन्तु शनैः शनैः शिक्षण पद्धति में भी इन जन्तुकथाओं ने अपने विशेष महत्त्व के कारण स्थान ग्रहण किया । ये छोटी छोटी कथाएं मानवजाति के जीवनादर्शों को आज भी प्रस्तुत करती हैं । जन्तुकथाएं अत्यन्त प्राचीन काल से ही कहीं पर शिक्षण पद्धति में प्रत्यक्ष रूप से तो कहीं लोककथाओं में वर्णित होकर अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करती चली आ रही हैं ।

मनुष्य को जीवन में नैतिकता का निर्माण करने हेतु कर्त्तव्य-स्वतन्त्रता की आवश्यकता होती है । नीति कथाओं में जीवन सम्बन्धी प्रायः जिन समस्याओं का वर्णन होता है , विशेषतः ये विषय हैं - पुरूषार्थ चतुष्टय, पुरूषार्थ और दैव, सामान्य धर्म, वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, स्त्री धर्म तथा मोक्ष । मा न व जीवन का परम लक्ष्य है - पुरूषार्थ चतुष्टय की समन्वित रूप में प्राप्ति । चतुर्वर्ग जीवन यात्रा के ऐसे नियमों का नाम हैं, जिन पर चलने से व्यक्ति का जी व न सुखी और समाज सुव्यवस्थित रहता है । धर्म से नियन्त्रित होकर धन कमाने और कामोपभोग करने से इहलोक तथा परलोक दोनों में ही शान्ति मिलती है । वास्तव में जीवन का मुख्य उद्देश्य धर्म, अर्थ तथा काम को ही प्राप्त करना नहीं अपितु मोक्ष को प्राप्त करना है । यह तभी सम्भव है जब कि धर्म से प्रेरित धर्म, अर्थ एवं काम का प्राप्ति समन्वित रूपेण हो जाये ।

मनुष्य की जब से विचारशीलता आरम्भ हुई है, दुख से निवृत्ति एवम् सुखप्राप्ति के अनेक साधनों पर वह देशकाल एवं परिस्थिति के अनुसार अपने आचार व्यवहार का नियमन करता रहा है । भारत में युगद्रष्टा ऋषियों-महर्षियों, आचार्यों, संत-महात्माओं ने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्रवृत्तियों का समन्वय करने एवं जीवन को सुख-समृद्धि पूर्ण बनाने हेतु जिस नैतिकता का आधार ले क र मानव को कर्त्तव्यारूढ़ होने के सन्देश एवं उपदेश दिये वे मनुष्य के जीवन - दर्शन के सुदृढ़ आधार हैं ।

पुरूषार्थ चतुष्टय अर्थात् चार प्रकार के पुरूषार्थ । पुरूषार्थ का अर्थ है - पुरूष का । अर्थात् मनुष्य का । अर्थ । अर्थात् प्रयोजन । अर्थात् मानव का लक्ष्य ।

चार पुरूषार्थ हैं - धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष । इन चार के अतिरिक्त संसार अथवा परलोक में कोई ऐसी वस्तु, कोई सुख, कोई प्राप्तव्य नहीं जो पुरूषार्थ हो, अर्थात् पुरूष के प्रयत्न द्वारा प्राप्त करने योग्य हो ।

पुरूषार्थ चतुष्टय भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है । यहाँ के मानव की बुद्धि अपने लक्ष्य के विषय में संशय अथवा द्विविधा से दोलायमान नहीं । मानव का पूर्ण विकास पुरूषार्थ चतुष्टय के सेवन से होता है । मोक्ष परम पुरूषार्थ है, जिसके एक बार प्राप्त हो जाने पर भविष्य में कुछ भी प्राप्तव्य नही रहता । अतः उसे विशिष्ट स्थान देते हुये अवशिष्ट तीनों को "त्रिवर्ग" संज्ञा दी जाती है। ये तीनों सम्यक सेवन किये जाने पर मोक्ष का आधार बनते हैं । इन तीनों का यथोचित अर्थात् समान सेवन करना ही कल्याणकारी होता है । चारो का समन्वय ही अभिप्रेत है - "धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या यो ह्येकसक्तः स नरो जघन्यः" अर्थात् धर्म, अर्थ एवं काम इन तीनों का समान सेवन करना चाहिये । जिस व्यक्ति की किसी एक के प्रति रूचि होती है, वह निन्द्य है ।

पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों तथा शारीरिक एवम् मानसिक तथ्यों को भलीभाँति समझते हुये ही नैतिक जीवन का निर्माण

करना मनुष्य योनि का परम उद्देश्य बताया गया है ।

धर्म :-

मानव जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है । धर्म के द्वारा ही विश्व के समस्त कार्यों का सम्पादन नियन्त्रित रूप में होता रहता है । इनके द्वारा ही अर्थ तथा काम का अस्तित्व है । धर्म इस विश्व का प्राणस्वरूप है । इसके द्वारा ही धार्मिक, सामाजिक तथा शैक्षिक जगत् में स्थान प्राप्त होता है । जगत् की समस्त वस्तुयें, समस्त शास्त्रादि पुरुषार्थ चतुष्टय पर ही आधारित हैं, उनमें कभी किसी में अर्थ की प्रधानता होती है तो किसी में काम की । धर्म प्रधान ग्रन्थ भी रचे जाते हैं, किन्तु समस्त ग्रन्थों में धर्म प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से विद्यमान अवश्य रहता है ।

धर्म शब्द का अनेक अर्थों में प्राचीन काल से ही प्रयोग किया जाता रहा है । वैदिक काल ही नहीं अपितु स्मृति, पुराणों, विभिन्न काव्यों तथा नीतिग्रन्थों में भी धर्म को विभिन्न रूपों में प्रकट किया गया है । धर्म प्राप्ति के अनेक साधनों को भी वर्णित किया गया है ।

धर्म शब्द "धृ" धातु से बना है, जिसका तात्पर्य है - धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना । धर्म शब्द का प्रयोग संज्ञा एवं विशेषण के रूप में प्रयोग किया जाता है । ऋग्वेद में अधिकांशतः "धर्म" धार्मिक विधियों या धार्मिक

क्रिया संस्कारों के रूप में ही प्रदर्शित होता है ।[1] ऋग्वेद की "तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्" ऋचा इस कथन का पुष्ट प्रमाण है ।[2] इसी प्रकार "प्रथमा:धर्मा:[3] "सनता धर्माणि"[4] का अर्थ क्रमश: "प्रथम विधियाँ" तथा प्राचीन विधियाँ हैं ।

वाजसनेयी संहिता में धर्म शब्द का अर्थ ऋग्वेद में प्रयुक्त अर्थ से काफी मिलता जुलता है ।[5] इसी संहिता में एक स्थान पर "ध्रुवेण धर्मणा" का भी प्रयोग प्राप्त होता है ।[6] अथर्ववेद[7] में धर्म शब्द का प्रयोग "धार्मिक क्रिया - संस्कार करने से अर्जित गुण" के अर्थ में हुआ है ।[8]

ऐतरेय ब्राह्मण में धर्म शब्द का प्रयोग समस्त धार्मिक कर्त्तव्यों के रूप में किया गया है ।[9]

उपनिषदों में "धर्मन्" बहुव्रीहि समास के पदों में प्रयुक्त है ।[10] उपनिषद के ही समान संस्कृत में भी धर्मन् शब्द का प्रयोग बहुव्रीहि समास के पदों

---

1. ऋग्वेद, 1.22.18, 5.26.6, 7.43.24, 9.64.1, आदि ।
2. वही, 1.164.43, 10.90.16
3. वही, 3.17.1, 10.56.3
4. वही, 3.3.1
5. वाजसनेही संहिता ।12.3, 5.27।
6. वही, ।10.29, 20.9।
7. अथर्ववेद ।9.9.17।
8. वही, ऋतं सत्यं तपोराष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च । भूतंभविष्यदुच्छिष्टेवीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ।
9. धर्मस्यगोप्ताजनीति तमभ्युत्कृष्टमेवंविदभिषेक्ष्यन्नेतयार्चाभिमन्त्रयेत् । ।ऐतरेय ब्राह्मण 7.17 तथा 8.13।
10. बृहदारण्यकोपनिषद - अनुच्छित्तिधर्मा तथा धर्मादनिच्छ केवलम् ।

में किया गया है ।[1]

छान्दोग्योपनिषद में धर्म का अर्थ उपर्युक्त वर्णित सभी अर्थों से पूर्णरूपेण भिन्न है । इस उपनिषद में धर्म की तीन शाखायें मानीं गई हैं -

1. गृहस्थ धर्म अर्थात् यज्ञ अध्ययन एवं दान,
2. तापस धर्म अर्थात् तपस्या,
3. आचार्य के गृह में अन्त तक रहना अर्थात् ब्रह्मचारित्व ।

इसी प्रकार भगवद् गीता में तथा तैत्तिरीयोपनिषद् में धर्म का अर्थ छान्दोग्योपनिषद में प्रयुक्त अर्थवत् है । ये दोनों ग्रन्थ क्रमशः "सत्यं वद", "धर्मम् चर" तथा "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" को धर्म की व्याख्या स्वीकार करते हैं । "वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों की शिक्षा देना ही धर्मशास्त्रों का कार्य है" - ऐसा तंत्रवार्तिक मानते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक धर्म में धर्म की परिभाषा अथवा धर्म का अर्थ समस्त चारो आश्रम में अथवा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक निश्चित नियम से बँधकर रहना उसी का आचरण करना स्वार्थ हेतु नहीं अपितु परमार्थ हेतु जीवन यापन करना है, जिससे इह लोक तथा परलोक दोनों ही सुदृढ़ बन सकें ।

---

1. पाणिनि - ।5.4.124। का सूत्र ।

धर्म का विभाजन दो भागों में किया गया है -

1. सामान्य धर्म,
2. विशेष धर्म

1. सामान्य धर्म :-

सामान्य धर्म अथवा मानव धर्म उस धर्म को कहते हैं जो प्राय: प्रत्येक मानव के लिये आचरणीय है, जिसका परिगणन निम्नलिखित श्लोक में इस प्रकार है -

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।[1]

अर्थात् धैर्य, क्षमा, मन को वश में रखना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों का दमन, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना - ये दस धर्म के लक्षण हैं । स्पष्ट है कि मानव जीवन में व्यक्ति एवं समाज के कल्याण के लिये उक्त धैर्य आदि धर्म को कितनी अधिक आवश्यकता है । इनमें से एक एक गुण में मनुष्य को महामानव बना देने की क्षमता है । पंचतन्त्र एवं हितोपदेश दोनों ही कथाग्रन्थों में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है । धर्म की महत्ता को अधोलिखित पंक्तियों में इस प्रकार बताया गया है -

"आहारनिद्राभय मैथुनंच,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।

1.

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीना: पशुभि: समाना: ।।"[1]

2. विशेष धर्म :-

विशेष वर्ण एवं आश्रम के लिये पृथक्-पृथक् धर्मों को निर्धारित किया गया है, जिनका पालन करना तत्तत् वर्ण एवं आश्रम के व्यक्तियों के लिये अनिवार्य माना जाता रहा है । ऐसे धर्मों को विशेष धर्म कहा गया है । ब्राह्मण का विशेष धर्म अध्ययन-अध्यापन आदि है तथापि संकटकाल अथवा परिस्थिति विशेष में वह व्यापार आदि भी कर सकता है, यद्यपि व्यापार आदि उसका नियत धर्म नही है।

वेद, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में भीधर्म का प्रतिपादन है । सदाचार एवं अन्तरात्मा जिसे स्वीकार करे, वह भी धर्म है । इस प्रकार - 1. वेद, 2. स्मृतियाँ, 3. सदाचार, 4. अंत-रात्मा के अनुकूल आचरण - ये चारो ही धर्म की विधायें हैं ।मनु भगवान् ने वेद के व्यापक रूप को प्रस्तुत किया है ।[2] देश, काल, परिस्थिति एवं व्यक्ति के भेद से विभिन्न नई समस्याओं का जन्म होता है । इन समस्याओं से छुटकारा पाने हेतु "स्वस्य च प्रियमात्मन:" प्रमाण है, साधुजन का अन्त:करण ही प्रमाण है जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तल में भी कहा गया है -

---

1. हितोपदेश सन्धि - श्लोक सं0 25
2. वेद: स्मृति सदाचार: स्वस्य च प्रियमात्मन: ।
   एतच्चतुर्विधं प्राहु: साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ।। मनुस्मृति - 2.12 ।।

"प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः ।"[1] मनु ने सदाचार तथा "स्वस्य च प्रियमात्मनः" कह कर मानव समाज को धर्म के व्यापक अर्थ और यथार्थस्वरूप से परिचित कराया । उन्होंने जो धर्म की व्याख्या की है, वह अनन्त काल तक सत्य रहेगी ।

2. अ र्थ

अर्थ शब्द का तात्पर्य मात्र धन से ही नही है, अपितु मनुष्य के काम आने वाली उन समस्त वस्तुओं का द्योतक है, जिनका उपयोग करके वह जीवित रहता है तथा विविध कार्यों का सम्पादन करता है । धन ही नहीं अपितु दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाली समस्त वस्तुयें अर्थ हैं । अर्थ के बिना न तो धर्म का सम्पादन सम्भव है और न ही काम ‖सुखों‖ का उपभोग, यहाँ तक कि जीवन यापन भी सम्भव नही है । व्यक्ति का अस्तित्व अर्थ पर ही निर्भर करता है । कौटिल्य अर्थ को राष्ट्र का मूल मानते हैं - "राष्ट्रस्य मूलमर्थः" ।

धन को "अर्थ" तो समझा जा सकता है किन्तु उसी धन को अर्थ समझा जायेगा जो धर्मसम्मत हो । अन्याय आदि से अर्जित धन अर्थ न होकर अनर्थ ही होगा । गीता में अन्याय से अर्थ का समन्वय करने वाले व्यक्तियों की निन्दा की गई है ।[2]

"प्राणधारण करने के लिये अर्जित भोजन भी पवित्र होना चाहिये । अधर्म द्वारा

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - प्रथम अंकः

2. ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् - गीता - 16.12

कमाया अन्न बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है ।"[1]

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अर्थोपार्जन हेतु सचेष्ट होना चाहिये । अर्थ हीनव्यक्ति न तो धर्मार्जन कर सकता है और न ही कामोपभोग - "अर्थमूलौ हि धर्मकामौ"[2] मोक्ष की तो बात ही क्या । तिनके के समान अर्थहीन व्यक्ति का जीवन व्यर्थ है । निर्धन व्यक्ति को मृतवत् ही समझा जाता है । धनसम्पन्न व्यक्ति वृद्ध होने पर भी तरूण के समान है, किन्तु जिस व्यक्ति के पास धन नही है वह दुश्चिन्ताओं से आक्रान्त होकर शीघ्र ही जर्जर हो जाता है । धन के माध्यम से ही अपूज्य मनुष्य की पूजा होते हुये इसी लोक में देखा गया है । अतः धन प्रचुर मात्रा में होने पर भी धनोपार्जन करना चाहिये ।

काम

काम = कम [चाहना] + णिङ् + घञ् । अमरकोष में काम शब्द के दो अर्थ बतलाये गये हैं - 1. इच्छा, 2. कामदेव - इच्छामनोभवौ कामौ[3]

इन दो अर्थों में इच्छा, अर्थ व्यापक है और कामदेव संकुचित । धन, भवन आभूषण, पुत्र, कलत्र, मित्र, अन्न ये सभी सुखप्राप्ति के साधन हैं । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आनन्दोपलब्धि ही "काम" है । कुछ सुखों का उपभोग

---

1. यादृशंभक्षयेदन्नं, तादृशी जायतेप्रजा ।
   दीपो भक्षयते ध्वान्तं, कज्जलं च प्रसूयते ।। गीता ।।
2. कौटिल्य - 1.7.11
3. अमरकोश - 2.3.138

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध । मन के द्वारा विषय आदि कीकल्पना की जातीहै अथवा स्मरण से सुख प्राप्त किया जाता है । इस प्रकार सुखों केस्थूल, सूक्ष्म भेद से उच्चवच स्तर हैं । ये सभी काम की सीमा में आते हैं, किन्तु "काम" नामक पुरूषार्थ तभी अभिहित होगा जब ये धर्म सम्मत हों । अनुचित, अमर्यादित सुख "काम" नही हो सकता है । धर्म एवं अर्थ की सार्थकता तो वस्तुतः काम के सेवन से हीहोती है । काम भगवान का रूप है ।[1]

काम शब्द का दूसरा अर्थ भी यहाँ अग्राह्य नही है । प्रथम अर्थ में ही इसका अन्तर्भाव हो जाता है, किन्तु पुरूषार्थ के प्रसंग में "काम" का मात्र दूसरा अर्थ - कामदेव अभिप्रेत नहीं है । अनेक सुखों के मध्य इसका भी शीर्ष स्थान है । काम पुरूषार्थ साध्य की कोटि में आने के कारण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है ।

मोक्ष

मोक्ष + घञ् । मोक्षके पर्याय हैं - मुक्ति = मुच + क्तिन् । अपवर्ग = अप + वृज + घञ् । मोक्ष अथवा उसके पर्याय शब्दों में छुटकारा या त्याग का भाव निहित है । सदा के लिये सब प्रकार के दुखों से पूर्णतः निवृत्ति, अर्थात् छुटकारा मोक्ष कहा जाता है । "बाधनालक्षणम् दुखम्"[2] "तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः"[3]

---

1. धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि - भरतर्षभ । गीता ॥7.11॥
2. न्यायसूत्र - 1.1.21
3. न्यायसूत्र - 1.1.22

मोक्षावस्था प्राप्त होने के पश्चात् न कभी किसी प्रकार के दुख का अनुभव होता है और नही पुनः जन्म ।

मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है । इससे बढ़कर कोई भी वस्तु प्राप्त करने योग्य नही है । इसके बाद जीव को किसी भी पदार्थ को पाने की इच्छा नहीं होती है । जीव की बुद्धि सर्वविध अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में विचलित नही होता, बुद्धि स्थिर हो जाती है । स्थिर हो जाती है । अतः गीता के शब्दों में उसे स्थितप्रज्ञ अथवा स्थितधी कहते हैं ।[1]

वेदान्त दर्शन के अनुसारमोक्षावस्था परमानन्द की प्राप्ति है । वहाँकेवल आनन्द की ही अनुभूति होती है । आत्मा आनन्दस्वरूप है । मोक्ष में जीव को अपने स्वरूप आनन्द में स्थित हो जाती है । किन्तु न्याय वैशेषिक, सांख्य आदि दर्शन दुखात्यन्त निवृत्ति को मोक्ष मानते हैं । उनके अनुसार वहाँ न दुख का अनुभव होता है और न आनन्द को ।

---

1. प्रजहाति यदा कामान्सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
   आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।। गीता - 2.55 ।।
   अर्थात् जिस काल में यहपुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भलीभाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है ।
   दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
   वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।। वही - 2.56 ।।
   अर्थात् दुखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नही होता, सुखों की प्राप्ति में जो सदा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय तथा क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है ।

मोक्ष की प्राप्ति का साधन ज्ञान अथवा आत्मज्ञान, आत्मबोध का अधिकारी वही हो सकता है, जिसे नित्य एवं अनित्य वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान हो। लौकिक तथा पारलौकिक वस्तुओं के प्रति वैराग्य हो। मन एवं इन्द्रियाँ जिस के वश में हो तथा जो मुमुक्ष हो। मुमुक्ष अधिकारी ज्ञान, धर्म एवं भक्ति में से किसी मार्ग का आश्रय लेकर मुक्त हो सकता है। अपने अनेक वैशिष्ट्य के कारण मोक्ष परम पुरूषार्थ माना जाता है।

अन्य किसी पद या वस्तु की प्राप्ति चरम लक्ष्य मानने पर व्यक्ति का अपकर्ष होना निश्चित है। क्योंकि उस वस्तु या पद की प्राप्ति होने पर वह व्यक्ति स्वयं को कृतकृत्य समझ लेगा। कर्त्तव्य, कर्मों से विरत हो जायेगा, वह समझेगा कि इसके आगे कुछ नही करना है। और कुछ नहीं पाना है। यही सीमा है। किन्तु सभी सांसारिक एवं पारलौकिक वस्तुयें विनाशशील हैं, अत: दुखजनक हैं। प्राप्त और सीमित से व्यक्ति को सन्तोष की प्राप्ति नही होती। लक्ष्य तो ऐसा निर्मित करना चाहिये, जहाँ तक पहुँचना दुर्गम हो। लक्ष्य तो अगम्य होना चाहिये। गम्य तक पहुँच कर तो जीव विरत हो कर गतिहीन हो जाएगा। वह प्रगति भी नही कर सकेगा।

मोक्ष को परम लक्ष्य मानने पर आपसी मतभेद भी नहीं होंगे। जैसा कि अनेक भौतिक सुख साधनों की प्राप्ति हेतु होता है। जिन व्यक्तियों ने मोक्ष में विश्वास किया है, वे मोक्ष से भयभीत नहीं होते हैं। मुमुक्षु साधक का मनोबल

अनुदिन बढ़ता हीरहता है । शिथलेन्द्रिय जर्जर शरीर साधक जैसे मृत्यु के समीप ही पहुँच रहा होता है । वैसे ही वैसे मोक्ष के समीप । मृत्यु की कल्पना उसे उत्साहित करती है, प्रताड़ित नही करती । साधक हेतु वह उत्सव है, अवसाद नहीं । महान् सुख को स्त्रोत है, सर्वापहार नहीं । जिस समाज में मुमुक्ष साधकों की जितनी अधिक संख्या होगी, वह समाज उतना ही सुखी, सम्पन्न होगा । वह स्वयं में समस्त प्राणियों की भावना करता है । सर्वभूतहित में रत रहता है । द्वन्द्व से तथा मत्सर से शून्य रहता है । काम, क्रोध को वैरी समझता है । अन्याय से अर्थ-संचय नहीं करता । सत्कर्म का कुशलता से सम्पादन करता है और अगले दिन के लिये बैचेन नही होता । ये मुमुक्षु जब मुक्ति की कोटि में पहुँच जाते हैं तो ब्रह्मस्थ हो जाते हैं । मुक्तात्मा में ही मानवता का चरम विकास अपने दर्शन करता है । ये ही महामानव हैं । इस प्रकार एक ही महामानव मानवता का परम कल्याण कर सकता है । न ये किसी से उद्विग्न होते हैं और न इनसे कोई भी उद्विग्न होता है मुमुक्षु एवं स्थितप्रज्ञ, समाज के नागरिक हैं ।

मुमुक्षु विकारों पर विजय का अभ्यास करते हैं, विकृत हृदय व्यक्ति विकारों के कारण स्वयं नाना प्रकार के कष्टों का अनुभव करता है । अनेक भौतिक वस्तुओं का संग्रह सांसारिक यात्रा एवं सुख हेतु । उसमें आसक्ति नही होनी चाहिये । अतः मोक्ष की मान्यता व्यक्ति में प्रसन्नता का संचार तथा लोक का संचार करती है मुमुक्षु विचार से परम पवित्र होता है, विचार ही मनुष्य है ।

प्राचीन भारतीय समाज में पुरूषार्थ-चतुष्टय का स्वरूप

1. वै दि क - का ल :-

वेद भारतीय ज्ञान का मूल स्त्रोत है, वैदिक काल में जीवन का उद्देश्य सुख और शान्ति था । उस समय जीव सौ वर्ष तक जीकर सांसारिक सुखों का सभी इन्द्रियों द्वारा भोग करना चाहते थे । उनमें जन-जीवन को सुखी एवं समृद्ध देखने की अभिलाषा थी । जीवन को एक संग्राम समझते हुये वे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना चाहते थे । धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष सभी को वे धार्मिक भावनाओं से देखते थे । अन्तरिक्ष में रहनेवाले देवताओं से और देवाधिदेव ईश्वर से प्रार्थना करना, अतिथि सत्कार करना, उनको प्रसन्न करने हेतु होम, यज्ञ, प्रार्थना करना, ~~अतिथि सत्कार करना~~, वे अपना धर्म समझते थे । मात्र मनुष्यों के साथ ही नहीं, अपितु वे समस्त प्राणियों के साथ मैत्री का व्यवहार करना, मित्र का धर्म मानते थे । वेदों में प्रधानतः देवताओं, देवाधिदेव की प्रार्थना और यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के अतिरिक्त धर्म, आचार-व्यवहार, विवाह, मृत्यु, यज्ञ विधि के नियम मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के उपयुक्तमन्त्र हैं ।

वैदिक काल मनुष्य का लक्ष्य सुख और शान्ति ही था, अतः उन्होंने जीवन को सुखी एवं सम्पन्न बनाने के लिये जिन-जिन परिस्थितियों और वस्तुओं की आवश्यकता समझी, मुख्य रूप से उन्हीं के लिये प्रार्थना की और उपदेश दिया । दीर्घ एवं पूर्ण जीवन के लिये कतिपय मन्त्र हमें वेदों में प्राप्त होते हैं, जिनमें पुरूषार्थ

चतुष्टय की गन्ध मिलती है । हमें सौ वर्ष तक देखें, और सौ वर्ष तक जीएं ।[1] "हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीएं, सौ वर्ष तक जानें, सौ वर्ष तक उन्नति करें, सौ वर्ष तक पुष्ट रहें, सौ वर्ष तक स्थित रहें, सौ वर्ष तक बढ़ते रहें बल्कि सौ वर्ष से अधिक तक ।"[2]

अतिथि सत्कार करना एक महान् धर्म माना जाता था । अथर्ववेद के एक मन्त्र में अतिथि सत्कार का वर्णन प्राप्त होता है ।

"वह उस प्रकार वेदविद्या को जाने वाला, भले नियमों को जानने वाला अतिथि जिस गृहस्थ के घर में आवे, वह गृहस्थ स्वयं ऐसे अतिथि के सामने खड़े हो कर कहें - हे व्रात्य ! जैसा आप को प्रिय हो वैसा ही हो । हे व्रात्य ! जिस तरह आप को स्वतन्त्रता हो वैसा ही हो । हे व्रात्य ! जैसी आप की इच्छा हो वैसे ही हो ।"[3] इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर "अतिथि के खा लेने पर खावें" ।[4]

वैदिक काल में समस्त प्राणियों के साथ मैत्री रखने की प्रार्थना की जाती थी --

"सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें । मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ । हम सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें ।[5]

---

1. ऋग्वेद - 7.66.16
2. अथर्ववेद - 19.6.7
3. वही - 15.11.1
4. वही - 9.8.8
5. यजुर्वेद - 36.18

यद्यपि वैदिक काल में धर्म को ही विशेष स्थान प्रदान किया गया तथापि अर्थ की भी अपनी एक अलग विशेषता थी । इसी कारण उन्होंने समाज का चार भागों में वर्गीकरण किया - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र । समाज की अर्थ-व्यवस्था सही ढंग से चले, इसके लिये इस प्रकार जाति विभाजन हुआ । सम्पूर्ण समाज को इन वर्गों में संगठित करने का एक यह भी कारण था कि उस समय समाज के चार कार्य - अध्यापन, रक्षण, धनोपार्जन एवं सेवा सुचारु रूप से चल सके । कृषि, वाणिज्य आदि के माध्यम से धनोपार्जन किया जाता था। किन्तु उसमें भी धर्म का स्थान प्रमुख था । प्रत्येक कार्य को धर्म की दृष्टि से ही करना चाहिये। नीतिशास्त्रों में यहभी बताया है कि एक समय ऐसा था, जबकि समाज का वर्णों में विभाजन नहीं था और कोई भी व्यक्ति कोई भी कार्य कर लेता था । सभी कार्य दक्षता से हो सके, इसी लिये वर्णव्यवस्था का आयोजन किया गया ।[1]

ऋग्वेद में एक स्थान पर वर्णित एक मन्त्र में अर्थ की गन्ध मिलती है । "हे अश्विनों ! ब्राह्मण में ज्ञान डालो । बुद्धि को प्रचण्ड करें, क्षत्रियों में जान डालो । सभी मनुष्यों में जान डालो । गौ में जान डालो । वैश्यों में जान डालो । अर्थात् इन सब को अपने - अपने कार्य में योग्य बनाओं ।[2]

---

1. नीतिशास्त्र का इतिहास- डा० भीखन लाल आत्रेय - पृष्ठ - 666
2. ऋग्वेद - - 8.35.16, 17, 18

काम की शिक्षा भी वेदों में विवाह आदि के मन्त्रों में दी गई है । इन मन्त्रों के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि वे स्त्री एवं पुरूष के गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने का प्रयास करते थे । इन मन्त्रों में विवाह के समय उच्चारित किये जाने वाले मन्त्र, स्त्री-पुरूष को कुटुम्ब बनाने के, घर का स्वरूप, ईश - वन्दना, पति - पत्नी सम्बन्ध एवं विधवा विवाह आदि का उल्लेख है --- उदाहरणार्थ कतिपय मन्त्र द्रष्टव्य हैं -

विवाह के समय पर वर कहता है -

"मैं तुम्हारा हाथ अपने हाथ अपने हाथ, मैं इस लिये लेता हूँ कि तुम सौभाग्यवती हो और बुढ़ापे तक मुझ अपने पति के साथ रहोगी ।"

स्त्री घर की साम्राज्ञी होती थी । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में पुरूषार्थ चतुष्टय का ज्ञान मन्त्रों के माध्यम से दिया जाता था ।

ब्रा ह् म ण - का ल :-

वैदिक काल के पश्चात ब्राह्मण काल आता है, जिसका संकलन काल 3000-2000 वि0 पू0 माना जाता है । इनमें वेद के मन्त्रों में दिये गये संकेतों की विशद व्याख्या दी गई है । कथा के द्वारा दिये जाने वाले उपदेशों की परं-परा जिसका बीजारोपण वैदिक काल में हुआ था, का विकास, हुआ । ऐतरेय

ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण में कलाओं एवं मन्त्रों के माध्यम से पुरुषार्थ की शिक्षा दी गई ।

ऐतरेय ब्राह्मण में जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय के महत्त्व को इस प्रकार व्यक्त किया है -

"बैठे हुये का ऐश्वर्य बैठ जाता है । उठकर खड़े हुये का खड़ा हो जाता है, टाँग पसार कर सोने वाले का ऐश्वर्य सो जाता है । चलने वाले (पुरुषार्थियों) का ऐश्वर्य पीछे चलता है ।[1]

शतपथ ब्राह्मण में मनु एवं मत्स्य[2] की कथा में उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञ होने तथा समय आने पर उसकी भी सहायता देने वाले धर्म का उल्लेख है । यह कथा नीतिकथा अथवा जन्तुकथा के पूर्वरूप भले ही हैं, किन्तु उपदेश की दृष्टि से उस में उपकृत व्यक्ति को उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये, इसकी शिक्षा मिलती है, जो उपकृत के धर्म की ओर स्पष्ट रूपसे संकेत करती है ।

यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता[3] में देवासुर-संग्राम की एक कथा में देवताओं द्वारा अपने दो शत्रुओं में आपस में फूट डलवाकर अपने कार्य को सिद्ध करने वाली कथा मिलती है, जो कौटिल्यीय अर्थशास्त्र में प्रतिपादित पन्द्रह अधिकरणों की विषयसूची में वर्णित "फूट उत्पन्न करना" का उपदेश देती है, यह अर्थ नामक पुरुषार्थ के अन्तर्गत

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण - 33/3
2. शतपथ ब्राह्मण - अध्याय - 8.1.6
3. तैत्तिरीय ब्राह्मण - 1.1.4, 1.59

आता है । कथा इस प्रकार है -

देवता, मानव तथा पितर के विरोधी दैत्य, राक्षस एवं पिशाच थे । इनमें से राक्षस द्वारा जिन व्यक्तियों के शरीर का रक्त निकाला जाता था, वे प्रातःकाल होते होते मर जाते थे । देवों को जब यह पता चला तो उन्होंने भेदयुक्ति से काम लिया और राक्षसों को अपने दल में मिला लिया । राक्षसों ने अपनी एक शर्त रखी कि असुरों को लूटने के पश्चात् आधे धन के हिस्सेदार वे भी होंगे । देवताओं ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया । इस आपसी फूट का परिणाम यह हुआ कि असुर हार गये, तथा विजयी देवताओं ने एक चतुराई यह चली कि उन्होंने अपना मतलब निकालने के पश्चात् राक्षसों को भी अपने दल से निकाल दिया । राक्षसों ने देवों की इस चाल के विरुद्ध आवाज भी उठाई, किन्तु देवों ने अग्नि को आगे करके राक्षसों को पराजित कर दिया । उक्त कथा से अर्थ नामक पुरुषार्थ के परिप्रेक्ष्य में दो बातें समझ में आती हैं - पहली तो यह कि देवों ने अपनी विजय हेतु शत्रुओं में भेद उत्पन्न कर दिया तथा विजयी होने पर पुनः राक्षसों को अपने दल से हटा दिया । फूट डाल कर अपने कार्य की सिद्धि करना कौटिल्यीय अर्थशास्त्र में अर्थ के अन्तर्गत बताया है ।[1] दूसरी बात है अर्थ का अर्थात् धन का महत्त्व । धन के ही कारण देवों व पिशाचों में युद्ध हुआ तथा इसी धन के ही कारण राक्षस भी अपना दल छोड़कर दूसरे दल में जाकर सम्मिलित हो गये । वास्तव में यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि अर्थ नामक पुरुषार्थ का महत्त्व उसी युग से था और अर्थ के महत्त्व को स्पष्ट करने हेतु किंचित् कथाओं का भी उपयोग होने लगा था ।

---

1. धर्मशास्त्र का इतिहास - डा० भीखन लाल आत्रेय - पृष्ठ - 31.

उपनिषद साहित्य :-

उपनिषदों में भी जो कथायें प्राप्त होती हैं, वे परम्परा से धर्म को मुख्य स्थान देकर ही कही गई हैं । उपनिषदों में भी कतिपय ऐसे आख्यान प्राप्त होते हैं, जिनमें धर्मादि तत्त्व हैं । कठोपनिषद् में वर्णित नचिकेता की कथा में भी इस प्रकार के तत्त्व मिलते हैं । इस कथा में बालक नचिकेता ने पिता के वचनों को मानकर तथा यम से पिता के क्रोध को शान्त करने का वर माँग कर पुत्र-धर्म को भलीभाँति निभाया । एक तथ्य और भी सामने आता है कि यम ने नचिकेता को अर्थ का लोभ दिया था, इससे यह निश्चित हो जाता है कि उस युग में धन, ऐश्वर्य लाभ का भी विशेष महत्त्व था । यह बात दूसरी है कि "दृढ़निश्चयी नचिकेता ने अपने विचारों पर अडिग होने के कारण इन सभी को ठुकरा दिया । इस प्रकार यह कथा धर्म तथा अर्थ का तो ज्ञान देती ही है, साथ ही साथ आत्म तत्त्व को समझाकर मोक्ष की ओर भी प्रेरित करती है । इसी प्रकार की अन्य कथायें छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद् आदि में प्राप्त होती हैं । इसमें अनेक अन्तकथायें भी हैं, जो पुरुषार्थ चतुष्टय का ज्ञान कराने में सक्षम हैं ।

रामायण एवं महाभारत ग्रन्थ भी इसी प्रकार की कथाओं से भरे पड़े हैं । रामायण की अतिथि सत्कार हेतु प्राणत्याग देने वाली कबूतर की कथा[1] उपकारीके प्रति कृतज्ञ भाव सिखाने वाली बाघ तथा व्याध की कथा, कुत्ते की कथा अलग-अलग ढंग से धर्मोपदेश देती हैं । ये कथायें धार्मिक दृष्टि से नीति की भी शिक्षा प्रदान

---

1. वाल्मीकिरामायण - द्वितीय भागः - अष्टादश सर्गः, प्रथम संस्करण - गीताप्रेस ।

करती हैं । धर्म ही हमारे जीवन का सर्वश्रेष्ठ अंग है । प्रत्येक कार्य को यदि धर्म के परिप्रेक्ष्य में रखकर किया जाये तो इहलोक में अर्थ एवं काम की प्राप्ति करके मनुष्य परलोक में जाकर निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेगा ।

इसी प्रकार महाभारत में भी अनेक कथाओं के माध्यम से पुरुषार्थ चतुष्टय की शिक्षा प्रदान की गई है । महाभारत के आपद्धर्व के 153वें अध्याय की ब्राह्मण पुत्र के पुनर्जीवित होने की कथा पुरुषार्थ चतुष्टय का उपदेश देती है । शान्तिपर्व विभिन्न कथाओं से भरा पड़ा है । शरणागत के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य एवं धर्म हो, इसकी शिक्षा आपद्धर्व के 143वें अध्याय में है । इसी पर्व में व्याघ्र तथा गीदड़ संवाद है, जिसके अन्त में गीदड़ ने अपने राजा व्याघ्र को धर्म, अर्थ एवं काम का उपदेश दिया । इसी प्रकार की विभिन्न कथायें पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में भीअपनाई गई हैं ।

यह पहले ही सिद्ध किया जा चुका है कि कथाओं के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की प्रथा का विकास धीरे-धीरे होकर पंचतन्त्र एवं हितोपदेश तक में अत्यधिक विकसित हो गया । बौद्ध रचनाओं में अधिकांशतः धार्मिक रूप लिये हुये लौकिक ज्ञान प्रदान करने वाली कथायें हैं । इनमें धर्म को विशेष प्रधानता देकर दैनिक जीवन की शिक्षा प्रदान की गई है। इनमें जन्तुकथायेंभी खूब हैं । वास्तव में समाज में प्रचलित लोककथाओं को ही जनसाधारण की भाषा में सुनाकर उन्हें उपदिष्ट किया । कतिपय कल्पित प्राणिकथाओं के द्वारा सहिष्णुता एवं अहिंसा जैसे महान

धर्मों की भी शिक्षा उल्लेख प्राप्त होता है । उदाहरणत: महिस्-जातक ‖278‖ की एक कथा इस प्रकार है --

"बोधि सत्व एक जन्म में भैंसा बने थे । कोई बन्दर झाड़ के नीचे खड़ा इस भैंसे को कष्ट देता था । उस कष्ट को वह भैंसा सहन कर लिया करता था । इस पर झाड़ ने भैंसे से पूछा - "बन्दर को दण्ड क्यों नही देते"? भैंसे ने कहा, "यह किसी न किसी प्रकार का कष्ट दूसरे भैंसे हो भी देगा । तब उसे दण्ड मिल ही जाएगा। इस प्रकार मैं कष्ट देने व खून के अपराध से बच जाऊँगा । एक बार घटना भी कुछ ऐसी ही घटी । बन्दर ने एक अन्य भैंसे को खड़ा पाकर उसे भी कष्ट देना प्रारम्भ कर लिया तब उस नवागत भैंसे ने उसे सींगों से मार-मार कर मार ही डाला।"

इस कथा द्वारा बोधि सत्व ने सहनशीलता एवं अहिंसा के धर्म को समझाया इसी प्रकार की विभिन्न उपदेशात्मक कथायें जातकों में हैं ।

पंचतन्त्र एवं हितोपदेश के उपदेशात्मक वाक्य मात्र आदर्शवादी ही नही हैं, व्यवहारिक जीवन में वास्तविकता और आदर्श का किस प्रकार समन्वय हो, इस उद्देश्य के भी पूर्ण रूप से समर्थक हैं । महाभारत में यह स्पष्ट कहा गया है कि जीवन में किसी एक पुरुषार्थ की प्रधानता नही होनी चाहिये, अपितु सभी पुरुषार्थ का उचित सन्तुलन होना चाहिये, एक में आसक्त व्यक्ति को जघन्य कहा गया है । वास्तव में सफल जीवन वही है, जिसमें धर्म, अर्थ और काम का सही सामंजस्य रखा जाये । अर्थ और काम की प्रवृत्तियों को भुलाकर मात्र धर्म एवं मोक्ष की साधना

करना मात्र अवास्तविक आदर्शवाद है । इसी प्रकार अर्थप्राप्ति एवं विषय के उपभोग में उन धर्म के नियमों को पालन करना आवश्यक है, जिसके ऊपर समाज, जिसमें रह कर हम अर्थ और काम की प्राप्ति तथा उपभोग करते हैं, कायम है ।

पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की अनेक कथाओं में धर्म की शिक्षा कथाओं में वर्णित श्लोकों के माध्यम से दी गई है । राजनीति के उपदेश से परिपूर्ण पंचतन्त्र के प्रथमतन्त्र की धर्मबुद्धि - पापबुद्धि कथा धर्म का उपदेश देती है -

देशान्तर में जाकर धर्मबुद्धि के प्रभाव से पापबुद्धि ने प्रचुर धन कमाकर जब दोनों अपने घर लौटने लगे तो उन्होंने समस्तधन अपने साथ न ले जाकर थोड़ा धन जंगल में गाड़ दिया । एक दिन पापबुद्धि ने रात्रि में जाकर गाड़े हुये धन को निकाल लिया और धर्मबुद्धि के पास जाकर कहा कि मुझे धनाभाव है, अतः कुछ धन जंगल चलकर खोद लायें । वहाँ जाकर गड्ढा खोदने पर जब धन न मिला तो पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि पर ही चोरी का आक्षेप लगाकर झगड़ा आरम्भ कर दिया और धर्माधिकरण में जाकर कहा कि वृक्ष साक्षी बनकर कहेगा कि धर्मबुद्धि चोर है । जब वृक्ष के पास जाने का निश्चय हो गया तब उसने अपने पिता से वृक्ष के कोटर में बैठकर वृक्ष की आत्मा बनने को कहा । इस बुरे कर्म का विरोधीहोने पर भी पिता को अपने पुत्र का कहना मानना पड़ा । वृक्ष के कोटर में से उसके पिता ने कहा कि धर्मबुद्धि चोर है । इस पर क्रोधित होकर धर्मबुद्धि ने वृक्ष में आग लगा दी । पापबुद्धि का पिता जल गया और उसका अपराध भी सभी के सामने आ गया ।[1]

---

1. पंचतन्त्र - मित्रभेद - धर्मबुद्धि-पापबुद्धि कथा ।

अनेक कथाओं के माध्यम से रचयिता ने मित्र को धोखा देने वाले अर्थात् मित्रधर्म का पालन न करने वाले को लज्जित होना पड़ता है, इसकी शिक्षा प्रदान की है । कथाओं की इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु धर्मशिक्षा से सम्बन्धित अनेक श्लोकों का भी वर्णन किया है । इसी प्रकार मित्र के धर्म अथवा सद्लक्षणों को द्वितीय तंत्र की अंगीकथा में इस प्रकार बताया गया है -

मनुष्य पर जब किसी प्रकार की विपत्ति आ जाती है तो उसके मित्रों को छोड़कर दूसरा व्यक्ति वचनमात्र से भी उसकी सहायता नहीं करता ।[1]

स्नेहयुक्त और नयनानन्ददायी मित्र सज्जनों एवं सद्गृहस्थों के यहाँ ही आया करते हैं ।[2]

जिसके यहाँ प्रतिदिन अच्छे स्नेही मित्र आया करते हैं । उसको मित्रों को देखने से जो सुख प्राप्त होता है, वह अन्य किसी वस्तु को देखने से प्राप्त नहीं होता है ।[3]

पंचतन्त्र में इस प्रकार की उपदेशात्मक कथायें भरी पड़ी हैं । मित्रसम्प्राप्ति में विशेष रूप से मित्र धर्म पर आधारित अनेक कथायें हैं ।

---

1. सर्वेषामेव मर्त्यानां व्यसने समुपस्थिते ।
   वाङ्मात्रेणापि साहाय्यं मित्रादन्यो न संदधे ।। पंचतन्त्र - 2/12 ।।
2. सुहृदः स्नेहसम्पन्ना लोचनानन्ददायिनः ।
   गृहे गृहवतां नित्यमागच्छन्ति महात्मनः ।। वही - 2/17 ।।
3. सुहृदो भवने यस्य समागच्छन्ति नित्यशः ।
   चित्ते च तस्य सौख्यस्य न किंचित्प्रतिमं सुखम् । वही - 2/19 ।।

इसी प्रकारराजधर्म की शिक्षा प्रदान करने हेतु द्वितीय तन्त्र[1] की इसी कथा में चित्रग्रीव अपने दल को शिकारी के जाल से बचाने हेतु सभी कबूतरों से एक जुट हो कर उस जाल को उड़ा ले चलने हेतु कहता है तथा हिरण्यक नामक चूहे के पास जाकर सभी कबूतरों के बन्धन को कटवाता है, किन्तु वह सावधान है कि उस के [चित्रग्रीव के] बन्धन बाद में ही कटे, क्योंकि अपने भृत्यों के साथ करूणा एवम् समभाव का व्यवहार करना ही राजधर्म है । तृतीय तन्त्र की शशक-पिंजल कथा में धर्मोपदेश देने वाले विडाल के मुख से धर्म सम्बन्धित कतिपय श्लोकों का वर्णन किया गया है ।

अनेक अन्तरायों से युक्त धर्म की गति अत्यन्त चपल होती है । अतएव नीतिकुशल विद्वानों के अनुसार अन्य कार्यों को करने में शीघ्रता नही करनी चाहिये। स्थिर बुद्धि से सोच विचार करके ही कार्य को आरम्भ करना चाहिये । किन्तु धर्म के कार्यों में शीघ्रता करनी चाहिये । अधिक सोचविचार से उसमें विघ्न का भय रहता है ।[2]

अरे मनुष्यों ! अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नही है । अतः संक्षेप में ही मैं धर्म के तत्व को कह देता हूँ । परोपकार करना पुण्यदायक और दूसरों को कष्ट पहुँचाना पापदायक होता है ।[3]

---

1. पंचतन्त्र - मित्रसम्प्राप्ति - प्रथम कथा ।
2. स्थैर्यं सर्वेषु कृत्येषु शंसन्ति नयपंडिता ।
   बह्वन्तराययुक्तस्य धर्मस्य त्वरिता गतिः ।। पंचतन्त्र - 3/100 ।।
3. संक्षेपात् कथ्यते धर्मो जनाः किं विस्तरेण वः ।
   परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।। पंचतन्त्र - 3/101 ।।

धर्म के तत्त्व को कहता हूँ, उसे सुनो और मन में धारण कर लो । जो बात अपने को अच्छी न लगती हो, वह दूसरों के प्रति नहीं कहनी चाहिये और जो कार्य अपने को अच्छा न लगे उसे दूसरों के लिये भी नही करना चाहिये ।[1]

सज्जनों ने अहिंसा को ही धर्म कहा है, अतः यूका, मत्कुण तथा मच्छर आदि छोटे-छोटे जीवों की भी रक्षा करनी चाहिये ।[2]

हिंसक जीवों को भी मारने वाला व्यक्ति भी निर्दय होता है, अतः वह भी नरकगामी होता है । जो व्यक्ति अहिंसक जीवों को मारता है, उसके विषय में तो कहने की आवश्यकता ही नही, वह तो नरकगामी होता ही है ।[3]

वृक्षों को काटकर, पशुओं की हत्या करके और खून की नदी बहा कर ही यदि कोई स्वर्ग जाता है तो नरक किस कार्य को करने वाला जायेगा ।[4]

अभिमान, लोभ, क्रोध या भय के कारण जो व्यक्ति अनुचित कार्य करता है, वह नरकगामी होता है ।[5]

---

1. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
   आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।। पंचतन्त्र - 3/102 ।।
2. अहिंसापूर्वको धर्मो यस्मात्सद्भिरुदाहृतः ।
   यूकामत्कुणदंशादींस्तस्मान्तानापि रक्षयेत् ।। पंचतन्त्र - 3/103 ।।
3. हिंसकान्यपि भूतानि यो हिनस्ति स निर्घृणः ।
   स याति नरकं घोरं किं पुनर्यः शुभानि च ।। पंचतंत्र - 3/104 ।।
4. वृक्षांश्छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
   यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ।। पंचतन्त्र - 3/105 ।।
5. मानाद्वा यदि वा लोभात्क्रोधाद्वा यदि वा भयात् ।
   योऽन्यायमन्यथा ब्रूते स याति नरकं नरः ।। पंचतन्त्र - 3/106 ।।

पशुओं के विवाद में अनुचित निर्णय देने पर पाँच पशुओं के वध का पाप होता है । गायों के विवाद में अनुचित निर्णय देने पर दस गायों के वध का पाप होता है । कन्याओं के विवाद में अनुचित निर्णय देने पर सौ कन्याओं के वध का पाप होता है और मनुष्यों के विवाद में अनुचित निर्णय देने पर हजार मनुष्यों के वध का पाप होता है ।[1]

सभा के बीच में (न्यायालय) बैठ कर वादी या प्रतिवादी कुछ अस्पष्ट या असत्य बात कहता हो तो न्यायवादी व्यक्ति को उस सभा का परित्याग कर देना चाहिये । यदि सभा का परित्याग करना सम्भव न हो तो उचित एवं यथार्थ निर्णय ही करना चाहिये ।[2]

इतना ही नहीं पंचतन्त्र में पुत्र धर्म पर भी विशेष बल दिया है । प्रथम अंक का यह श्लोक द्रष्टव्य है --

माता की युवावस्था को विनष्ट करने वाले उस पुत्र से क्या लाभ ? जिसने केवल कभी जन्ममात्र ग्रहण किया था, पुनः कभी कोई महत्व का कार्य नहीं किया । अपने कुल रूप स्तम्भ पर, जो ध्वज की तरह नही चढ़ सका, उसका जन्म

---

1. पंच पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
   शतं कन्यानृते हन्ति सहस्त्रं पुरुषानृते ।।
   - पंचतन्त्र - 3/107
2. उपविष्टः सभामध्ये यो न वक्ति स्फुटं वचः ।
   तस्माद् दूरेण सन्त्याज्या न्यायिना कीर्तितम् ।।
   - पंचतन्त्र - 3/108

व्यर्थ ही समझना चाहिये ।[1] धर्महीन पुरूष को इसमें पशु के समान कहा गया है ।[2] पत्नी का धर्म बताते हुये विष्णुशर्मा कहते हैं कि साढ़े तीन करोड़ रोम मनुष्य के शरीर में हैं और पति का अनुसरण करने वाली स्त्री उतने ही समय तक स्वर्ग में निवास करती है ।[3]

मित्र के द्वार पर खड़े रहने पर अर्थात् मित्र के घर आने पर मित्र के द्वारा मित्र हेतु की जाने वाली आवभगत में भी धर्म की स्पष्ट छाप है । प्रथम तन्त्र का एक श्लोक द्रष्टव्य है --

यहाँ आओ, यह सुन्दर आसन है, बहुत दिनों पर दिखाई दिये, कहाँ थे, क्या हाल हैं, तुम बहुत दुर्बल हो गये हो, कुशल तो है, तुम्हारे दर्शन से प्रसन्न हैं, नीच आदमी भी यदि आ जाता है, तो सत्पुरूष ऐसा कहते हैं । स्मृतिकारों में गृहस्थियों के लिये धर्म इसे कहा है ।[4]

---

1. किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ?
   आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याऽग्रे ध्वजो यथा ।। पंचतन्त्र - 1/27 ।।
2. ...धर्महीनाः परार्थाय पुरूषाः पशवो यथा ।। पंचतन्त्र - 3/99 ।।
3. तिस्त्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे ।
   तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ।। पंचतन्त्र - 3/179 ।।
4. एह्यागच्छ, समाश्रयासनमिदं, कस्माच्चिराद् दृश्यते ?
   का वार्ता, ह्यतिदुर्बलोऽसि, कुशलं प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात् ।
   एवं ये समुपागतान्प्रणयिनः प्रह्लादयन्त्यादरा ।
   तेषां युक्तमशंकितेन मनसा हर्म्याणि गन्तुम् सदा ।।
   ।। पंचतन्त्र - 2/67 ।।

इससे यह प्रतीत होता है कि पंचतन्त्र में धर्म मुख्य रूप से विद्यमान है ।

-: हितोपदेश में धर्म :-

पंचतन्त्र के समान हितोपदेश में भी कहानी तथा श्लोकों के माध्यम से धर्म की शिक्षा प्रदान की गई है । सुवर्णकंकणधारी बूढ़ा बाघ तथा मुसाफिर की कहानी धार्मिक तत्वों से भरी पड़ी है । मात्र यही नहीं सम्पूर्ण हितोपदेश ही धार्मिक मान्यताओं को लेकर चलने वाला दिखाई देता है । उपरोक्त वर्णित इस कथा में बाघ ने मनुष्य को धर्म की अनेक बातें इस प्रकार बताईं --

यज्ञ करना, वेद पढ़ना, दान देना, तप करना, सत्य बोलना, धीरज धरना, क्षमाशील होना और लोभ न करना - ये धर्म के आठ मार्ग हैं ।[1]

प्रार्थना का स्वीकार, दान, सुख तथा दुख, शुभ और अशुभ में पुरुष अपनी आत्मा के समान प्रमाण करता है ।[2]

यह देना है, इस निःस्पृह बुद्धि से जो दान अनुपकारी को देशकाल और सुपात्र को विचार कर दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहलाता है ।[3]

---

1. इज्या ध्ययन दानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा ।
   अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ।। हितोपदेश - 1/8 ।।
2. प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुखे प्रियाप्रिये ।
   आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ।। हितोपदेश - 1/13 ।।
3. दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
   देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः ।। हितोपदेश - 1/16 ।।

इतना ही नहीं पति के प्रति स्त्री का क्या धर्म होना चाहिये, विग्रह पाठ की एक कथा में इसका उल्लेख है, जिसमें पलंग के नीचे बैठे बढ़ई ने अपनी व्यभिचारिणी पत्नी को जो गाँव के ही एक युवक के साथ बैठकर वार्तालाप कर रही थी, रंगे हाथ पकड़ लिया ।

पुरूष चाहे जैसे निष्ठुर वचन स्त्री से कहे और क्रोध की आँख से देखे परंतु पति के सामने मुख को जो प्रसन्न रक्खे, वही स्त्री धर्म की अधिकारिणी है ।[1]

नगर में रहे, अथवा वन में रहे, पापी हो अथवा पुण्यात्मा हो जिन स्त्रियों को पति से प्यार हो, उनका संसार में बड़ा भाग्योदय है ।[2]

सन्धिपाठ में राजा को धर्म की दृढ़ता बताते हुये उनके मन्त्री ने कहा --

मन का सन्ताप, रोग और पुत्र आदि के वियोग से उत्पन्न हुआ क्लेश इनसे आज अथवा कल यानि किसी भी क्षण में विनाश पाने वाले शरीर के लिये कौन सा मनुष्य धर्मरहित आचरण करेगा ।[3]

मृगतृष्णा के समान क्षणभंगुर संसार को विचार कर धर्म और सुख के लिये सज्जनों के

---

1. परुषाण्यपि या प्रोक्ता दृष्टा या क्रोधचक्षुषा ।
   सुप्रसन्नमुखी भर्तुः सा नारी धर्मभागिनी ।। विग्रह/25 ।।
2. नगरस्थो, वनस्थो वा पापो वा यदि वा शुचिः ।
   यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोकाः महोदयाः ।। विग्रह/26 ।।
3. आधिव्याधिपरीतापादद्य श्वो वा विनाशिने ।
   को हि नाम शरीराय धर्मापेतं समाचरेत् ।। हितोपदेश सन्धि - 127 ।।

संग मेल करना चाहिये ।[1]

हितोपदेश में नारायण पंडित ने धन को महत्त्व तो दिया है, किन्तु उतना नहीं, जितना धर्म को । धर्म की प्रशंसा करते हुये बूढ़ा बनिया और उसकी व्यभिचारिणी स्त्री की कथा के माध्यम से यह कहा है कि --

धन तो चरणों की धूलि के समान है, यौवन पहाड़ की नदी के वेग के समान है, आयु चंचल, जल की बिन्दु के समान चंचल है और जीवन फेन के समान है, इसलिये जो निर्बुद्धि स्वर्ग की अर्गला को खोलने वाले धर्म को नहीं करता वह बाद में वृद्धावस्था में पछता कर शोक की अग्नि से जलाया जाता है ।[2]

-: पंचतन्त्र में अर्थ :-

अर्थ नामक पुरुषार्थ की शिक्षा भी कथा तथा उसमें वर्णित श्लोकों के माध्यम से की गई है । हिरण्य, ताम्ण, चूड कथा[3] में अर्थ की महिमा कथा को आरम्भ में ही इस प्रकार बता दी गई है :-

---

1. मृगतृष्णासमं वीक्ष्य संसारं क्षणभंगुरं ।
   सज्जनैः संगतं कुर्याद्धर्माय च सुखाय च ।। हितोपदेश सन्धि - 129 ।।
2. अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपमं यौवन-
   मायुष्यं जललोलबिन्दुचपलं फेनोपमं जीवितम् ।
   धर्मं यो न करोति निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनं ।
   पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते ।। वही - 1/155 ।।
3. उष्मापि वित्तजो वृद्धिं तेजो नयति देहिनाम् ।
   किं पुनरतस्य सम्भोगस्त्यागकर्मसमन्वितः ।। पंचतन्त्र - 2/7। ।।

धन की भी गर्मी मनुष्य के तेज को कुछ बढ़ा देती है । यदि उसका धन सन्मार्ग में व्यय होता हो, तब तो पूछना ही क्या है । उस मनुष्य का तेज तो बढ़ ही जाता है । उपर्युक्त वर्णित कथा इस प्रकार है -

एक परिव्राजक के अपनी भिक्षा को हिरण्यक चूहे से बचाने का प्रयास करने पर भी वह उस बेचारे की लाई हुई भिक्षा खा जाया करता था । परिव्राजक के एक मित्र ने उसे सलाह दी कि इस चूहे के बल का कोई कारण अवश्य है, तब परिव्राजक ने उस चूहे की शक्ति का कारण ढूँढना आरम्भ किया तथा एक दिन चूहे के घर में उसे शक्ति का कारण संचित स्वर्ण के रूप में मिला । इसी से चूहे को अद्भुत शक्ति मिला करती थी । इसके हटा लिये जाने पर चूहा दुर्बल हो गया और अपने अनुयायियों को खिलाने में असमर्थ होने के कारण उनसे त्याग दिया गया ।

पंचम तन्त्र की प्रथम कथा में धन के अभाव में होने वाले कष्टों का वर्णन किया गया है -

शील, शुचिता, क्षमा, शिष्टता, प्रियभाषिता तथा उत्तम कुल में जन्म लेना, ये सभी गुण निर्धन पुरुषों को शोभा नही देते हैं । मनुष्य के निर्धन हो जाने पर इन गुणों के रहने पर भी उसके प्रति कोई आकृष्ट नही होता है ।[1] सम्मान दर्प, कलाओं का ज्ञान, आनन्द तथा सुबुद्धि आदि ये सभी वस्तुयें पुरुष के लिये निर्धन

---

1. शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुलेजन्म ।
   न विराजन्ति हि सर्वे, वित्त विहीनस्य पुरुषस्य ।। पंचतन्त्र - 5/2 ।।

होते ही उसके धन के साथ चली जाती हैं । निर्धन व्यक्ति इनकी अपेक्षा करते ही उपहास का विषय बना दिया जाता है ।[1]

धन के अभाव में प्रचुर बुद्धि वाले व्यक्तियों की भी बुद्धि निरन्तर घी, नमक, तेल, चावल, वस्त्र तथा इन्धन आदि परिवार के भरण योग्य आवश्यक उपकरण की चिन्ता से विनष्ट हो जाती है ।[2]

सम्पत्ति हीन व्यक्ति का गृह अत्यन्त सुन्दर होने पर भी ‡धनाभाव‡में नक्षत्ररहित आकाशवत् शून्य, सूखे हुये तालाब की तरह उदास और श्मशान की त र ह भयानक लगता है ।[3]

धनाभाव में व्यक्ति इतना तुच्छ हो जाता है कि सामने रहने पर भी जल में रहने वाले निरन्तर उत्पन्न अविनष्ट होने वाले बुलबुलों की तरह दृष्टि में नहीं आता है । निर्धन व्यक्ति को देखते हुये भी लोग उसकी उपेक्षा कर देते हैं ।[4]

---

1. मानो वा दर्पो वा विज्ञानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा ।
   सर्वं प्रणश्यति समं, वित्तविहीनो यदा पुरुषः ।। पंचतन्त्र - 5/3 ।।
2. नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिः पुरुषस्य मन्दविभवस्य ।
   घृतलवणतैलतन्डुलवस्त्रेन्धनचिन्तया सततम् ।। वही - 5/5 ।।
3. गगनमिव नष्टतारं, शुष्कमिव सरः श्मशानमिव रौद्रम् ।
   प्रियदर्शनमपि रूक्षं, भवति गृहं धनविहीनस्य ।। वही - 5/6 ।।
4. न विभाव्यते लघवो वित्तविहीनाः पुरोऽपि निवसन्तः ।
   सततं जातविनष्टाः पयसामिव बुद्बुदाः प य सि ।। वही - 5/7 ।।

कुलीनता, प्रवीणता, सज्जनता आदि गुणों की अपेक्षा न करने वाले लोग सम्पन्न व्यक्ति को लोग कल्पतरु के समान सन्तुष्ट करने का प्रयास करते हैं ।[1]

-: हितोपदेश में अर्थ पुरुषार्थ :-

पंचतन्त्र में वर्णित हिरण्यताम्रचूड कथा जो हितोपदेश में भी सन्यासी और धनिक चूहे की कथा के रूप में प्राप्त होती है । पंचतन्त्र के ही समान अर्थ की प्रशंसा इसमें भी की गई है --

सर्वत्र, संसार में सब मनुष्य धन से ही सदा बलवान् होते हैं और राजाओं की प्रभुता की जड़ धन ही होता है ।[2]

दुनियाँ में आदमी धन से बलवान् और धन से ही पंडित माना जाता है।[3]

धन से रहित, बुद्धिहीन मनुष्य के तो सब काम बिगड़ जाते हैं, जैसे गर्मी के दिन में छोटी - छोटी नदियाँ ।[4]

दुनियाँ में जिसके पास धन है, उसी के सब मित्र और बान्धव हैं और जिस के पास धन है, वही महान् पुरुष और महान् पंडित है ।[5]

---

1. सकुलं, कुशलं, सुजनं विहाय, कुलकुशलशीलविकलेऽपि ।
   आढ्ये, कल्पतराविव नित्यं रज्यन्ति जननिवहा: ।। पंचतन्त्र - 5/8 ।।
2. वही - 5/8
3. धनेन बलवाँल्लोके धनाद्भवति पंडित: ।। हितोपदेश - 1/124 ।।
4. अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधस: ।
   क्रिया: सर्वा: विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ।। वही - 1/125 ।।
5. यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा: ।
   यस्यार्था: स पुमाँल्लोके यस्यार्था: स हि पंडित: ।। वही - 1/126 ।।

सच्चे मित्र से हीन और पुत्रहीन का घर सूना है । मूर्ख की सब दिशायें सूनी हैं और दरिद्रता तो सब सूनों का केन्द्र है ।[1]

वे ही विकार से रहित इन्द्रियाँ हैं वही नाम है, वही निर्मल बुद्धि है, वही वाणी है, परन्तु धन की उष्णता से रहित वही मनुष्य कुछ का कुछ हो जाता है ।[2]

इसी प्रकार से सुहृद्भेद की अंगीकथा अर्थ की महिमा पर पूर्ण प्रकाश डाल रही है । सुवर्णवती नगरी का निवासी वर्धमान नामक बनिया जो बहुत धनवान् था किन्तु अपने अन्य भाइयों को अधिक धनवान् देखकर और अधिक धन एकत्र करने की इच्छा से व्यापार हेतु कश्मीर जाने का इच्छुक हुआ । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अर्थ की महत्ता को वह भलीभाँति जान चुका था । धनवान् होने पर भी और अधिक धन एकत्र करने की इच्छा ही इसका सबल प्रमाण है । अपने से अधिक धनवान् को देखकर उनकी अपेक्षा स्वयं को दरिद्र समझ कर वह अपना निवास छोड़कर अन्य स्थान को जाने हेतु तत्पर हुआ, क्योंकि --

जिसके पास बहुत सा धन है, उस ब्रह्मघातक मनुष्य का भी सत्कार होता है और चन्द्रमा के समान अति निर्मल वंश में उत्पन्न होने पर भी निर्धन मनुष्य का

---

1. अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च ।
मूर्खस्य च दिशः शून्याः सर्वं शून्या दरिद्रता ।। हितोपदेश - 1/127 ।।

2. तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम, सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव, अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।।
।। हितोपदेश - 1/129 ।।

अपमान किया जाता है ।[1]

जैसे नवयुवती बूढ़े पति को नहीं चाहती है, उसी प्रकार लक्ष्मी भी निरुद्योगी, आलसी, प्रारब्ध में जो लिखा है सा होगा, ऐसा भरोसा रखकर चुपचाप बैठने वाले, तथा पुरुषार्थ हीन मनुष्य को नही चाहती है ।[2]

आलस्य स्त्री की सेवा, रोगी रहना, जन्मभूमि का स्नेह, सन्तोष और डरपोकपन में छः बातें उन्नति के लिये बाधक हैं ।[3]

इतना ही नहीं हितोपदेश में अनेक ऐसी कथायें हैं जो धन के महत्त्व को प्रदर्शित करती हैं ।

:- पंचतन्त्र में काम पुरुषार्थ -:

विष्णुशर्मा ने राजनीति, धर्म, अर्थ के अतिरिक्त काम नामक पुरुषार्थ की भी शिक्षा दी है । मित्रभेद की दन्तिलगोरम्भयोः कथा में स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन किया है, जिसमें गोरम्भ नामक अनुचर अर्द्धनिद्रित अवस्था में दन्तिल द्वारा महारानी के आलिंगन किये जाने की असत्य घटना का प्रलाप करता है । राजा को रानी पर

---

1. ब्रह्महापि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम् ।
   शशिनस्तुल्यवंशो पि निर्धनः परिभूयते ।। हितोपदेश - 2/3 ।।
2. अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्च परिहीनम् ।
   प्रमदेव हि वृद्धपतिं नेच्छत्युपगूहितुं लक्ष्मीः ।। हितोपदेश - 2/4 ।।
3. आलस्यं स्त्री सेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यं ।
   सन्तोषो भीरुत्वं षड्व्याघाता महत्वस्य ।। हितोपदेश - 2/5 ।।

अत्यन्त सन्देह हो जाता है, क्योंकि --

स्मितहास के कारण पाटलवर्ण की आभा से युक्त अधरों वाली स्त्रियाँ एक ओर किसी व्यक्ति से विविध बातें करती हैं तो दूसरी ओर खिली हुई कुमुदिनी के समान विकसित और उल्लसित नेत्रों से किसी अन्य पुरुष को देखती रहोती हैं और साथ ही मन में किसी प्रख्यात यश एवं रूप से युक्त तृतीय व्यक्ति का ध्यान भी करती रहती हैं। वास्तविक रूप से सच्चे अर्थ में इन वामलोचनाओं का किससे प्रेम होता है ?[1]

अग्नि ईंधन से, समुद्र नदियों से और काल प्राणियों से जैसे कभी तृप्त नहीं होता उसी प्रकार से स्त्री कभी पुरुषों से तृप्त नही होतीं हैं।[2]

हे नारद! यों तो एकान्त स्थान नहीं मिलता या उचित अवसर नहीं मिल पाता अथवा कोई अनुरागी और कामुक व्यक्ति नहीं मिल पाता - तभी तक स्त्रियों का सतीत्व-भाव सुरक्षित रहता है।[3]

---

1. एकेन स्मितपाटलाधररुचो जल्पन्त्यनल्पाक्षरं,
   वीक्षन्ते न्यमितः स्फुटत्कुमुदिनीफल्लोल्लसल्लोचनाः ।
   दूरोदारचरित्रचित्रविभवं ध्यायन्ति चान्यं धिया,
   केनेत्थं परमार्थतो र्थवदित प्रेमास्ति वामभ्रुवाम् ।। पंचतन्त्र - 1/147 ।।
2. नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधि : ।
   नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ।। वही - 1/148 ।।
3. रहो नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
   तेन नारद! नारीणां सतीत्वमुपजायते ।। वही - 1/149 ।।

जो व्यक्ति अपनी अज्ञानता के कारण यह समझता है कि - ‹यह कामिनी मुझसे प्रेम करती है, वह पालतू पक्षी की तरह उसके वशीभूत हो जाता है ।›[1]

जो व्यक्ति स्त्रियों के छोटे तथा बड़े कार्यों को करता है तथा उनके आदेश का पालन करता है, वह अपने कृत्यों के कारण विश्व में लघुता को प्राप्त हो जाता है ।[2]

जो पुरुष स्त्रियों के पीछे घूमा करता है और उसकी आज्ञाकारिता के लिये उनसे निकट का सम्बन्ध रखता है, अथवा उनकी थोड़ी भी सेवा करता है, स्त्रियाँ उसी को चाहती हैं ।[3]

स्त्रियाँ स्वभाव से ही अमर्यादित होती हैं । वे मर्यादा की सीमा में तभी तक आबद्ध रहती हैं, जब तक कि उनको कोई कामी पुरुष नहीं मिलता है । अथवा, कुल तथा गोत्र के व्यक्तियों का भय बना रहता है ।[4]

---

1. यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मम कामिनी ।
   स तस्या वशगो नित्यं भवेत्क्रीडाशकुन्तवत् ।। पंचतन्त्र - 1/150 ।।

2. तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि ।
   करोति, यो कृतैर्लोके लघुत्वं याति सर्वतः ।। पंचतन्त्र - 1/151 ।।

3. स्त्रियं च यः प्रार्थयते सन्निकर्षं च गच्छति ।
   ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः ।। पंचतन्त्र - 1/152 ।।

4. अनार्थित्वान्मनुष्याणां भयात्परिजनस्य च ।
   मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति सर्वदा ।। पंचतन्त्र - 1/153 ।।

स्त्रियों के लिये कोई भी पुरुष या स्थान अगम्य नहीं होता है । उनको अवस्था से भी कोई विशेष प्रयोजन नहीं होता है । कुरूप या रूपवान भी वे नहीं देखतीं हैं । केवल पुरुष समझकर उसका उपभोग करती हैं ।[1]

रक्त वर्ण के लाक्षारस को गार कर स्त्रियाँ जैसे अपने पैर के नीचे मलती हैं, उसी प्रकार उनमें अनुरक्त रहने वाले व्यक्ति को भी विडम्बनापूर्वक दुर्दशाग्रस्त करके बलात् अपने पैरों के नीचे गिरा देती हैं ।[2]

ऐश्वर्य को प्राप्त करने के बाद कौन गर्वित नहीं होता है ? किस विषयी व्यक्ति की आपत्तियाँ समाप्त हुई हैं । स्त्रियों ने इस विश्व में किसका हृदय नहीं तोड़ा है ? अद्यावधि राजाओं का कौन प्रिय हुआ है ? काल की दृष्टि से कौन बचा है ? कौन ऐसा याचक है, जिसने कि महत्ता को प्राप्त किया है और कौन सा ऐसा व्यक्ति है, जो दुष्टों के वाग्जाल में फँसकर सकुशल निकल गया ?

---

1. नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां च वयसि स्थितिः ।
   विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुंजते ।। पंचतन्त्र - 1/154 ।।

2. अलक्तको यथा रक्तो निष्पीड्य पुरुषस्तथा ।
   अबलाभिर्बलाद्रक्तः पादमूले निपात्यते ।। पंचतन्त्र - 1/156 ।।

-: हितोपदेश में काम पुरुषार्थ :-

पंचतन्त्र के ही समान नारायण पंडित के ग्रन्थ हितोपदेश में काम पुरुषार्थ की शिक्षा मिलती है । नारायण पंडित ने विष्णु शर्मा के ही समान स्त्रियों की निन्दा अधिक की है । कतिपय स्थलों पर उन्होंने पुरुषों के स्वभाव आदि का भी वर्णन किया है । इस ग्रन्थ की यह कथा द्रष्टव्य है :-

बंगाल देश में कौशाम्बी नाम की एक नगरी है । उसमें चन्दनदास नामक एक बड़ा धनवान बनिया रहता था । वृद्धावस्था में उसने कामातुर होकर धन के मद से लीलावती नामक एक बनिये की पुत्री से विवाह कर लिया । वह लीलावती कामदेव की विजयपताकावत् तारुण्यतरंगिता हुई । उस लीलावती ने यौवन के मद से अपनी कुल की मर्यादा को छोड़ किसी बनिये के पुत्र से प्रेमवश हुई । एक दिन पति की अनुपस्थिति में लीलावती रत्नों की बाड़ की झलक से रंगबिरंगे पलंग पर उस बनिये के पुत्र के साथ आनन्दपूर्वक बैठी थी, इतने में अचानक आये हुये उस अपने पति के साथ प्रेम प्रदर्शन करने लगी । इधर मौका देखकर वह बनिये का पुत्र भी भाग निकला, इस कथा में नारायण पंडित ने स्त्रियों से सम्बन्धित विभिन्न बातें कहीं हैं :-

---

1. कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्यापदो स्तं गताः ।
   स्त्रिभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ।
   कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं,
   को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान् ।।

   ।। पंचतन्त्र 1/157 ।।

स्त्रियों के नाश होने के कतिपय कारण की व्याख्या की गई है :-

स्वतन्त्रता, पिता के घर में (अधिक समय तक) रहना, यात्रा आदि उत्सव में किसी के साथ, पुरुष के साथ गप लड़ाना, नियमों में न रहना, परदेश में रहना, व्यभिचारिणी स्त्रियों के साथ रहना, बार-बार अपने सच्चरित्र को खोना, पति का बूढ़ा होना, ईर्ष्या करना और स्वामी का परदेश में रहना - ये स्त्रियों के नाश के कारण हैं ।[1]

मद्यपान, दुष्ट लोगों का साथ, पति का विरह, इतस्ततः घूमते रहना, दूसरे के घरमें सोना - ये स्त्रियों के दूषण हैं ।[2]

हेनारद ! एकान्त स्थान, मौका और प्रार्थना करने वाला मनुष्य इनके न होने से स्त्रियों का पातिव्रतधर्म रहता है ।[3]

स्त्रियों का कोई अप्रिय अथवा प्रिय नहीं होता है, जैसे वन में गायें नये नये तृण को चाहती हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी नवीन-नवीन पुरुष को चाहती हैं ।[4]

---

1. स्वातंत्र्यं पितृमन्दिरे निवसतिर्यात्रोत्सवे संगति -
   गोष्ठी पुरुषसंनिधावनियमो वासो विदेशे तथा ।
   संसर्गः सह पुंश्चलीभिरसकृद्धृत्तेर्निजायाः क्षतिः,
   पत्युर्वार्धकमीर्षितं प्रवसनं नाशस्य हेतुः स्त्रियः ।। हितोपदेश - 1/114 ।।
2. पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
   स्वप्नश्चन्यगृहे वासो नारीणां दूषणानि षट् ।। हितोपदेश - 1/115 ।।
3. स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
   तेन नारद ! नारीणां सतीत्वमुपजायते ।। हितोपदेश - 1/116 ।।
4. न स्त्रीणामप्रियः कश्चित्प्रियो वापि न विद्यते ।
   गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ।। हितोपदेश - 1/117 ।।

स्त्री घी के घड़े के समान हैं और पुरुष जलते अंगारे के समान । अतः बुद्धिमान को चाहिये कि घी और अग्नि को पास-पास न रखें ।[1]

पुरुष को, माता, बहिन और पुत्री, इनके पास भी एकान्त में नहीं बैठना चाहिये, क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी बलवान हैं, ये जितेन्द्रिय को भी वश में कर लेती हैं ।[2]

स्त्रियों को पतिव्रत रखने में न लज्जा, न विनय, न चतुरता और न भय, कारण है, परन्तु केवल प्रार्थना का न होना ही एक कारण है ।[3]

बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करता है, एवं स्त्री कदापि स्वतन्त्रता के योग्य नही है ।[4]

जो शास्त्र शुक्राचार्य जानते हैं और जो शास्त्र वृहस्पति जी जानते हैं, वह शास्त्र स्त्री की बुद्धि में स्वभाव से ही होता है ।[5]

---

1. घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान् ।
   तस्माद्घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद्बुधः ।। हितोपदेश - 1/118 ।।
2. मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा नो विविक्तासनो भवेत् ।
   बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।। हितोपदेश - 1/119 ।।
3. न लज्जा न विनीतत्वं न दाक्षिण्यं न भीरुता ।
   प्रार्थनाभाव एवैकं सतीत्वे कारणं स्त्रियाः ।। हितोपदेश - 1/120 ।।
4. पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने ।
   पुत्रश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।। हितोपदेश- 1/121 ।।
5. उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद वृहस्पतिः ।
   स्वभावेनैव तच्छास्त्रं स्त्री बुद्धौ सुप्रतिष्ठितम् ।। हितोपदेश- 1/122 ।।

विग्रह पाठ की एक बढ़ई, उसकी व्यभिचारिणी स्त्री और यार की कहानी भी इसी संदर्भ में द्रष्टव्य है --

"यौवन श्रीनगर में मन्दमति नामक बढ़ई रहता था । वह अपनी पत्नी को व्यभिचारिणी समझता था । परन्तु जार के साथ उसे अपनी आँखों से कहीं नहीं देखा था । बाद में वह बढ़ई "मैं दूसरे गाँव को जाता हूँ", यह कहकर चला गया । थोड़ी दूर जाकर वह फिर लौट आकर घर में पलंग के नीचे बैठ गया । फिर बढ़ई दूसरे गाँव को गया, इस विश्वास से वह जार दिन डूबते ही आ गया । बाद में उसके साथ पलंग पर क्रीड़ा करती हुई पलंग के नीचे बैठे स्वामी की देह के छू जाने से उसे मायावी समझ कर उदास हो गई । जार के उसकी दुश्चिन्ता का कारण पूछने पर उसने कहा कि "आज मेरा पति दूसरे गाँव गया है । मुझे उसकी चिन्ता लगी है । जार ने पूछा "क्या तेरा बढ़ई ऐसा स्नेह करने वाला है ।" उस व्यभिचारिणी स्त्री ने उसे फट-कारते हुये कहा, "अरे धूर्त क्या पूछता है, वह मेरा स्वामी है, उसके जीते मैं जीती हूँ, उसके मरने पर मैं सती हो जाऊँगी । यह मेरी प्रतिज्ञा है ।" यह सुनकर वह बढ़ई बोला "मैं धन्य हूँ, जिसकी ऐसी मिष्टभाषिणी स्वामी से प्रेम करने वाली स्त्री है । यह मन में ठानकर, उस स्त्री को जारसहित खाट को सिर पर रखकर वह आनन्द से नाचने लगा ।

इसी प्रकार सन्धिपाठ की एक कथा में भी प्रत्यक्ष में जार को छुपा लेने वाली बुद्धिमती स्त्री की कथा है[1]---

---

1. हितोपदेश - सन्धि पाठ ।

किसी समय विक्रमपुर में समुद्रदत्त नाम का एक वणिक रहता था । उसकी रत्नप्रभा नामक स्त्री अपने सेवक के साथ सदैव व्यभिचार करती थी । एक दिन उस रत्नप्रभा को उस सेवक का मुखचुम्बन करते हुये समुद्रदत्त ने देख लिया । फिर वह व्यभिचारिणी शीघ्र अपने पति के पास जाकर बोली, "स्वामी ! इस सेवक को बड़ा सुख है, क्योंकि यह चोरी करके कपूर खाया करता है, यह मैंने इसका मुख सूँघकर जान लिया ।

इसी प्रकार सुहृद्भेद की एक कथा में एक चतुर ग्वालिन की कथा है ।[1]

द्वारावती नामक नगरी में किसी ग्वाले की बहू व्यभिचारिणी थी । वह गाँव के दण्डनायक तथा उसके पुत्र के साथ रमण किया करती थी । किसी दिन दण्ड नायक के पुत्र के साथ रमण कर रही थी, इतने में दण्डनायक भी रमण करने के लिये वहाँ आ गया । तब उसको आता हुआ देखकर उसके पुत्र को कुठीले में छिपाकर दंड-नायक के साथ वैसे ही क्रीड़ा करने लगी, इसके बाद उसका पति ग्वाला आया । उसको देखकर गोपी ने कहा, "हे दण्डनायक ! तू लकड़ी लेकर क्रोध को दिखाता हुआ शीघ्र जा । उसके वैसा करने पर ग्वाले ने घर पर आकर पत्नी से कहा, "किस काम से दण्डनायक यहाँ पर आकर बैठा था ।" वह बोली, "यह किसी काम के कारण अपने पुत्र पर क्रोधित हुआ था । वह भागकर यहाँ घुस गया और मैंने उसे कुठीले में छिपाकर बचा लिया और उसके पिता ने यहाँ ढूँढ कर न देखा, इसी लिये यह दंड नायक क्रोधित सा जा रहा है । फिर वह उसके पुत्र को कुठीले से बाहर निकाल कर दिखाने लगी ।

---

1. हितोपदेश - सुहृद्भेद ।

<u>पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में मोक्ष :-</u>

समस्त शास्त्रों में मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है । मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् जीव को कुछ भी प्राप्त नहीं करना होता है । गीता हो अथवा वेदान्त दर्शन वैदिक साहित्य हो अथवा शास्त्रीय साहित्य सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि मोक्ष की अवस्था ही परम आनन्द की प्राप्ति है । न्याय वैशेषिक आदि दर्शन मोक्ष की अवस्था में सुख दुःख दोनों के अनुभवों को नहीं स्वीकार करते हैं ।

जीवधारी का पूर्ण विकास तभी सम्भव है जब वह त्रिवर्ग का सम्यक् सेवन करे क्योंकि त्रिवर्ग का समान सेवन ही हितकारक होता है । पंचतन्त्र एवं हितोपदेश दोनों ही ग्रन्थों में मानव जाति की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विधिवत् वर्णन किया गया है । दोनों ग्रन्थों में त्रिवर्ग प्राप्ति के साधनों का उल्लेख है । त्रिवर्ग की सामंजस्य-पूर्ण प्राप्ति के पश्चात् ही जीव अपवर्ग प्राप्त करता है । आचार्य विष्णुशर्मा तथा नारायण पण्डित ने अपने अपने ग्रन्थ में धर्म, अर्थ तथा काम पुरुषार्थ की प्राप्ति हेतु अनेक शिक्षाप्रद रोचक कथाओं का वर्णन किया है । इससे यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही आचार्यों का मुख्य उद्देश्य था - बालकों को पुरुषार्थ चतुष्टय का ज्ञान देना । क्योंकि शिक्षाप्रद कथाएं पुरुषार्थ चतुष्टय का उपदेश प्रदान का लघुतम एवं सरलतम साधन है ।

उ प सं हा र

उपसंहार

समस्त संस्कृत साहित्य में पंचतन्त्र तथा हितोपदेश का महत्वपूर्ण स्थान है । इन दोनों ग्रन्थों का जन्म कथाच्छलेन बालानां के आधार पर कथा के ब्याज से अलपज्ञों को बहुज्ञ बनाने के लिये ही हुआ । दोनों ही ग्रन्थों के रचयिता समाज को कुछ देने के लिये सर्वजनसहज सम्बोध साहित्य का निर्माण किया । इन दोनों नीतिकथा विषयक ग्रन्थों का प्रणयन "व्यवहारविदे" के लिए हुआ । इन ग्रन्थों में पाण्डित्य प्रदर्शन की वृत्ति नहीं अपनाई गई । आधन्त यह ध्यान रखा गया सहज सुबोध सरल संस्कृत भाषा के माध्यम से समाज के सभी वर्ग लाभ उठाने में समर्थ हों ।

इन दोनों ग्रन्थों ने सरलता, सहज, सुबोध शैली में इतनी लोकप्रियता अर्जित की कि ये कहानियाँ भारतभूमि के बाहर देश-देशान्तर में पहुँची । इनका अध्ययन कर लोग व्यवहार कुशल, चतुर, सभ्यसामाजिक बन गए । ये कहानियाँ ईसप की कहानियों से पहले मानी जाती हैं । पशुपक्षी, मनुष्य सबको इन कहानियों में स्थान मिला । पशु-पक्षी मनुष्य आदि तो केवल निमित्तमात्र बनें । मुख्य उद्देश्य तो चतुर निपुण सामाजिक बनाना ही बना रहा ।

ये सरल कहानियाँ भोले-भोले बच्चों के लिये सहज ग्राह्य बन गईं । पण्डित विष्णुशर्मा और नारायण पंडित ने भी पर्याप्त ख्याति अर्जित की । इन दोनों नीति-विषयक सरल ग्रन्थों ने दोनों को सदैव के लिए अमृतत्व प्रदान किया । कीर्ति मिली, जीवन बना रहा । कीर्तिर्यस्य जीवति ।

पंचतन्त्र और हितोपदेश का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये ही मैंने इसे शोध विषय चुना । इन दोनों की तुलना करने में साहित्य के समस्त पक्षों के विवेचन में कहाँ तक सफल हुई, यह विद्वान ही जान सकते हैं । विष्णुशर्मा का पंचतन्त्र तथा नारायण पंडित कृत हितोपदेश का तुलनात्मक अध्ययन शीर्षक को सुविधा की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित किया है । सर्वप्रथम कथा साहित्य को आगे बढ़ाने हेतु भूमिका का आश्रय लिया गया है । भूमिका में जन्तुकथा का प्रारम्भ एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है । भारतीय साहित्य में कथासाहित्य की शैली मित्रवत् उपदेश की तरह है, क्योंकि पूरा का पूरा कथा साहित्य मित्रता कैसे हो, मित्रता कैसे टूटती है, मित्रता कैसे तोड़ी जाती है, कैसे मित्रता चिरस्थायी हो सकती है, इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है ।

कथा साहित्य के प्रारम्भ और विकास हेतु वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन करके उसके अन्तर्गत मिलने वाली कथाओं पर प्रकाश डाला गया है । प्रकाश डालने का मुख्य उद्देश्य यह है कि वेदों के साथ ही कथाएं भी साँसे लेती रहीं है । इससे कथाओं का सीमा-निर्धारण, कथाओं की प्राचीनता और लोकप्रियता का पता चलता है ।

तदनु पुराणान्तर्गत कथाओं को खोज कर उन पर प्रकाश डाला गया है । तात्पर्य यह है कि वैदिक संस्कृत से लेकर पौराणिक काल तक कथाएं चलती आ रही हैं । पश्चात् बौद्ध और जैन साहित्य की जातक कथाओं के विषय में प्रकाश डाला । यथा-सम्भव वैदेशिक साहित्य के आधार पर भी कथाओं का कथात्व सिद्ध किया गया है ।

यह अत्युक्ति न होगी चाहे साहित्य लिपिबद्ध न हुआ हो किन्तु कथाएं वेदों और पुराणों से पहले मौखिक रूप से कर्णपरम्परा से जिह्वाग्र नर्तकी रही हैं। उन कथाओं का स्वरूप तथा अध्येता भले ही परिपक्व बुद्धि के न रहे हों, परन्तु कथा-वाचक, कथाश्रावक, दादा-दादी और नाना-नानी निश्चित रूप से रहे हैं और कथाओं के श्रोता भी नाती-पोते रहे हैं। विकास-स्वरूप, साहित्यिकरूप, कालान्तर में होता गया है, किन्तु कथा उतनी ही पुरानी है जितना पुराना मानव। इस प्रकार अथ से लेकर इति तक कथा साहित्य पर प्रकाश डाला गया।

विषय-सौविध्य की दृष्टि से उसको आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में पंचतन्त्र का रचयिता तथा रचनाकाल का विवेचन किया गया। इसका रचयिता विष्णुशर्मा नामक विद्वान कल्पित है या यथार्थ - इस की प्रामाणिकता के विषय में तथ्य जुटाने का प्रयास किया गया। विष्णुशर्मा की यथार्थ-ज्ञातता के पश्चात् जीवन परिचय दिया गया। जनक जननी जाया जन्मस्थान के अनु-संधान का प्रयास किया गया। मात्र पंचतन्त्र जैसी कथाकृति ने उनको प्रसिद्धि के चरम शिखर पर पहुँचा दिया। इस कृति के सूक्ष्म अनुशीलन तथा अध्ययन से रचयिता के वैदुष्य और पाण्डित्य का - कितना अध्ययनशील, कितना शास्त्रज्ञान, कितनी नीति-निपुणता, कितनी सूक्ष्म विश्लेषण शक्ति, कैसी अल्पज्ञों के हृदय में नीतिशास्त्रगत ज्ञान स्थापित करने की क्षमता - विश्लेषण किया गया। रचयिता कितना अन्तर्मुखी कितना बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाला था? और उसकी कृति पंचतन्त्र की क्या विशेषता है? क्यों

इतनी लोकप्रिय हुई ? लोकप्रियता का रहस्य क्या है ? इत्यादि का प्रथम अध्याय में विवेचन किया गया है ।

रचनाकाल के विषय में पाश्चात्य विद्वानों की क्या सम्मति है ? तथा भारतीय विद्वानों की क्या सम्मति है ? पाश्चात्य तथा पौरस्त्य विद्वानों में कहाँ विरोध है ? कहाँ सामंजस्य है ? का विवेचन किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में "पंचतन्त्र का मूलस्त्रोत" नामक शीर्षक के अन्तर्गत यह बताने का प्रयास किया गया कि पंचतन्त्र जैसी बहुमूल्य कृति का उत्स कहाँ है ? इस कृति के उपजीव्य ग्रन्थ कौन से हैं ? अध्ययन से ज्ञात होता है, यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरी हुई कथाओं का संगुम्फन कर पंचतन्त्र जैसी कृति के निर्माण से निःसन्देह कृतिकार के बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त होता है । कथा कलेवर को कमनीय, लोकप्रिय, शिक्षाप्रद, बौद्धिक विकास के योग्य बनाने के लिये महाभारत, जातककथाएं कौटिल्य अर्थशास्त्र, मनु, नारद, पराशर, बृहस्पति आदि स्मृति ग्रन्थ तथा अन्य वैदेशिक ग्रन्थों से लोकोपयोगी सामग्री जुटाकर विश्वप्रसिद्ध कृति "पंचतन्त्र" का निर्माण किया गया ।

तृतीय अध्याय में पंचतन्त्र का मूलरूप और रूपान्तर नामक शीर्षक में - पंचतंत्र का मूलरूप क्या है ? और उन कथाओं में हेरफेर करने से कितना रूपान्तर हुआ है ? और उन रूपान्तरों के साथ आज कितने प्रकार के पंचतन्त्र उपलब्ध हैं ? कौन संस्करण कहाँ से निकला है ? आज कितने संस्करण मिलते हैं ? तन्त्राख्यायिका क्या है ? सरल

उत्तर और पश्चिमी रूपान्तर आदि का विवेचन किया गया ।

अद्यावधि इस कृति का कितनी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है ? इस कृति ने अपने नीति-सम्बन्धी ज्ञान को संजोए हुए मनोरंजन के साथ-साथ लोकोपयोगी ज्ञान देकर किन-किन देशों को उपकृत किया है ? कौन-कौन से देश इसकी ज्ञानराशि से परिचित हैं ? यह कृति किन-किन भाषाओं की मण्डन बनी ? इत्यादि का विवेचन किया गया ।

चतुर्थ अध्याय में हितोपदेश का रचयिता एवं रचनाकाल नामक शीर्षक में हितोपदेश नामक कथाग्रन्थ के निर्माता नारायण पण्डित यथार्थ व्यक्ति हैं, अथवा कल्पित ऐतिहासिक प्रमाण इनके विषय में उपलब्ध हैं अथवा नहीं ? हितोपदेश रचयिता का जन्म कहाँ हुआ ? जन्मकाल का समय क्या है ? किस प्रदेश की किस भूमि को अपने जन्म से मण्डित किया ? कौन कुल गौरवान्वित हुआ ? कौन कुल पवित्र हुआ ? कौन जननी कृतार्थ हुई ? कृती कवि की कृति समाज को कितना प्रभावित कर सकी ? किन-किन ग्रन्थों की नारायण पण्डित की कृति हितोपदेश पर छाप पड़ी ? कहाँ से प्रेरणा ली ? इस कृति के विषय में पाश्चात्य विद्वानों के क्या विचार हैं ? इत्यादि का स्पष्ट विवेचन किया गया है ।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत हितोपदेश के मूल स्रोत पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया । हितोपदेश मौलिक रचना है या संकलन ? मौलिक रूप और संकलित रूप में भी नारायण पण्डित की मौलिकता कितनी है ? इतना तो सत्य ही है पंचतन्त्र की ही भाँति इस ग्रन्थ की लोकोपयोगी वर्ण्य-वस्तु जहाँ भी प्राप्त हुई है, इस आदान

परम्परा में कृतिकार ने कोई न्यूनता नहीं बरती है । समस्त नीति ग्रन्थों की उपयुक्त नीतियाँ ग्रहण कर ली गई हैं तथापि कामन्दकीय नीतिसार के प्रति विशेष अनुराग प्रदर्शित किया है ।

हितोपदेश के कर्ता नारायण पण्डित मुख्य आधार पंचतन्त्र को ही मानते हैं । स्पष्ट है कि पंचतन्त्र की ही शैली पर अथवा उसकी छाया के आधार पर ही इस ग्रन्थ की निर्मिति हुई है । शुकसप्तति ने भी इस ग्रन्थ को प्रभावित किया है । वेताल पंच-विंशतिका के भी नारायण पंडित कितने ऋणी हैं ? चाणक्य की नीतियों का ग्रहण कितने अंशों में किया है ? सिन्दबाद इतिवृत्त तथा लोककथाओं ने हितोपदेश के कलेवर में कितनी वृद्धि की है, इसका सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में पण्डित विष्णुशर्मा रचित पंचतन्त्र तथा नारायण पंडित रचित हितोपदेश की योजना में कितना भेद है ? कितनी मौलिकता है ? कितनी छाया है ? कितनी वास्तविकता है ? दोनों की कृतियों का प्रयोजन क्या है ? अल्पज्ञों को दुरूह नीतिशास्त्र का ज्ञान सरल शैली में कराना ही मुख्य प्रयोजन है अथवा नहीं ? ये कथायें केवल मनोरंजन के लिये हैं, अथवा जीवन-यापन में लोकव्यवहार की दिशा में कुशल, सभ्य शिष्ट बनाती हैं अथवा नहीं ? प्रयोजन में दोनों कृतिकारों को कहाँ तक सफलता मिली ? इनकी कृतियाँ थोड़े समाज को प्रभावित कर सकीं या देश, काल, पात्र की सीमा का उल्लंघन कर मानवमात्र को मनोरंजन के साथ-साथ नीति निष्णात कर सकीं या नहीं ? इन कहानियों की लोकप्रियता कितनी हुई ? लोकप्रियता का मुख्य आधार क्या रहा ? किन-किन देशों ने इन रचनाओं का लाभ उठाया ? किन-किन भाषाओं के कलेवर में

प्रवेश कर भारतीय आत्मा को सुरक्षित रखा ? इत्यादि का ऊहापोह विवेचन इस अध्याय में किया गया है ।

सप्तम अध्याय में प्राचीन शिक्षण पद्धतियों में जन्तु कथा के अस्तित्व का पता लगाने का प्रयास किया गया । क्या पूर्व तथा उत्तर वैदिक काल में जन्तु कथाएं प्रचलित थीं या नहीं ? वे मौखिक रूप से विद्यमान थीं या वे साहित्य में लिपिबद्ध होकर आईं । यह अनुसंधान का विषय रहा । वैदिक साहित्य में इन कथाओं के बीज यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, जैसे सरमापणि संवाद आदि हैं । पूर्व वैदिक शिक्षा पद्धति क्या थी ? उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा पद्धति क्या थी ? महाकाव्यकाल में शिक्षा पद्धति क्या थी ? रामायण में जन्तुकथा का अस्तित्व कहाँ तक है ? महाभारत काल की शिक्षण विधियों में जन्तुकथा का कैसा विकसित रूप है ? शान्तिपर्व में कौन-कौन सी जन्तु-कथाएं हैं ? महाभारत में कथाओं को विकसित करने में कितना योगदान दिया ? महाभारत आकर ग्रन्थ है, उसने बहुत से काव्यों, महाकाव्यों को जन्म दिया है । अनेक नाटक उसी की भित्ति पर खड़े हैं । कथाओं ने भी उसी से कलेवर पाया है । वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक की जन्तुकथा के विकास की कथा का यथाशक्ति यथामति विवेचन करने का प्रयास किया गया । इसमें कथासाहित्य की परम्परा का अध्ययन करने तथा वर्णन करने का प्रयत्न किया । सप्तम अध्याय का यही प्रतिपाद्य विषय रहा ।

अष्टम अध्याय के अन्तर्गत मानव-जीवन को सुखी सम्पन्न बनाने के साथ-साथ पूर्णता में परिणत करने के लिये पुरुषार्थ चतुष्टय का विधान विवेकशील विद्यासम्पन्न,

आचारवान् ऋषियों ने किया । भारतीय समाज में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को ही पुरुषार्थ माना गया । धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों के प्रतिपादन के लिये वैदिक काल से लेकर अब तक विद्वानों का प्रयास रहा । वैदिक वाङ्मय हो अथवा लौकिक वाङ्मय - दोनों ही वाङ्मयों का मूल उद्देश्य पूर्ण मनुष्य बनाना है, क्योंकि "पूर्णमेवावशिष्यते" - ऐसी श्रुति की घोषणा है । धर्म और मोक्ष जटिल विषय हैं । इसका ज्ञान प्राप्त करने हेतु शास्त्रगत प्रौढ़ि की अपेक्षा है । उसमें विद्वानों का ही प्रवेश सम्भव है । धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष केवल विद्वानों के लिये तो नहीं है, उनका तो सम्पूर्ण भारतीय समाज अधिकारी है । ज्ञान होना चाहिये, बिना ज्ञातता के आचरण सम्भव नहीं । फलतः लघुतम और सरलतम विधि और साधन चाहिये । अर्थात् सुहृत्-सम्मित और कान्तासम्मित विधि तथा साधन चाहिए । काव्य की अनेक विधाओं में कथा विधा ने समाज को पुरुषार्थ चतुष्टय की ओर प्रेरित करने में कितना योगदान दिया । उनमें पंचतन्त्र और हितोपदेश ने पुरुषार्थ चतुष्टय ज्ञानोपदेश दिशा में कैसी भूमिका निभाई इत्यादि का विवेचन इस अध्याय के अन्तर्गत किया गया ।

अन्त में निवेदन है कि यही मेरे शोध विषय का प्रतिपाद्य है । विषय प्रतिपादन में अल्पज्ञा मैंने यथामति यथाक्रम, तथा यथाशक्ति प्रयास किया । संस्कृत वाङ्मय की सेवा में यही मेरा तुच्छ प्रयास है ।

आशा है विद्वद्जन त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर शुभाशीर्वाद ही देंगे ।

प रि शि ष्ट

पृ०सं० 247-260

पंचतन्त्र में प्रयुक्त सूक्तियाँ एवं सुभाषितानि

-: कथामुखम् :-

1. किं तया क्रियते, धेन्वा या न सूते न दुग्धया ।
   कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान् ।। 6 ।।
2. अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं स्वल्पं तथायुर्बहवश्च विघ्नाः ।। 9 ।।

-: मित्र-भेद :-

3. पूज्यते यदपूज्योऽपि यदगम्योऽपि गम्यते ।
   वन्द्यते यदवन्द्योऽपि स प्रभावो धनस्य च ।। 7 ।।
4. अर्थार्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते ।। 9 ।।
5. अर्थेन तु ये हीना वृद्धास्ते यौवनेऽपि स्युः ।। 10 ।।
6. धनार्थं शस्यते ह्येवस्तदन्यः संशयात्मकः ।। 12 ।।
7. हृष्यते तद्धनलुब्धो यद्वत्पुत्रेण जातेन ।। 16 ।।
8. मिथ्याक्रयस्य कथनं प्रकृतिरियं स्यात्किरायनाम् ।। 17 ।।
9. प्राप्नुवन्त्युद्यमाल्लोका दूरदेशान्तरं गताः ।। 18 ।।
10. एतदेवात्र पाण्डित्यं यत्स्वल्पाद् भूरिरक्षणम् ।। 19 ।।
11. अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं, सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति । 20 ।
12. सुसंतुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ।। 26 ।।
13. परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते । 28 ।
14. जायन्ते विरला लोके जलदा इव सज्जनाः ।। 30 ।।
15. वचस्तत्र प्रयोक्तव्यं यत्रोक्तं लभते फलम् ।। 34 ।।
16. अप्रधानः प्रधानः स्यात् सेवते यदि पार्थिवम् ।। 35 ।।
17. विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति ।। 42 ।।
18. अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेंगितज्ञानफला हि बुद्धयः ।। 44 ।।
19. नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मन ।। 45 ।।

20. सुवर्णपुष्पितां पृथ्वीं विचिन्वन्ति त्रयो जनाः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ।। 46 ।।

21. आश्रयेत्पार्थिवं विद्वांस्तद्द्वारेणैव नान्यथा ।। 47 ।।

22. सेवकः स्वामिनं द्वेष्टि कृपणं परुषाक्षरं । 51 ।

23. सोऽर्कन्नृपतिस्त्याज्यः सदापुष्पफलोऽपि सन् ।। 52 ।।

24. राजमातरि देव्यां च कुमारे मुख्यमन्त्रिणि ।
पुरोहिते प्रतीहारे सदा वर्त्तेत राजवत् ।। 53 ।।

25. पश्येद्दारान्वृथाकारान् स भवेद्राजवल्लभः ।। 57 ।।

26. एकेषां वाचि शुकवदन्येषां हृदि मूकवत् ।
हृदि वाचि तथाऽन्येषां वल्गु वल्गन्ति सूक्तयः ।। 66 ।।

27. दुराराध्या हि राजानः पर्वता इव सर्वदा । 68 ।

28. यस्य यस्य हि यो भावस्तेन तेन समाचरन् ।
अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत् ।। 74 ।।

29. स्थानेष्वेव नियोक्तव्या भृत्याश्चाभरणानि च ।
नहि चूडामणिः पादे प्रभवामिति बध्यते ।। 78 ।।

30. कनकभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्त्रपुणि प्रतिबध्यते ।
न स विरौति न चापि स शोभते भवति योजयितुर्वचनीयता ।। 81 ।।

31. आभीरदेशे किल चन्द्रकान्तं, त्रिभिर्वराटैर्विपणन्ति गोपाः ।। 84 ।।

32. अरैः सन्धार्यते नाभिर्नाभौ चाराः प्रतिष्ठिताः ।
स्वामिसेवकयोरेवं वृत्तिचक्रं प्रवर्त्तते ।। 89 ।।

33. षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णः स्थिरो भवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन षट्कर्णं वर्जयेत् सुधीः ।। 108 ।।

34. दारेषु किंचित्स्वजनेषु किंचित्, गोप्यं वयस्येषु सुतेषु किंचिद् ।
युक्तं न वा युक्तमिदं विचिन्त्य, वदेद्विपश्चिन्महतो नुरोधात् ।। 109 ।।

35. पैशुन्यादभिद्यते स्नेहो भिद्यते वाग्भिरातुरः ।। 111 ।।

36. धैर्यं यस्य महीनाथो न स याति पराभवम् ।। 112 ।।

37. पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्त्ययोग्याश्च योग्याश्च ।। 119 ।।

38. सर्वदेवमयो राजा मनुना संप्रकीर्तितः ।। 131 ।।

39. महान्महत्स्वेव करोति विक्रमम् ।। 133 ।।

40. बले तु बलवान् परिकोपमेति ।। 134 ।।

41. मन्त्रिभिर्धार्यते राज्यं सुस्तम्भैरिव मन्दिरम् ।। 137 ।।

42. कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा स्वस्थे को वा न पण्डितः ।। 138 ।।

43. अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम् ।
अमृतं राजसंमानममृतं क्षीरभोजनम् ।। 139 ।।

44. नृपति जनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ।। 142 ।।

45. उत्पतितोऽपि हि चणकः शक्तः किं भ्राष्ट्रकं भङ्क्तुम् ? ।। 143 ।।

46. जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृद्गतं चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ।। 146 ।।

47. केनेत्थं परमार्थतोऽर्थवदिव प्रेमास्ति वामभ्रुवाम् ।। 147 ।।

48. अबलाभिर्बलाद्रक्तः पापमूले निपात्यते ।। 156 ।।

49. स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ।। 157 ।।

50. राजा मित्रं केन दृष्टं, श्रुतं वा ।। 158 ।।

51. अहो सुसदृशी चेष्टा तुलायष्टेः खलस्य च ।। 161 ।।

52. सन्त्यज्यान्यत्र गच्छन्ति, शुष्क वृक्षमिवाण्डजाः ।। 163 ।।

53. उपजीवन्ति शक्त्या हि जलजा जलजानिव ।। 168 ।।

54. उन्मार्गे वाच्यतां यान्ति महामात्राः समीपगाः ।। 172 ।।

55. निस्पृहो नाधिकारी स्यान्नाकामो मण्डनप्रियः ।
नाविदग्धः प्रियं ब्रूयाद् स्फुटवक्ता न वंचकः ।। 175 ।।

56. धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ? ।। 176 ।।

57. दीक्षितः शिवमन्त्रेण सभस्मांग शिवो भवेद् ।। 178 ।।

58. तृणमिव लघु मन्यन्ते कामिन्यश्चौर्यरतलुब्धाः ।। 185 ।।

59. अंगीकरोति कुलटा सततं परपुरुषसंसक्ता ।। 187 ।।

60. वारुणीसंगजावस्था भानुनाप्यनुभूयते ।। 189 ।।

61. उशनावेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ।
स्त्रीबुद्धया न विशिष्येत तस्माद्रक्ष्याः कथं हि ताः ।। 196 ।।

62. मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये हलाहलं महद्विषम् ।। 199 ।।

63. स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतयुतं धर्मनाशाय सृष्टम् ।। 201 ।।

64. यासां दोषगणो गुणो मृगदृशां ताः किं नराणां प्रियाः ? ।। 202 ।।

65. नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ।। 203 ।।

66. स्त्रीसंनिधौ परमकापुरुषा भवन्ति ।। 204 ।।

67. स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ।। 207 ।।

68. किं वा न वामनयना न समाचरन्ति ।। 208 ।।

69. गुंजाफलसमाकारा योषितः केन निर्मिताः ? ।। 209 ।।

70. जाते समुद्रेऽपि हि पोतभंगे, सांयात्रिको वांछति तर्तुमेव ।। 216 ।।

71. यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः ? ।। 217 ।।

72. औषधानां सुमन्त्राणां बुद्धेश्चैव महात्मनाम् ।
असाध्यं नास्ति लोकेऽत्र यद् ब्रह्माण्डस्य मध्यगम् ।। 219 ।।

73. पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान्वितर्कः ।
.... कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम् ।। 222 ।।

74. तैश्च दोषैश्च पिनाशयन्ति, नद्यो हि कूलानि, कुलानि नार्यः ।। 223 ।।

75. दुरतिक्रमा दुहितरो विपदः ।। 224 ।।

76. निर्विषं भवतु मा वाऽस्तु फणाटोपो भयंकरः ।। 225 ।।

77. सर्पयुक्ते गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः । 230 ।

78. उपायज्ञोऽल्पकायोऽपि न शूरैः परिभूयते ।। 231 ।।

79. यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ? ।। 237 ।।

80. यत्र न स्यात्फलं भूरि यत्र न स्यात्पराभवः ।
नास्त्येकमपि यद्येषां न त कुर्यात्कथंचन ।। 249 ।।

81. बहून्हन्ति स एकोऽपि क्षत्रियान् भार्गवो यथा ।। 259 ।।

82. यः प्रियः प्रिय एव सः ।। 265 ।।

83. विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम् ।। 268 ।।

84. प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संवासतो जायते ।। 273 ।।

85. सन्तो नीचसंगं वर्जयन्ति । ।

86. न ह्यविज्ञातशीलस्य प्रदातव्यः प्रतिश्रयः । 275 ।

87. स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा । 280 ।

88. दत्त्वापि कन्यकां वैरी निहन्तव्यो विपश्चिता । 299 ।

89. समानशीलव्यसनेषु सख्यम् ।। 305 ।।

90. अकारणद्वेषपरो हि यो भवेत् कथं नरस्तं परितोषयिष्यति ? ।। 306 ।।

91. तस्मादम्बुपतेरिवावनितेः सेवा सदाशंकिनी ।। 307 ।।

92. सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।। 308 ।।

93. रात्रौ दीपशिखाकान्तिर्न भानावुदिते सति ।। 310 ।।

94. दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू ताभ्यां हन्ति स हिंसकम् ।। 331 ।।

95. बलवन्तं रिपुं दृष्टवा नैवात्मानं प्रकोपयेत् । 336 ।

96. मन्दमतिः कः प्रविशति हुताशनं स्वेच्छया मनुजः ।। 338 ।।

97. यमलोकदर्शनेच्छुः सिंहं बोधयति को नाम ? ।। 339 ।।

98. त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले । 345 ।

99. स्वदेशे निधनं यान्ति काकाः कापुरुषाः मृगाः ।। 350 ।।

100. क्षारं जलं कापुरुषा पिबन्ति ।। 351 ।।

101. कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति ।। 352 ।।

102. तेजसा सह जातानां वयः कुत्रोपयुज्यते ।। 350 ।।

103. दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ।
.... तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कःप्रत्ययः ।। 358 ।।

104. बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः । 361 ।

105. गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः ।। 373 ।।

106. आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।। 386 ।।

107. आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।। 387 ।।

108. विकल्पोऽत्र न कर्तव्यो हन्यादेवापकारिणम् ।। 398 ।।

109. भावार्जितं शुभमथाप्यशुभं निकामं, यद्भावि तद्भवति नात्र विचारहेतु ।। 403 ।।

110. पित्तं यदि शर्करया शाम्यति कोऽर्थः पटोलेन ? ।। 409 ।।

111. साम्नैव विलयं याति विद्वेषिप्रभवं तमः ।। 411 ।।

112. आलापयति यो मूढः स गच्छति पराभवम् ।। 419 ।।

113. पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम् ।। 420 ।।

114. प्रायो मस्तकनाशे समरमुखे नृत्यति कबन्धः ।। 428 ।।

115. आत्मवत्सर्वभूतानि वीक्ष्यन्ते धर्मबुद्धयः ।। 435 ।।

116. तत्राशंका प्रकर्त्तव्या परिणामे सुखावहा ।। 446 ।।

117. नानाशास्त्र विचक्षणं पुरुष निन्दन्ति मूर्खाः सदा ।। 448 ।।

118. वेश्यांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ।। 459 ।।

119. गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।। 461 ।।

120. बालबुद्धेर्विबोधाय ।

-: मित्र-सम्प्राप्ति :-

121. प्रत्यासन्न विपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते ।। 4 ।।

122. बुद्धयः कुब्जगामिन्यो भवन्ति महतामपि ।। 5 ।।

123. सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता । 7 ।

124. विधिरहो बलवानिति मे मतिः ।। 22 ।।

125. नदीशः परिपूर्णोऽपि चन्द्रोदयमपेक्षते ।। 29 ।।

126. कः परः प्रियवादिनाम् ? ।। 58 ।।

127. विद्वान सर्वत्र पूज्यते ।। 59 ।।

128. शुभाशुभं समभ्येति विधिना संनियोजितम् ।। 82 ।।

129. मृतो दरिद्र पुरुषो । 101 ।

130. त्याज्यमित्रतां यान्ति यस्य न स्युः कपर्दकाः ।। 105 ।।

131. वृद्धिकाले तु सम्प्राप्ते दुर्जनो पि सुहृद्भवेत् ।। 118 ।।

132. कः परः प्रियवादिनाम् ? ।। 127 ।।

133. करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति ।। 131 ।।

134. नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।। 138 ।।

135. असंतुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यन्ति ।। 145 ।।

136. रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलं धनम् ।। 153 ।।

137. सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ।। 159 ।।

138. प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।। 165 ।।

139. अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।। 169 ।।

140. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ।। 186 ।।

-: काकोलूकीयम् :-

141. निर्वाते ज्वलिते वह्निः स्वयमेव प्रशाम्यति ।। 55 ।।

142. तुषैरपि परिभ्रष्टा न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ।। 56 ।।

143. पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ।। 59 ।।

144. आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।। 82 ।।

145. आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।। 84 ।।

146. धर्मस्य त्वरिता गतिः ।। 100 ।।

147. आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।। 102 ।।

148. गृहं हि गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम् ।। 145 ।।

149. भस्मीभवतु सा नारी यस्या भर्ता न तुष्यति ।। 148 ।।

-: लब्धप्रणाशम् :-

150. प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खो वा यदि पण्डितः ।
वैश्वदेवान्तमापन्नः सो तिथिः स्वर्गसंक्रमः ।। 2 ।।

151. वज्रलेपस्य मूर्खस्य नारीणां कर्कटस्य च ।
एको ग्रहस्तु मीनानां नालीमद्यपयोस्तथा ।। 10 ।।

152. वर्जयेत् कौलिकाकारं मित्रं प्राज्ञतरो नरः ।
आत्मनः संमुखं नित्यं य आकर्षति लोलुपः ।। 12 ।।

153. ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ।। 13 ।।

154. बुभुक्षितः किं न करोति पापं, क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति ।। 16 ।।

155. शत्रुणा योजयेच्छत्रुं बलिना बलवत्तरं । 18 ।

156. शत्रुमुन्मूलयेत्प्राज्ञस्तीक्ष्णं तीक्ष्णेन शत्रुणा ।
व्यथाकरं सुखार्थाय कण्टकेनैव कण्टकम् ।। 19 ।।

157. अपि शत्रुं प्रणम्यापि रक्षेत्प्राणान् धनानि च ।। 22 ।।

158. न हि सर्वसुखोपायां वृत्तिमारचयेद् बुधः ।। 24 ।।

159. सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः ।
अर्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुःसहः ।। 28 ।।

160. स्वपक्षस्य क्षये जाते को नस्त्राता भविष्यति।। 31 ।।

161. न गंगदत्तः पुनरेति कूपम् ।। 32 ।।

162. नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ।। 34 ।।

163. यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते ।। 44 ।।

164. आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति, वामे विधौ सर्वमिदं नराणाम्।। 63 ।।

165. एवं कुलीना व्यसनाभिभूताः, न नीतिमार्गं परिलंघयन्ति ।। 71 ।।

-: अपरीक्षितकारकं :-

166. प्रियदर्शनमपि रूक्षं, भवति गृह धनविहीनस्य ।। 6 ।।

167. सततं जातविनष्टाः पयसामिव बुद्बुदाः पयसि ।। 7 ।।

168. यस्य यदा विभवः स्यात्तस्य तदा दासतां यान्ति ।। 9 ।।

169. तावेव च करौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ।। 13 ।।

170. जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते, तृष्णैका तरुणायते ।। 16 ।।

171. अतिलोभाभिभूतस्य चक्रं भ्रमति मस्तके ।। 21 ।।

172. न बन्धुमध्ये धनहीनजीवितम् ।। 22 ।।

173. ऋते समुद्रादन्यः को बिभर्ति वडवानलम् ।। 34 ।।

1. प्रस्ताविका

1. विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
   पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ।। 6 ।।

2. विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विद्ये प्रतिपत्तये ।
   आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा ।। 7 ।।

3. एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणा अपि ।। 18 ।।

4. वरमेकः कुलालम्बो यत्र विश्रूयते पिता ।। 21 ।।

5. धर्मेण हीना: पशुभिः समाना: ।। 25 ।।

6. अनुद्योगेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति ? ।। 30 ।।

7. यत्ने कृते यदि न सिध्यति को त्र दोषः ।। 31 ।।

8. एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ।। 32 ।।

9. पुरुषार्थमपेक्षते ।। 35 ।।

10. उद्यमेन हि सिध्यन्ति न कार्याणि मनोरथैः ।
    नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।। 36 ।।

11. माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
    न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ।। 38 ।।

12. ना द्रव्ये निहिता काचित्क्रिया फलवती भवेत् ।। 43 ।।

13. आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ? ।। 44 ।।

14. आस्वाद्यतोयाः प्रभवन्ति नद्यः
    समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ।। 47 ।।

2. मित्रलाभः

1. अनिष्टादिष्टलाभे ऽपि न गतिर्जायते शुभा ।
   यत्रास्ते विषसंसर्गो ऽमृतं तदपि मृत्यवे ॥ 6 ॥
2. व्याधितस्यौषधं पथ्यं, नीरुजस्य किमौषधैः ? ॥ 15 ॥
3. नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृंगिणां तथा ।
   विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥ 19 ॥
4. अतीत्य हि गुणान्सर्वान्स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ॥ 20 ॥
5. लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ? ॥ 21 ॥
6. पापः लोभस्य कारणम् ॥ 27 ॥
7. प्रायः समापन्नविपत्तिकाले,
   धियो ऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ॥ 23 ॥
8. न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिद्धे कार्ये समं फलम् ।
   यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते ॥ 29 ॥
9. आपदामापतन्तीनां हितो ऽप्यायाति हेतुताम् ॥ 30 ॥
10. आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
    आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ 42 ॥
11. विधिरहो बलवान् ॥ 51 ॥
12. अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ॥ 56 ॥
13. सर्वदेवमयो ऽतिथिः
14. निरस्तपादपे देशे एरण्डो ऽपि द्रुमायते ॥ 69 ॥
15. उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ 70 ॥
16. विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि ॥ 75 ॥
17. परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
    वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ 77 ॥
18. उष्णो दहति चांगारः शीतः कृष्णायते करम् ॥ 80 ॥
19. सतां हि साधुशीलत्वात्स्वभावो न निवर्तते ॥ 85 ॥

20. न हि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया ।। 86 ।।

21. सुप्ततप्तमपि नानीयं शमयत्येव पावकम् ।। 88 ।।

22 मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ? ।। 89 ।।

23. भंगे पि हि मृणालानामनुबन्धन्ति तन्तवः ।। 95 ।।

24. सर्वस्याभ्यगतो गुरुः ।। 107 ।।

25. अपि निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम् ।। 133 ।।

26. निधनता सर्वापदामास्पदम् ।। 136 ।।

27. उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः ।। 144 ।।

28. अपरित्यक्तोद्योगकर्तृणां विपदः स्युः पदे पदे ।। 150 ।।

29. न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ।। 153 ।।

30. चक्रवद् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ।। 177 ।।

31. गर्भादुत्पतिते जन्तौ मातुः प्रस्त्रवतः स्तनौ ।। 182 ।।

32. गजानां पंकमग्नानां गजा एव धुरन्धराः ।। 193 ।।

33. उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः ।। 202 ।।

3. सुहृद्भेदः

1. उपर्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति ।। 2 ।।

2. शशिनस्तुल्यवंशो पि निर्धनः परभूयते ।। 3 ।।

3. को ति भारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ? ।
   को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ? ।।

4. जीवत्यनाथो पि वने विसर्जितः
   कृतप्रयत्नो पि गृहे न जीवति ।। 18 ।।

5. ये पराधीनतां यातास्ते वै जीवन्ति के मृताः ।। 22 ।।

6. सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।। 26 ।।

7. काको पि किं न कुरुते चंच्वा स्वोदरपूरनम् ? ।। 37 ।।

8. निपात्यते क्षणेनाधस्तथात्मा गुणदोषयोः ।। 47 ।।

4. विग्रह:

1. पयो ऽपि शौण्डिकीहस्ते वारुणीत्यभिधीयते ॥ ॥ ॥
2. षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रस्तथा प्राप्तश्च वार्तया ॥ 36 ॥
3. सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलस्त्रियः ॥ 64 ॥
4. गौरवं लाघवं वा ऽपि धनाधन निबन्धनम् ॥ 78 ॥
5. श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥ 112 ॥
6. लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥ 119 ॥
7. कः सुधीः संत्यजेद्भाण्डं शुल्कस्यैवातिसाध्वसात् ॥ 125 ॥
8. वनाद्विनिर्गतः शूरः सिंहो ऽपि स्याच्छृगालवत् ॥ 135 ॥
9. जायते पुण्ययोगेन परार्थे जीवितव्ययः ॥ 142 ॥
10. अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किंकरोति गतायुषि ? ॥ 144 ॥
11. अक्षयाँल्लभते लोकान् यदि क्लैव्यं न गच्छति ॥ 143 ॥

5. सन्धिः

1. कार्यं सुचरितं क्वापि दैवयोगाद्विनश्यति ॥ 2 ॥
2. अंकमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किं नाम पौरुषम् ॥ 51 ॥
3. बुभुक्षितं किं न करोति पापं ?
   क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति ॥ 54 ॥
4. सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ॥ 56 ॥
5. यद्वियोगासिलूनस्य मनसो नास्ति भेषजम् ॥ 77 ॥
6. वियोगबाधिनी येषां भूमिरधापि तिष्ठति ॥ 63 ॥
7. वर्षाम्बुसिक्ता इव चर्मबन्धाः
   सर्वे प्रयत्नाः शिथिलीभवन्ति ॥ 79 ॥
8. निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥ 83 ॥
9. समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम् ॥ 84 ॥

10. न सद्भिः सह कर्त्तव्यः,

सतां संगो हि भेषजम् ।। 89 ।।

11. बालः पायसदग्धो दध्यपि

फूत्कृत्य भक्षयति ।। 102 ।।

12. मूर्खं छन्दानुरोधेन याथातथ्येन पण्डितम् ।। 103 ।।

13. स्त्री-भृत्यौ दानमानाभ्यां,

दाक्षिण्येनेतराञ्जनान् ।। 104 ।।

ग्रन्थानुक्रमणी

पृ०सं० 261 - 268

ग्रन्थानुक्रमणिका

	ग्रन्थ	
1.	ऋग्वेद संहिता	पं० सातवलेकर द्वारा सम्पादित
2.	ऋग्वेद संहिता	सायण भाष्य सहित
3.	वाजसनेयी संहिता	उवट-महीधर भाष्य सहित
4.	मैत्रायणी संहिता	वान श्रेडर ।लिपझिग।
5.	तैत्तिरीय संहिता	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
6.	सूत संहिता	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
		ऋग्वेद-सर्वानुक्रमणी, कात्यायन विरचित
7.	वैदिक साहित्य और संस्कृति	पं० बलदेव उपाध्याय
8.	वैदिक कहानियाँ	पं० बलदेव उपाध्याय
9.	हिन्दू राजतन्त्र	डा० के०पी० जायसवाल
10.	ऐतरेय ब्राह्मण	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
11.	शतपथ ब्राह्मण	सं० ए. वेबर ।लन्दन।
12.	जैमिनी ब्राह्मण	डा० रघुवीर
13.	तैत्तिरीय ब्राह्मण	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
14.	कौषीतकि ब्राह्मण	बी० लींदर
15.	वैदिक आख्यान	डा० गंगा सागर राय
16.	वेदकालीन समाज	डा० शिवदत्त ज्ञानी
17.	वैदिक धर्म एवं दर्शन	ए.बी.कीथ अनु० डा० सूर्यदत्त शास्त्री
18.	ऐतरेय आरण्यक	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
19.	तैत्तिरीय आरण्यक	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
20.	बृहदारण्यकोपनिषद्	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली
21.	छान्दोग्योपनिषद्	सायण भाष्य सहित
22.	मुण्डकोपनिषद्	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
23.	कठोपनिषद्	निर्णय सागर संस्करण ।बम्बई।

24. बृहद्देवता — आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
25. अथर्ववेद — अनु. आर.टी.एच. ग्रिफिथ ।बनारस।
26. यजुर्वेद — अनु. आर.टी.एच. ग्रिफिथ ।बनारस।
27. सामवेद
28. वैदिक साहित्य की रूपरेखा — प्रो० राजहंस अग्रवाल
29. निरुक्तम् — दुर्गाचार्य टीका, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
30. मनुस्मृतिः — चौखम्बा संस्कृत सिरीज
31. नारदस्मृति : — जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सं० धर्मशास्त्र ग्रन्थ ।कलकत्ता।
32. पराशर स्मृतिः — सायण एवं माधव की टीकाओं सहित
33. वृहस्पति स्मृतिः — जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सं० धर्मशास्त्र ग्रन्थ, ।कलकत्ता।
34. याज्ञवल्क्यस्मृतिः — आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
35. वैदिक वाङ्मय का इतिहास — पं० भगवद्दत्त ।प्र०सं०।
36. आपस्तम्ब धर्मसूत्र — सं० जी.बूलर । बम्बई संस्कृत सिरीज।
37. वैदिक संस्कृति का विकास — पं० लक्ष्मण शास्त्री जोशी
38. 2000 वर्ष पुरानी कहानियाँ — डा० जगदीश चन्द्र जैन
39. महाभारतम् — 1. भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना
2. सी. व्ही. वैद्य द्वारा सम्पादित
3. नीलकण्ठ टीका समेत
4. महाभारत विशेषांक कल्याण अंक
40. वाल्मीकिरामायण कोश — डा० रामकुमार राय
41. वाल्मीकीय रामायणम् — गीता प्रेस, गोरखपुर
42. संस्कृति के चार अध्याय — रामधारी सिंह दिनकर
43. विष्णु-धर्म-सूत्रम् — सम्पादक-जॉली ।कलकत्ता।
44. अग्नि-पुराणम् — आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
45. वराह-पुराणम् — जीवानन्द विद्यासागर संस्करण ।कलकत्ता।

46. वायु-पुराणम्	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
47. पद्म-पुराणम्	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली
48. बृहत्कथामंजरी	क्षेमेन्द्र-रचिता
49. कथासरित्सागर	सोमदेव-कृत सं0 पं0 दुर्गाप्रसाद
50. पंचतन्त्र	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी एकाकृत
51. पंचतन्त्र	मोतीलाल बनारसी दास
52. पंचतन्त्र ॥हिन्दी अनुवाद॥	डा0 मोती चन्द्र
53. हितोपदेश	चौखम्बा संस्कत सिरीज वाराणसी
54. हितोपदेशसार	सं0 म.म.पं0 सदाशिव शास्त्री मुसलगाँवकर
55. शुकसप्तति	चौखम्बा संस्कृत सिरीज
56. नया समाज "पंचतंत्र की विश्वविजय"	डा0 हेमचन्द्र जोशी
57. साहित्य दर्पण	आचार्य विश्वनाथ
58. काव्यादर्श	दण्डी
59. संस्कृत वाङ्मय	आ0 बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर
60. काव्यालंकार	रुद्रट
61. अमरकोष	
62. तन्त्रोपाख्यान	के0 साम्बसदाशिवशास्त्री
63. नीतिशतकम्	भर्तृहरि चौखम्बा प्रकाशन
64. कौटिल्यीय अर्थशास्त्र	मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास
65. श्रीमद्भागवत गीता	गीता प्रेस गोरखपुर
66. काव्य प्रकाश	आचार्य विश्वेश्वर
67. शिशुपालवधम्	माघ
68. वेणीसंहार	भट्ट नारायण
69. रघुवंशम्	कालिदास
70. अभिज्ञानशाकुंतलम्	कालिदास

71. बृहत्कथा मंजरी — क्षेमेन्द्र
72. कथासरित्सागर — सोमदेव
73. वेतालपंचविंशतिका
74. सिंहासन द्वात्रिंशिका
75. काव्यमाला
76. काव्यमीमांसा — राजशेखर
77. संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ — मुसलगाँवकर
78. कामन्दकीय नीतिसार — हिन्दी अनुवादक ज्वाला प्रसाद मिश्र, बम्बई
79. चाणक्य नीतिसंग्रह
80. चाणक्य नीति दर्पण
81. विनय पिटक
82. चिरिया पिटक
83. जातक माला — आर्यशूरकृत जातक सं0 सूर्यनारायण चौधरी
84. संसुमार जातक
85. कुरंगमिग जातक
86. कुटिदूसक जातक
87. सहिचम्म जातक
88. धम्मपद जातक — 1. राहुल सांकृत्यायन कृत हिन्दी अनुवाद
2. भदन्त आनन्द कौसल्यायन कृत हिन्दी अनुवाद
89. यशस्तिलकम् — सोमदेवकृत
90. जातकट्ठकथा — भिक्षु धर्मरक्षित
91. दिव्यावदान
92. धम्मपदट्ठकथा
93. पालिसाहित्य का इतिहास — भरतसिंह उपाध्याय
94. पुराण पारिजातः — म0म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
95. धर्मशास्त्र का इतिहास — भारतरत्न पाण्डुरंग वामन काणे

96. मुद्राराक्षसम् विशाखदत्त

97. सूत्रपिटक

98. धर्मपिटक

99. मज्झिम निकाय

100. दीर्घ निकाय

101. अंगुत्तर निकाय

102. सिन्दबाद की पुस्तक

103. भारतीय साहित्य का इतिहास विण्टरनित्ज अनु० सुभद्र झा

104. संस्कृत साहित्य का इतिहास वाचस्पति गैरोला

105. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा डा० चन्द्रशेखर पाण्डेय

106. संस्कृत साहित्य का इतिहास वरदाचार्य

107. भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास डा० भीखन लाल आत्रेय

108. संस्कृत साहित्य में नीति-कथा का उद्गम एवं विकास डा० प्रभाकर नारायण

109. Rgveda Transl. by Wilson

110. Rgveda Samhita Transl. by Max Muller, F.

111. Atharvaveda S.P.Pandit

112. Sacred Books of the East Bloomfield

113. Kautilyam Arthashastram Jolly

114. Brahaddevata Macdonell, A.A.

115. The Panchtantra Hertel

116. Southern Panchtantra

117. Tantrakhyayika

118. Purnabhadra's Panchtantra

119. Benfey — Das Panchtantra (Introduction & Translation)

120. Panchatantra and Hitopdesha stories. — Ayyear, S.P.

121. Hitopdesha — edited by Max Muller

122. Hitopdesha of Narayan — Peter Petersen

123. The Mahabharata Adiparvan — ed. by V.S.Sukthankar

124. Karnaparvan — Dr. P.L. Vaidya

125. Shantiparvan — S.K.Belwalkar

126. Jain Jatakas — Jein, Banarasi Das

127. E'sope Fables — ed. E. Chambry's

128. Essays on Indo-Aryan Mythology — Ayyangar Narayan

129. India in the vedic age — P.L. Bhargava

130. The age of the fable — Bulfinch Thomas

131. The History of Sanskrit Literature — Das Gupta, S.N.De

132. Legends and Theories of the Buddhists — Hardy, S.

133. The Great epic of India — Hopkins

134. Epic Mythology — Hopkins

135. The History of Sanskrit Poetics — P.V.Kane

136. Classical sanskrit Literature — A.B.Keith

137. History of Sanskrit Literature — A.B.Keith

138. The History of Pali Literature — Dr. B.C.Law

139. Fables: — ed. by G.Moir Bussey

140. Sanskrit Literature — Macdonell

141. The Classical Age — R.C.Majumdar

142. The Tales of Ancient India — D.S. Sharma

143. Studies about Kathasaritsagar — J.S.Speyer

144. A History of Indian Literature — Dr. Winternitz

145. The Science of Folk lore — Alexander Krappe

146. Sanskrit English Dictionary — V.S.Apte

147. Pali Dictionary — Rhys Davids

148. The Oxford Dictionary of English Proverbs.

149. Encyclopaedia Britannica

Journals:

150. Proceeding, Journal of the American Oriental Society, New Haven, Asia.

151. Contemporary Review

152. University of Ceylone Review.

153. Allahabad University Studies, Allahabad.